Jeevi translation into Hindi by Padma Singh Sharma 'Kamlesh' of Gujarati novel Malela Jiva of Pannalal Patel

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद १ द्वारा प्रकाशित

●

संस्करण १९८२

●

साहित्य अकादमी
नई दिल्ली

●

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

पुस्तकालय संस्करण २७५०
पाठ्य संस्करण १२००

समर्पण

•

स्वर्गवासी पिता और माता को

•

जीवन मे रह गई लालसा शेप यह
कहकर पिता बुलाऊँ तुमको तात मैं
धन्य भाग्य ! वह अवसर आया आज जो
और पूज्य माँ तुम थी इतना चाहती
देख सको मुझको बस, चिट्ठी बाँचता
क्या कहना है यदि जवाब मैं लिख सकूँ
(हुआ विधाता वाम) स्वग मे ही सही
तव अपूर्ण इच्छा को पूरा आज मैं
कर पाऊँ तो मेरा जीवन सफल है ।

•

लेखक का वक्तव्य

विद्वानो द्वारा निर्मित साहित्य अकादेमी न 'मलेला जीव' को भारत की अ य भाषाओ मे अनुवाद करन के लिए चुना ह, यह जानकर मुझे जितना आन द हुआ, उतना ही अपनी सृजन-प्रवृत्ति के प्रति स तोष भी हुआ।

लेकिन दूसरी ओर मुझे यह आशका भी थी—'भगवान् जाने पुस्तक की जनपदीय शब्दावली, गुजरात का ग्राम्य वातावरण और उसके अतिरिक्त कृषक-समुदाय की विशिष्ट भाषा प्रणाली आदि जो बातें लोक-जीवन का अनुभव न रखने वाले गुजराती विद्वाना को भी कुछ देर के लिए असमजस म डाल देता है, उ हे अ य भाषाआ के विद्वान् कहा तक समझ सकेंग और कहाँ तक उनका अनुवाद म ठीक ठीक उतार सकेंगे।'

उसमे भी जिस भाषा से देश की अ य अधिकाश भाषाओ मे इस कृति का अनुवाद होने की सम्भावना है, ऐसी हि दी भाषा मे हाने वाले अनुवाद-सम्ब धी उत्तरदायित्वपूण काय के बारे म तो मुझे पर्याप्त भय था। और इसीलिए मेरी यह इच्छा थी कि इसका अनुवाद किसी ऐसे विद्वान् से कराया जाय जा इन सब बाता को भली भाँति समझता हो।

तभी मुझे एक दिन अचानक आगरा कॉलेज के हि दी प्रोफेसर श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का पत्र मिला, जिसमे उ होने साहित्य अकादेमी द्वारा प्रदत्त 'मलेला जीव' के अनुवाद काय का उल्लेख करते हुए लिखा

था कि वे उस अनुवाद को अकादेमी को देने से पहले मुझे दिखाने की तीव्र अभिलाषा रखते है। अत मैं उन्हें बता दूँ कि मुझसे कहाँ और कैसे भेंट हो सकती है ?

यह पढकर मुझे निश्चय ही आनन्द हुआ। कारण, इस पत्र के लिखने मे 'कमलेश' जी की सुजनता तो थी ही, उनकी अनुवाद-सम्बन्धी सतकता और प्रेम भी स्पष्टतया प्रकट हो रहे थे। परन्तु इससे भी अधिक उनकी आग्रहपूवक की गई मिलने की प्राथना के मूल मे मुझे तो उनकी इस काय विषयक श्रद्धा ही दिखाई दे रही थी।

इस बीच मुझे अचानक दिल्ली जाना पडा। साथ ही एक दिन के लिए आगरा जाने और श्री 'कमलेश' जी का अतिथि होने का सयोग भी आ उपस्थित हुआ। उसी समय मुझे अनुवाद देखने का अवसर मिला।

अपने कॉलेज के अध्यापन मे व्यस्त रहते हुए उन्होने जो तीन-तीन बार अनुवाद करने का श्रम किया है और उसके फलस्वरूप अनुवाद मे प्रासादिकता दोनो भाषाओ का पाण्डित्य, कृषको की भाषा प्रणाली के साथ उनके समग्र जीवन की जानकारी आदि जो बाते प्रकट हुई है उन्हे देखकर मुझे तो इतना अधिक सन्तोष हुआ कि मैंने अपने मन ही मन साहित्य अकादेमी का इस बात के लिए आभार माना कि उसने श्री 'कमलेश' जी जैसे योग्य व्यक्ति का यह काय सौंपा।

मेरा तो यहाँ तक विश्वास है कि यह अनुवाद हिन्दी और गुजराती दोनो भाषाओ के समस्त विद्वानो की ओर से श्री कमलेश जी का यश दिलायगा।

माण्डली, डूगरपुर (राजस्थान)
अक्षय तृतीया, २०१३ विक्रमी

—पन्नालाल पटेल

अनुवादक की ओर से

गुजराती के प्रख्यात उपन्यासकार श्री पन्नालाल पटेल का यह उपन्यास राजस्थान और गुजरात के सीमा प्रदेशवर्ती एक गाँव पर आधारित है और इसमें आंचलिक उपन्यासों की परम्परा का नितान्त स्वाभाविक तथा अत्यन्त भव्य रूप देखने को मिलता है।

इस उपन्यास के साल-सवा साल के कथा-काल में ग्राम्य जीवन की सरलता, निश्छलता, अन्ध विश्वास और बात पर मर मिटने की वृत्ति पग-पग पर प्रकट होती है। भाषा ठेठ ग्रामीण है, जिसमें लेखक ने अनेक बहुमूल्य अनुभव सूक्तियों के रूप में पिरो दिए हैं। लेखक का कथाशिल्प अद्वितीय है। मेले से ही उपन्यास का आरम्भ होता है और मेले से ही अन्त। उपन्यास का वातावरण खेत, खलिहान, मचान और कुएँ को लेकर चलता है और लोक-गीतों ने उसे और भी मादक बना दिया है। पात्रों के अन्तर्द्वंद्व के साथ आदर्शवाद का ऐसा अपूर्व संगम इस उपन्यास में हुआ है कि अच्छे-अच्छे मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यास-लेखक आश्चर्य चकित होकर रह जायें। कथा की गति बड़ी ही स्वाभाविक है और एक भी वाक्य या शब्द व्यय नहीं है। सारा उपन्यास साँचे में ढला हुआ-सा लगता है। उपन्यास-लेखक ने भारतीय ग्राम्यजीवन की झलक देने में अद्‌भुत संयम और प्रशंसनीय कौशल से काम लिया है। कदाचित् इसीलिए यह भारतीय आंचलिक उपन्यासों में अपने ढंग की श्रेष्ठतम रचना है।

इस उपन्यास का अनुवाद करने मे मुझे बडी कठिनाइ का सामना करना पडा है। जनपदीय शब्दावली और मुहावरो के अतिरिक्त मेलों तमाशो और उत्सव-त्यौहारो-सम्बन्धी विशेपताओ तथा पात्रा की विशिष्ट भाव प्रकाशन प्रणाली को ज्यो-का-त्यो उतारने के अभिप्राय से तीन बार इसका पुनर्लेखन हुआ है। इसके वातारण का भी ज्यो-का-त्यो रखने के लिए मैंने यत्र तत्र जनपदीप शब्दा को स्पष्ट करने की दृष्टि से टिप्पणियाँ भी दे दी हैं। कविताओ का अनुवाद कविताओ मे ही करने का प्रयत्न किया गया ह। साथ ही गुजराती के प्रसिद्ध विद्वानो के साथ मूल कृति और अनुवाद को शब्दश मिलाकर भी दखा गया है। जिन विद्वाना ने मुझे इस काय मे सहायता दी है, उनमे सर्वश्री नटवर व्यास (प्राध्यापक गुजराती भाषा, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा) रमणलाल पाठक (गुजराती विभागाध्यक्ष, सावियत दूतावास का सूचना कार्यालय, दिल्ली) और विष्णुकुमार पण्डया (ब्रिटिश इनफर्मेशन सर्विस, दिल्ली) प्रमुख है। इनमे अन्तिम दो तो उसी प्रदेश के निवासी हैं, जिसकी भाषा का प्रयोग इस उपन्यास मे हुआ है।

सबसे बडी बात तो यह है कि स्वय उपन्यास लेखक श्री पन्नालाल पटेल ने कृपापूवक मेरे घर पधारकर अनेक शकाओ का निराकरण किया है और अनुवाद को देखकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की है। मैं उपन्यास लेखक और गुजराती के पूर्वोक्त विद्वानो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि उन्होने अपने व्यस्त कायक्रम मे से समय निकालकर मेरी सहायता की। अनुवाद कैसा है, यह तो विद्वान् निणय करेंगे, पर मुझे सन्तोष है कि मैने इसे सुन्दर और प्रामाणिक बनाने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दी है।

आगरा कॉलिज, आगरा।
१ जुलाई १९५७

—पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'

क्रम

माथानो तूबडी मां लाख लाख मोती
'ल्या हैयानो कोथलो ठालो
अभागिया हैयानो चेंथरी खालो ।

(माथे की तूबडी मे लाख लाख मोती
रे हिया की कोथरी खाली
अभागे हिया की चीथरी खाली) ।

पहला प्रकरण

•

प्रथम भेट

कावरिया पहाड की तराई मे जन्माष्टमी का मेला लगा था। भगवान् के स्नान के लिए ताजा पानी लेकर आने वाली वर्षा दोपहर होते-होते थम गई थी। चलते हुए पवतो-जैसे बादल पूव की ओर जा रहे थे। सूय भी धरती पर झांकने लगा था।

विशेष रूप से युवक-युवतियो से उमडती हुई तराई महीनो के मौन के बाद आज कभी गाती सुनाई देती थी, तो कभी ऐसी लगती थी जैसे अलगोझे बजा रही हो। पहाड की दीवार मे बने शिवजी के पुराने मन्दिर का घण्टा तो बजता ही रहता था। कभी-कभी व्यापारियो की आवाज इस कोलाहल के ऊपर तैर आती थी।

एक तो जवानी वैसे ही अल्हड होती है और उसम भी वह आई थी मेले मे। किनारो को डुबाती नदी की बाढ की भाँति यह जवानी आज अपने उभार पर थी। काई चूडियाँ खरीद रही थी तो कोई कपडे की मोनी जडी तनी[1] ले रही थी। युवक भी गोटे वाले फुदने खरीदकर अपने अलगोझो की जोडी को सजा रहे थे। कोई नारियल ले रहा था तो कोई सूखी गिरी से ही अपना मन वहला रहा था। और इस काम से निबटे हुए लोग आमने सामने खडे कावरिया पहाडा पर पाण्डवो की

१ अगरखे या बडी को बाँधने की डोरी, जो बटन के स्थान पर काम देती है।

चौरी और कलशेरी माता के दर्शनो को जाने लगे थे। दोनो पहाडो के बीच आदमियो का झूलता हुआ पुल-सा बन गया था।

शिवजी के ठीक सामने दूसरे पहाड की दीवार मे गडे चख (झूले) के पास जैसे जैसे दिन ढलता जाता था वैसे-ही-वैसे आखिरी मजा लेने के इरादे से युवक-युवतियो की भीड बढती जाती थी।

पश्चिम की ओर से आते गीतो और गम्भीर स्वर वाले अलगोझो ने कितने ही लोगो का ध्यान खीचा। बहुतो ने कहा—"अरे, यह तो ऐसा लग रहा है जैसे धरती ही फट जायगी।" कुछ हँसते हुए बोले—"मेला तो उठने लगा, फिर ये व्यर्थ क्यो चले आ रहे है ?" एक ने जवाब दिया— कही दूर के लगते है।' तो दूसरा बोल उठा—"लेकिन जब इन्हे उलटे पैरो ही पीछे लौटना था तो आने की ही क्या पडी थी ?"

लेकिन चार युवतियो और पाच युवको वाली उस टोली की तो धज ही कुछ निराली थी। क्षण भर मे ही खरीद भी कर ली और दोनो पहाडो का चक्कर लगाने का विचार छोडकर आ खडी हुई चख के पास। गुपचुप झूले मे बैठने की सलाह भी कर ली। उनमे से चार ऐसे थे जिनको चख मे बैठने से चक्कर आने थे, इसलिए बाकी के पाँच जनो—तीन युवको और दो युवतियो—ने झूले मे बैठने की तैयारी की।

टोली मे सहज ही अग्रस्थान प्राप्त करने वाले युवक ने दस सेर के लगभग वजन की मोमी कपडे की छतरी एक लडकी को देते हुए कहा—ले काली, इस छतरी का जरा सँभालना !" और बोला—'चख के रुकते ही पालने मे कूद पडना, नही तो रह जाओगे टापते।' और अपनी ओर ताकती युवतियो से कहा—'तुम समझती होगी कि काना भाई बिठा देगा और हम बैठ जायँगी सो आज यह नही होने का।" फिर साथी युवक को लक्ष्य करके बोला—'क्यो हीरा ?

'बिलकुल ठीक है। अगर बिठाने मे रह तो क्या इस भीड मे दिन छिपने तक भी नम्बर आ सकता है ?'

तभी तो मैंने कहा था कि लडकियो एक तो देर हो गई है और

दूसरे हमारी होड मत करो, लेकिन फिर भी नही मानी, तो लो चखा मेले का मजा ।" कहकर कानजी हँसने लगा ।

कानजी की उम्र पच्चीस के लगभग होगी । उसकी काठी भी ऐसी था कि उसे पाँच हाथ का तगडा जवान कहा जा सकता था । उसकी बडी-बडी आखो मे जितनी हास्य की झलक थी उतनी ही लापरवाही भी दिखाई देती थी। पैरो मे ढाई सेर वजन का नालदार और फुदने वाला जोडा था । घुटनो तक की धोती, रगीन कमीज़ उस पर सफेद कोट और सिर पर गुलाबी गोटे वाला लाल साफा था । साफे की बँधाई तो कुछ निराली ही थी । उसमे भी कलगी निकालना तो जैसे उसे ही आता था । फिर पीछे लटकते लम्बे छोर को कोट मे लपेटकर तो उसने कुछ और ही ममाँ बाँध रखा था । नय गोटे से सुशोभित अलगोझे की जोडी कोट की जेब मे खुँसी हुई थी । अलगेझे पर हुई खुदाई के ढग मे अलगोझो के प्रति उसकी रुचि प्रकट होती थी । कुछ युवक ता उन अल गोझो को टुकुर-टुकुर देख रहे थे । दो चार जनो के मन मे तो 'भाई जरा बजाकर तो देखो ! सुनें तो सही कि कैसे बोलते हैं' ऐसा कहने की इच्छा भी जगी । इतने मे ही चख रुका । कानजी ने उन दो युवतियो को बाँह पकडकर उठाया और पहले पालने मे बिठा दिया । हीरा की ओर देखकर बोला—"अब कोई परवाह नहीं । तुम अपने को देखना हीरा !"

परन्तु ऐसा कहने पर भी उसने नरम स्वभाव के मनारे को पहले मौका दिया । नीचे आते हुए पालने पर नजर रखते हुए बोला— हीरा, आखिरी पालना है समझा !" और बाहे चढाकर खडा हो गया । पालने मे बैठी दो युवतियो मे से जैसे ही एक खडी हुई कि वह झट "हीरा बैठ नही तो रह जायगा" कहता हुआ चढ गया । उस स्त्री के नीचे उतरने से पहले ही वह अन्दर जाकर जम भी गया । लेकिन देखता क्या है कि आधी खडी हुई दूसरी युवती 'अरी मणी एक चक्कर और लगा उतरी क्यो पटती है ?" कहती हुई अन्दर ही रह गई । बडे जोर मे पालने के डण्डे को पकडकर खडा हुआ हीरा मुँह फाडे रह गया । उतर पडने वाली

मणी आँखा से कुछ, और मुह से कुछ और ही कहती हुई 'अब क्या है ' पहले कहना था न, बैठ अब तू ही अकेली !' यो बडबडा रही थी। उधर चख वाले ने 'पैसा निकालो, चलो जल्दी करो !' कहते हुए हाथ फैलाया। पालने मे बैठी युवती 'हाय हाय, मेरे पास तो अरी पैसा तो द' इतना ही कह पाई थी कि कानजी ने चख वाले के हाथ मे दो पैसे रख दिए। एक सपाटे मे पालना ऊपर पहुँचा। हीरा और मणी नीचे खडे खडे कानजी वाले पालने पर टकटकी लगाये थे। चख धीरे धीरे तेज हुआ।

कानजी के पास बैठी युवती ने कहा— 'मैं नीचे उतरते ही तुम्हें पैसे दे दूगी अच्छा !''

कानजी ने चाहा कि कह दे—'जब रुपया देने पर भी चख मे साथ बैठने वाला नही मिलता तो फिर पैसे की क्या बिसात है ?' लेकिन यह सब-कुछ न कहकर उसने इतना ही कहा—''पैसा क्या तुमसे कही बढ कर है ? '

चख पूरी तेजी से घूमने लगा। पालना म बैठी कुछ युवतियाँ गा रही थी तो कुछ युवक अलगोझे बजा रहे थे। नीचे खडी मणी 'अरी जीवी' कहकर चिल्ला रही थी, परन्तु जीवी का जी इस समय किसी दूसरे ही लोक मे था। कानजी की आँखा से टकराती पहली नजर तो उसने बचा ली, पर दूसरी बार वह स्वय ही कानजी की ओर देखने लगी और मन्द मन्द मुस्कान के साथ बोली—''ये अलगोझे दिखाने को खोस रखे हैं या बजाने को ? '

' पहले दिखाने का और फिर बजाने को।' कहते हुए कानजी ने अलगोझे मुह से लगाये। मँजे हुए गाने की दो पक्तियाँ निकली

''फागुन की वायु मे आया हुआ यौवन
वशाख की वायु मे उड जाता है।''

और इसके बाद अलगोझे बन्द करके जीवी की ओर देखता हुआ कानजी बोल पडा— 'कुछ समझी कि नही ?''

जीवी समझी या नही यह तो वह जाने, पर उसने कानजी को तिरछी

नजर से अवश्य देखा। उन आँखों में क्या था, इसे तो कानजी न समझ सका, पर उसने यह अवश्य अनुभव किया कि मिलती हुई नजर ने उसके हृदय से कुछ उठा लिया है और उसमें कुछ रख दिया है। दोनों ने एक दूसरे को फिर देखा और इसके बाद चारों ही आँखें नीचे झुक गईं। अब तो जैसे होठ भी सिल गए थे। हृदय की गति बदल चुकी थी। पूरी तेजी से घूमता हुआ चक्र धीमा पड़ा। जीवी के बाद कानजी नीचे उतरा, पर अपने नीचे उतरने का भान तो उसे तब हुआ जब ऊपर बैठे हुए हीरा ने या कहा कि "क्यों कानजी? अभी से?" लेकिन अब क्या हो सकता था? जगह तो भर चुकी थी। जगह होती तो भी कदाचित् वह अब न बैठता। स्वर्ग में ही आने का उसे जितना हर्ष था, उतना ही उस स्वर्ग से अलग होने का शोक भी था।

बुद्ध से खड़े कानजी के कानों में फिर वही मधुर आवाज पड़ी—"लो अपना पैसा!" कहती हुई जीवी हाथ बढ़ाये खड़ी थी। [illegible] झिझकती हुई नजरों से जीवी को देखा। हँसकर बोला—"[illegible] यही समझना कि एक बार मेरी ओर से ही बैठी थी।"

जीवी ने कुछ हुज्जत न करके हाथ पीछे खींच लिया। [illegible] खड़ी मणी से बोले बिना न रहा गया—"यों बिना [illegible] के किसी का पैसा रखा जाता होगा?" यों [illegible] कानजी की ओर देखने लगी।

"जान पहचान न होती तो इनके [illegible] हाथ ही क्यों बढ़ता?" कहकर हँसते हुए कानजी ने [illegible] और उसके सुहाग रहित हाथों की ओर [illegible]।

"अरी रहने दे। नहीं लेता, तो [illegible]!" [illegible] आगे किया। चलते चलते बोली—"[illegible] क्या"

"चल, चुप रह!" [illegible] को देखा।

आँखो से ओझल होने तक कानजी जीवी की ओर ही देखता रहा।

पास खडी हुई काली और दूसरी युवती कभी एक दूसरे को देखकर और कभी कानजी को देखकर मुस्करा रही थी। मानो कह रही हो—'न जाने इसमे क्या लाल लगे हैं जो कानजी भाई टुकुर टुकुर देख रहा है।'

चख से उतरकर हीरा कानजी के पास आया और बोला— 'अब यदि पहाड के दर्शन करने हो तो आओ, फिर चलेंगे।' और ईशान कोण की ओर दृष्टि डालकर कहने लगा— मुझे तो लगता है कि वर्षा रास्ते मे ही आ घेरेगी।'

'बिना इसके मेले का पूरा मजा भी कैसे आयगा।'' कहकर कानजी ने उन युवतियो के झुण्ड की ओर देखा और आगे बढा।

दोनो पहाडो का चक्कर लगाकर नीचे आते-आते सूरज भी पूरी तरह छिप गया। उखडते हुए मेले का शोर भी बढ गया था।

''आओ एक आखिरी चक्कर लगा लें।'' कहकर कानजी बाजार मे घूमने निकल पडा। गाडी मे जुते बैलो की भाँति सदा कानजी के साथ रहने वाला हीरा भी न जाने कैसे कभी-कभी पीछे रह जाता था। एक बार तो कानजी को पकडना भी कठिन हो गया। कानजी को इधर उधर भटकता देखकर हीरा ने कह भी दिया—' हम तो पीछे रह गए हैं। तू या आगे क्या ढूढ रहा है?

कानजी ने हँसकर सिर्फ इतना कहा— मैंने समझा था कि तुम आगे निकल गए होगे?'

तराई के दोनो छोरो पर मानवो का प्रवाह फिर आरम्भ हो गया था परन्तु इस समय न तो अलगोझो की स्वर-लहरी थी और न गीतो की रिमझिम।

कानजी की टोली भी चलने लगी। मेले की सीमा छोडने की तैयारी थी कि कानजी यकायक रुक गया। ''अरे यह तो भूल ही गया कि भाभी ने रतनी के लिए चूडियाँ मँगाई थी। तुम लोग चलो मैं यह आया।' कहता हुआ वह पीछे लौटा। हीरा तो उसे देखता ही रह गया। लगा,

जैसे कानजी आज पहली वार उसे छाडे जा रहा हो। उसके पीछे पीछे जाने का विचार भी उठा लेकिन उसे डर था कि यदि इस सारी जमात—विशेषकर स्त्रियो—को छोडकर गया ता कानजी खा जायगा। कुछ सोचते हुए उसने कानजी से चिल्लाकर कहा— 'देखो, जल्दी लौटना हम उस झरने पर बैठेंगे।" और बडबडाया— भाभी ही सब कुछ ह न ! दो आने दिये हैं उसमे मे भी छोरी के लिए चूडिया ले आना।'

दूसरा बोला—' इस घर मे तो काना भाई ही रह सकता है। मेरे-जैसे से तो एक क्षण भी न रहा जाय।

हीरा बोला— 'क्या करें भाई ! समझदार को तो सभी कुछ सहना पडता है नहीं ता क्या उसका बडा भाई यह नही जानता कि वह भी आधे हिस्से का मालिक है। परन्तु वह बेचारा जानता है कि अगर कुछ ऊँच-नीच कहूँगा तो औरत तो चल देगी पीहर को और फिर पीसना कूटना, झाडना बुहारना यह सब करना होगा उसे।'

लेकिन यह सब तभी तक है जब तक कि काना भाइ सहन करता है बिगडता नही। अगर वह बिगड जाय तो भाई भौजाई सबको लेने के-देने पड जायें।' काली ने कहा।

हीरा बाला—' लेकिन कानजी ऐसा करे तब न ?"

और इसके बाद कानजी के भाई भौजाई उसके विवाह या धरजे के लिए तनिक भी प्रयत्न नहीं करते। यह तो शुरुआत है, आगे चलकर हिस्सा भी नही देंग आदि नाना प्रकार के अनुमान लगाते लगाते वे कानजी की प्रतीक्षा करने के लिए पहले झरने पर बैठ गए।

ईशान कोण से उठते काले बादल आकाश के मध्य भाग तक आ गए थे। इन बादलो से ढक जाने के डर से जल्दी-जल्दी चलता हुआ सूय भी पूरी तरह ढक चुका था।

हीरा ने कहा—"आठ कोस की गैल काटनी है और कानजी का अभी पता तक नही।"

"हमारे पास छतरियाँ हैं, इसलिए कुछ कठिनाई नहीं, पर

मजा तो इन चार जना को आयगा।" मनारे ने कहा।

"उनकी वे जानें तू अपनी छतरी मत ताना! हमारे लिए तो काना भाई की यह एक ही छतरी बहुत है।" कहकर काली ने मनारे के पास वाली कानजी की छतरी दिखाई।

"तुम्हे न देगा तो वह क्या करेगा?" मनारे ने कहा।

कतराती आँखो से देखती हुई काली बोली—'लेकिन इसकी तुझे क्या फिक्र है। तू अपनी छतरी के नीचे मौज से बच जाना! कोई कुत्ता भी उसके नीचे न आएगा।"

और मनारे के कुछ जवाब देने से पहले ही हीरा ने कहा—"लो चलो, उठो! आ रहा है—वह—हाँ हाँ कानजी ही है। चलो वह आ पहुँचेगा।"

खेत भर चले होगे कि कानजी आ पहुँचा। उसी सपाटे से आगे बढता हुआ वह बोला—"चलो जरा तेजी से।'

'अरे काना भाई! जरा चूडियाँ तो दिखाओ! कितनी लाये हो?" काली ने पूछा।

"आगे दिखाऊँगा। इस वक्त तो जरा पैर बढाओ!"

लेकिन जब हीरा भी उसकी इस चाल को न पा सका तो कहने लगा—' पर इतनी ज्यादा जल्दी क्या है? रात है तो हम भी हैं। कोई अधबीच पेड पर तो रहना नही है।"

पीछे घिसटती हुई युवतिया मे से भी एक बोली—"इतनी जल्दी तो कानजी भाई ने जाती बार भी नही की थी।"

"भले मानस को कोई एक व्याधा थोडे ही है।' काली ने व्यग मे ही कहा, पर ऐसा न था कि कोई समझ सके।

कानजी कुछ धीमा तो पडा, पर उसकी नजर उतनी ही तेजी से आगे दौड रही थी। कहना नही चाहिए था फिर भी कह डाला—"कुछ दूर तक तेजी से चलो फिर धीरे धीरे चलेंगे।"

हीरा को भी इसमे कुछ रहस्य जान पडा। बोला— 'हाँ, हाँ ठीक है। जब तक दिन है तब तक जरा जल्दी पैर बढ़ाय तो अच्छा है।"

कहकर वह कानजी से भी ज्यादा तज चलने लगा ।

यह सारा रास्ता मनुष्यो से सजीव था । कोई टोली तेजी से चल रही थी तो कोइ चहलकदमी और मौज मजा करती जा रही थी । कुछ विश्राम लेन बैठी थी और कुछ अपनी खरीद फरोख्त तथा घूमने फिरने आदि के बारे मे कह-सुन रही थी ।

इन सबकी ओर देखते हुए कानजी की नजर दूर जाती दो बालाओ पर पडी । मन मे कहा— वे ही है । उनके बिना और कोई इस प्रकार पीछे मुडकर देख ही नही सकता ।' जाने-अजाने उसकी अधीरता बढ गई । इतनी उम्र मे कानजी कुछ युवतिया के परिचय मे आया हागा, कुछ के प्रति अनुराग भी हुआ हागा परन्तु आज की भाँति सुध बुध भुला देने वाली बात तो कभी हुई ही न थी ।

परस्पर अठखेलियाँ करती जाने वाली उन दोनो बालाओ के पास आते ही उसकी चाल धीमी पड गई । पीछे घिसटते आते मनारे ने तो पूछ भी लिया—"धीमे क्या पड गए कानजी !"

कानजी से पहले हीरा बोल उठा — व जो पीछे आ रही ह, उन्ही के लिए तो ।" और ज़ोर से पुकारा—"छोरियो, ज़रा पैर बढाओ ! या जनवासे की चाल चलने से तुम्हारा काम नही चलगा ।"

इतने मे कानजी न तिरछी नजरो से जीवी को देख लिया ।

धीरे से, पर ऐसे कि सुना जा सके । मणी बोली—"आदमी का साथ ही बुरा ! भला हो तो अधबीच मे ही छोडकर चल दे !"

' क्यो, तुम्हारे साथ ऐसा कुछ हुआ है क्या ?" आगे बढते हीरा न कुछ धीमे पडते हुए पूछा ।

"ऐसा हुआ है तभी तो । देखो न, हमारा क्या कोई साथ दने वाला है ? ' कहकर मणी ने जीवी की आर देखा । माना पूछ रही हो—'क्यो ठीक है न ?"

"आ हो ! तो ऐसी दुखी क्यो हाती हो । आआ हम साथ दें !" कहकर कानजी जीवी की ओर देखकर बोला—' लेकिन बाद मे हमे

अधबीच म न छाउना कबूल हो ता ।''

मणी को जरा धक्लत हुए जीवी बाली—''ल चत, चलना हा तो। गह चलत का क्या साथ ?'

कानजी स इसका जवाब दिये बिना न रहा गया। बोला—''एक बार कर देखो साथ, उसक बाद अधबीच म छोड़ें तो कहना ! क्या हीरा ?'

हीरा ने हाँ मे हाँ मिलाई—''लकिन यह तो मैं कह ही रहा हू। चलो, साथ देना हा तो पैर बढाओ !'

मणी बोल पडी – ''पैर ता बढावें, पर घर भी पूछ लिया है ?''

' घर काई हो तो पूछें । कानजी ने भी कह डाला।

जाओ-जाओ, चुपचाप । न जाने कितनो का ऐसे बहकान फिरत होगे ।'' कहकर नखर के साथ मणी आगे बढी ।

''क्या अपने मन मे यह सोचकर चल दी कि घर जाकर कही पानी न पिलाना पडे ? लेकिन भई ऐसे जबरदस्ती पानी पीने के लिए यहाँ कौन फालतू बैठा है ? तुम तो अपने घर की छत क नीचे घुस जाओगी और हम अभी सात कोस और जाना है।'' कानजी ने कहा ।

'कौन सा गाव है ?'' जीवी न पूछा ।

' ऊधडिया । कभी देखा है ?'' हीरा ने पूछा ।

' ऊधडिया के हो, इसीस ऊधडिया (ठेके पर काम करन वाल)— जैस लगते हो ।' मणी बोली ।

' लेकिन क्या तुम्हे इसका भी खबर है कि रोजनदारी[1] पर काम करान म चाँद गजी हो जाती है। चलो ठेके पर काम करने वाले बनाकर तुम दोनो को चैन तो मिला ।'' कानजी ने पहला वाक्य तो मणी से कहा, पर अन्तिम वाक्य कहते समय वह जीवी की ओर ही देख रहा था ।

लेकिन ये इधर उधर की बातें बहुत देर तक न चली । रास्ते म ही जीवी का गाव आ गया । मणी न तो, फिर आना कभी मिलें ता याद करना ।' कहकर विदा दे दी, पर जीवी से कहे बिना न रहा गया—

१ नित्य मजदूरी देकर काम कराना ।

' चला न गाँव मे, कुछ फलाहार न करो तो भले ही न करना, पर पानी तो पी लेना ।"

"पानी का क्या आज कही टोटा है ?" कहकर कानजी हँसा तो, पर बिलकुल नीरस हँसी ।

"तो तमाखू पीना ।" और कानजी का कुछ इधर-उधर होते देखकर बोली— 'देर नही लगेगी, किनारे पर ही घर है ।"

"अच्छी बात है ।" कहकर कानजी ने मनारे से कहा— 'तुम लोग चलो मनारे ! हम खडे खडे चिलम पीकर आते है ।'

' जल्दी लौटना, बहुत चिलम पीने वाले हो गए हो ।" काली ने मुँह बनाकर कहा । और कानजी को कतराती आँखो से देखने लगी ।

"हम यह आए ।" कहकर कानजी चला । उधर मणि और जीवी मे कुछ खीचा-तानी हो रही थी । मणी का कहना था कि ये लोग मेरी जात के है इसलिए इनको मेरे यहा आना चाहिए जबकि जीवी अपने यहा ले जाने का आग्रह कर रही थी । अन्त मे जीत जीवी की ही हुई ।

गाव के छोर पर ही जीवी का घर था । जिसमे घुसने पर सिर टकराव ऐसे पक्के वाले ओसारे मे खाट पर बैठा हुआ जीवी का बाप हुक्का पी रहा था । अलाव मे जलते एक मोटे लक्कड से धुआँ निकल रहा था ।

अलग होते वक्त जीवी ने मणी से कुछ कहा, और 'देख झट आना' कहकर ओसारे की ओर मुडी । दीवार से खडी हुई खाट को बिछाते हुए कहा—' बैठो !"

"कौन है भाई ! आओ !" कहकर बूढे ने भौंह सिकोडकर देखने-पहचानने का व्यर्थ प्रयत्न किया ।

बापा, यह तो ऊधडिया के पटेल है । मेले से घर जा रहे थे सो मैं यहा तमाखू पीने बुला लाई हूँ ।"

"बुलाना ही चाहिए बेटा ! घर लेकर जाँय तो मनुश जनम ही किस काम का ?" के

"रहने दो । हमारे पास है ! चिलम

कहा।

कानजी ने धीमे से हीरा से कहा—"तो उसीका रहने दे।"

"ठीक है, तुम्हारे पास तो होगा ही, पर यहाँ हमारे घर आकर या मना नही करना चाहिए भाई।"

इसके बाद बूढ़े ने बातें शुरू की। ऊपड़िया म घर कहाँ है, कितने लड़के हो आदि के बारे म पूछता हुआ बोला—"जब तक तुम्हारे गाँव मे भगा खवास जीवित थे तब तक तो मैं अक्सर जाया करता था, पर जब से वे मर गए तब से आना-जाना कम हो गया भाई! वह छोकरा है पर भगा खवास तो भगा खवास ही थे भाई!"

बातो का हुकारा भरते हुए कानजी की आँखे और कान पीछे की ओर ही लगे थे। जीवी को पतीली माँजते देखा और वह समझ गया। हीरा को इशारा करते हुए खड़ा हो गया। बोला—"अच्छा तुम बैठो, अब हम चलते है।"

"इस वक्त? कब पहुँचोगे भाई! आज तो रुको! दो घडी बातें ही करेगे। जल्दी हो तो सवेरे तड़के चले जाना।"

"नही नही, हमारे संगी-साथी जा रहे हैं। फिर साथ मे औरतें भी हैं इसलिए"

"लेकिन मैं यह चाय बना रही हूँ सो?" पतीली लेकर आती हुई जीवी बोल उठी।

"ठीक तो है आठ का व्रत (व्रत) होगा। आये हो तो अब चाय पीकर ही जाना। बिरादरी वाले तो कभी कभी आते ही है, पर तुम हमारे घर काहे को आओगे!"

"लेकिन इस कुसमय म दूध कहाँ मिलेगा। बेकार झझट मोल लिये बिना"

कानजी के बीच मे ही जीवी बोल उठी—"यह सब तुम्हे देखना है कि हमे? बैठो, ज्यादा देर नही लगेगी।"

कानजी को बैठना ही पडा।

जीवी ने बाहर के अलाव मे ही चूल्हा बना दिया। लकडी लाकर आग जलाई। इसी बीच दो लोटे लिये हुए मणी भी आ पहुँची। एक म पानी था, दूसरे मे दूध। ज़रा सी देर म चाय तैयार हो गई।

लेकिन इस चाय को कानजी के गल उतरते कुछ देर लगी। घर म स किसी औरत की धीमी आवाज के साथ आती काय काय उसक तेज कानो से छिपी न रह सकी।

चाय पीकर बूढे को राम-राम करते हुए दोना जन उठे। मणी और जीवी आगन तक विदा करने गई। अलग होते हुए कानजी ने जीवी की आखा से आखें मिला दी। चलन से पहले मणी की ओर देखकर धीमे स कहा—"दोनो ने मिलकर चाय तो पिला दी है लेकिन यह न भूल जाना कि अगर कभी मौका पडा तो बदले मे चाय पीनी पडेगी।'

"देखना कही ऐसा न हो कि खुद ही भूल जाओ!" जीवी ने कह डाला।

"अच्छा देखेंगे।" कहकर कानजी चला।

इसके बाद मणी भी, 'अच्छा चल, पानी लाना हो तो। मैं जेहर[1] लेकर आती हूँ।' कहकर चली गई। जीवी अभी तक कानजी की ओर टुकुर-टुकुर देखती खडी थी। सीधे रास्ते न जाकर खेता के बीच से जाते कानजी के साफे का छोर जब तक उसे दिखाई देता रहा तब तक वह खडी रही। लेकिन जब वह आखा से ओझल हो गया तब उसे अपने इस अशोभनीय आचरण का भान हुआ। एक लम्बी सास लेकर वह ओसारे मे आई। खेता की ओर फिर एक नजर डाली और नि श्वास के साथ घर मे अन्दर चली गई।

१ पीतल या मिट्टी का एक बडा और दूसरा छोटा बरतन मिलकर 'जेहर' कहे जाते हैं। नीचे वाला बडा बरतन यदि पीतल का हो तो 'तम्हेडी' और मिट्टी का हो तो 'घडा' या 'चपटा' तथा ऊपर वाला 'कलश' या 'कलसिया' कहा जाता है।

दूसरा प्रकरण

●

अदृश्य प्रभाव

जीवी से अलग होकर कानजी तथा हीरा ने चौमासे के कारण बने चक्करदार लम्बे माग को छोडकर सीधा रास्ता पकडा। कानजी आगे भले ही हो, पर रास्ता हीरा ही दिखा रहा था। इसके अतिरिक्त दोनो जने चुप थे।

अस्त होते हुए सूय का प्रकाश मन्द पड रहा था। आकाश भी बादलो से घिरा जा रहा था। सुदूर क्षितिज मे जोर की गडगडाहट शुरू हो गई थी। परन्तु ऊँट की चाल से चलते हुए इन दो जनो को जैसे इसकी कुछ खबर ही न हो। होगी भी तो उसकी चिन्ता तो जैसे कुछ थी ही नही।

रास्ते पर चलते हुए हीरा ने कहा—"है तो नाई की लडकी, पर देखा कितनी समझदार है।"

"जात से किसी की कीमत थोडे ही होती है हीरा। मनिख (मानुष) की कीमत तो उसकी आँखो से आँकी जाती है।"

'बेशक नही तो वह मणी अपनी जात की ही थी न ?'

हीरा के इस कथन को भी कानजी ठीक नही समझता था। उसे लगता था कि इस विषय मे मणी को दोष देन की अपेक्षा उसकी प्रशसा करना ही अधिक उपयुक्त था। परन्तु इस सब झझट म न पडकर वह हाँ' कहकर ही चुप हो गया।

जाति-सभा अथवा मल मे जान पर ऐमी कितनी ही जान-पहचान हाती थी और उन जान-पहचाना का चर्चा 'क्या नखरे करती है, मौका पडा ता दिखा देता', आदि के रूप मे काफी देर तक चलता था। लेकिन न जाने क्यो, आज न तो कानजी ही कुछ बोलता था और न हीरा की ही हिम्मत पडती थी।

दूसरी ओर हीरा को यह मौन भी सालता था। कहा—' या गुम-सुम चलने से तो अलगाझे ही बजाओ तो कुछ रास्ता कटे!'

"अर परेशान क्यो होता है, ले बजा न?' कहकर कानजी न अल गोझे हीरा के आगे कर दिया।

'यदि मैं चलत चलते बजा सकता होता तो फिर परेशानी की बात ही क्या थी? तू ही बजा न, वे लोग सुनेंगे ता उनका जी भी कुछ चैन पायगा।

कानजी अचानक चौक पडा। पूछा— 'कौन लोग?'

'कौन क्या? वे ही अपने गाँव वाले। अभी बहुत दूर नही गये हागे।" हीरा न कहा। कानजी ने एक लम्बी सास ली।

आते समय रास्ते भर अलगोझे बजात आन वाले कानजी को इस समय एक फूक मारन मे भी जैसे थकान अनुभव हाती थी। कहा— 'मरन द अब! बजाकर यहाँ किसको सुनाना है?'

'ता इतने दिन किसको सुनाने के लिए बजाता था? जाते समय तो एक क्षण के लिए भी मुह स नही हटाये थे।'

"लेकिन यह तो मानी हुई बात है कि जितनी उमग से मल म जात है उतनी उमग स काई वापस थोडे ही लौटते है।'

'ऐसी काई बात नही"—और हीरा ने वह हो तो डाला—"आज तुझे कुछ हा गया है, नही ता हर बार तू खूब उमग स ही लौटता था।'

'हागा भाई! जो तुझे लगे मो ठीक!" कहकर कानजी हँसा।

यद्यपि हीरा इस बात को यो ही छाडने वाला न था तथा मैं ही उसके कान मे— 'वे आये, लो उठो!" की आवाज जो

वह चुप हो गया।

जीवी

सूर्यास्त हो चुका था। बादल भी आकाश को चारो ओर से घेरकर ऐसे झुक रहे थे जैसे बरसने का विचार कर रहे हो। हवा का एक झोका आया और दूसरे झोके के साथ तो वर्षा भी होने लगी। युवतियाँ युवको की छतरियो के नीचे चली गई। इस प्रकार आधे भीगते हुए और बिजली की चमक से रास्ते का निश्चय करते हुए वे चाय पीने के लिए पीछे रहे कानजी और हीरा को रास्ते भर बनाते हुए बडी रात गये गाव मे आकर लगे। अब वर्षा भी बन्द हो गई थी।

ऊधडिया गाँव एक बडे टीले पर बसा हुआ था। गाँव मे अधिकाश पटेलो की बस्ती थी। प्रत्येक पक्ति मे आठ से लेकर दस तक घर थे। यो तीन थोक मिलाकर चालीसेक घर थे। गाँव के इर्द गिर्द बिखरे बीसेक छप्पर ठाकुराओ[1] के थे। गाँव मे एक बनिये की दूकान थी। नजदीक के एक गाँव के ब्राह्मण का घर भी वहाँ था। इसके अलावा नाई, दर्जी बढई और लुहार का भी एक एक घर था। इस प्रकार ऊधडिया आस पास के गाँवो की अपेक्षा बडा गाँव समझा जाता था।

गाँव का चढाव शुरू होते ही हीरा ने काली की ओर देखकर कहा—'भगवान् ने तुम्हे औरत का जन्म किसलिए दिया है? गाँव के पास आकर तो कुछ गाओ।'

'हाँ किसी को क्या मालूम है कि तुम मेले मे गई थी।' कानजी ने हाँ मे हाँ मिलाई।

इतने मे ही दूसरे युवको ने जी-हजूरी करते हुए कहा— हाँ हा गाओ नही तो तुम्हारी लाज रखने के लिए हम गाना पडेगा।''

युवतियो को और उनमे भी काली को तो इससे अधिक कहने की जरूरत ही नही थी। दो जनियो ने मिलकर गीत उठाया

1 निम्न कोटि के ठाकुर, जो पटेलो से भी नीचे होते हैं। इनका विकास ठाकुरों से नीची जाति के लोगो को हेय दृष्टि से देखने से हुआ है।

— ५

"हम मेले का मजा लेने गये थे ।
अहा, वन कसा मोरो से भरा था ।"

परन्तु जैसे ही दूसरी से तीसरी पक्ति गाई जाने लगी कि गाव के नाके पर स्थित छोटे से घर से एक अधेड आदमी मेले वाले आ गए क्या ?' कहता हुआ बाहर निकला। पीछे दो चार युवक भी आ खडे हुए। कानजी के पास आकर उस अधेड ने कहा—"जो तुमने कहा था सो किया तो सही कानजी, पर अब ज्यादा देर न करना ! चाय ता हम यही बना लेंगे लेकिन तुम सब जल्दी आओ तो काम बने । पखावज पर आटा चढाने की ही देर है ।"

"तुम जरा ठोको भगतजी, इतने मे हम आये !" कहकर कानजी चलने लगा।

भगतजी इस गाव मे कुछ और ही ढग के आदमी थे । वास्तव मे वे थे तो इस गाव के पटेल ही, पर बचपन मे घर से भाग गए थे। दुनियादारी के तनिक-से भी ज्ञान के बिना, खाली हाथ पैरो के भरोसे बाहर निकल पडने वाले इन छोकरे पर क्या-क्या नही बीती थी। हल वाई से लेकर व्यापारी तक और रामलीला से लेकर नागा बाबाओ तक उसने बहुत सी जमात देख ली थी। परन्तु अन्त मे वह सब-कुछ छोडकर, और बालो के बदले आधे बाल सफेद लेकर आज से पाच वष पहले, फिर अपने गाव म आ बसा था। असली नाम तो रामू था, पर अब गाव के लोग उसे भगतजी के नाम से ही जानते थे। गाँव और जाति के रीति रिवाजो के साथ भगतजी ने वहा की वेश भूषा भी अपना ली था। हल भी जोत लिया था और यदि औरत करने की इच्छा होती ता यह भी घरेजे[1] द्वारा पूण कर सकते थे। कारण यह था कि दो वष स सगहदार आदमियो मे गिने जाते थे। उनकी प्रतिष्ठा भी अद्भुत ढङ्ग से जम गई थी। अद्भुत ढङ्ग से इसलिए कि पैसा न होने पर भी भगतजी पैसे वाले

१ बिना विधिवत विवाह किये किसी विधवा या परित्यक्ता को घर मे रख लेना 'घरेजा' कहलाता है। व्रज मे भी यह प्रथा अप

रहना, फिर भले ही खेत का सफाया हो जाय।"

"अगर यही बात है तो तुम्हीं जाकर रखवाली करो न !" जाते जाते कानजी ने कहा। कानजी के ऊपर जीभ का हँसिया चलाती हुई भौजाई ने कानजी के बदले बेचारे नींद में पड़े पड़ोसी पर ही जान-अजाने गुस्सा उतारा।

कानजी के परिवार में बड़ा भाई, भाभी और एक सातेक वर्ष की भतीजी इतने ही प्राणी थे। यद्यपि स्वयं उसका विवाह छोटी उम्र में हुआ था तथापि विवाह के दो वर्ष बाद ही पत्नी का देहान्त हो गया था। उसके बाद किसी ने कन्या के लिए चिन्ता न की और जब घर के ही ऐसे लापरवाह हों तो कन्या की सहज कमी वाली जाति में ऐसी किसकी छोकरी फालतू रखी थी, जो खुद पूछता हुआ आता? बड़ा भाई भोला भाला था, पर उसके भोलेपन का दण्ड तो इस समय कानजी को ही भोगना पड़ रहा था और यदि इन दो वर्षों में कोई विधवा या परित्यक्ता न मिली तो हो सकता है कि जीवन भर ही भोगना पड़े।

कानजी से लोग कहते—'तुझे ऐसे ही भटकता हुआ रखकर इन्हें तो काम करवाना है। इनका क्या बिगड़ता है? रोटियों पर काम करने वाला मजूर मिला है तो फिर किसी को क्या पड़ी है जो कहीं पूछ-गछ कराए !" आदि आदि।

परन्तु कानजी शान्त भाव से उत्तर देता—"अरे भाई, औरत के बिना कौन-सा काम बिगड़ा जा रहा है !" और बड़े भाई के ये शब्द दुहराता —"तकदीर में होगी तो बिना पूछे ही आ मिलेगी और यदि तकदीर में नहीं है तो हजार जगह धक्के खाने पर भी न मिलेगी।'

वैसे यदि सच पूछा जाय तो कानजी का अपना ही इरादा कच्चा था, नहीं तो उस जैसे रंगीले स्वभाव वाले को अब तक कोई-न-कोई तो मिल ही गई होती। यह माना कि किसी पति को छोड़कर आने वाली स्त्री को घर में रखकर दण्ड के तीन चार सौ रुपये भरने की सामर्थ्य उसमें न थी, पर यदि उसने संकल्प कर लिया होता तो किसी विधवा के भाग्य ने

उसने अवश्य ही समझा दिया होता। बहुत सम्भव है कि वह ऐसे ही आत्मविश्वास के आधार पर किसी मनचाही स्त्री की आशा म बैठा हो। जीवी

भाभी के तान तिमना को हँसकर उडा देने वाले कानजी को न जाने क्या आज बुरा लगा। सीधे खेत म जाने की सोची पर कान म पखावज और मंजीरा के स्वर पडने से उसे अपनी राह देखती मण्डली का खयाल आ गया। वह भगतजी के घर की ओर ही मुड गया।

उसे देखते ही पन्द्रह-बीस जवानों की टोली बोल उठी—'यह आया काना भाई। दो चार ने तो जगह करते हुए कहा भी—"अरे काना भाई को पखावज दो। तुम तो बजा चुके।"

कानजी पहले सीधे अन्दर आना।' अन्दर से भगतजी ने पुकारा। और कानजी के आगे चाय का प्याला रखते हुए कहा— ले यह चाय पी जा। दिन मे पाँच रोटी खाने वाले कानजी के पेट म आज दो प्याले चाय को छोडकर और कुछ नहीं पडा था। फिर भी आज उस भूख न थी। यदि वह ना कहता तो उसकी ना चलने वाली न थी। इसलिए चुपचाप चाय पी गया। उसके बाद हीरा और मनारे जैसे दो-तीन जवानो की मण्डली के साथ ओसारे म आ बैठा। अनिच्छा होने पर भी पखावज सँभाली। भगतजी और हीरा ने मंजीरे लिये।

पखावज पर कानजी का हाथ ऐसा जम गया था कि यदि यह कहा जाय कि वह जैसा चाहता था वैसा बुलवा देता था तो कोई अत्युक्ति नही। उसने हथौडी से पखावज को कुछ ठोका-ठाका। एक गत बजाकर देखी और बोला— अच्छा तो होने दो भगतजी।

पागल हो गया ? क्या ? यदि हमसे ही बजाना आता तो आधी रात तक तेरी राह देखने की क्या जरूरत थी ? अच्छा चल अब खुशामद कराये बिना शुरू कर।" भगतजी ने कहा।

इस तरह क्या नही चल सकता है काजी ? कहकर हीरा ने भगतजी का समर्थन किया।

लाचार होकर कानजी ने गणेशजी के भजन से ही शुरुआत की।

उसके बाद दो-तीन दूसरे भजन भी कहे। भगतजी, हीरा तथा एक दो अन्य युवकों से भी एक एक दो-दो गवाये और इस प्रकार पहले मुर्गे के बोलने तक कीर्तन चलता रहा। लेकिन उठते समय अधिकांश लोगों ने अनुभव किया कि आज के कीर्तन में जैसा जमना चाहिए था वैसा रंग नहीं जमा। भगतजी ने तो अलग होते ही कानजी से कह भी दिया—'तू मान या न मान पर तुझे आज कुछ हो गया है।'

"नहीं भगतजी! मुझे क्या होना है?" कहकर कानजी हँसने लगा।

"तू भले ही ना कह पर हम मानने वाले नहीं।" दूसरे ने कहा।

लेकिन इसी बीच हीरा कानजी की मदद के लिए दौड़ा—"तुम भी क्या बात करते हो भगतजी! एक तो निरजल उपवास, दूसरे सोलह कोस का सफर और फिर मेले में घूमना। थकान तो होगी ही।"

"बात तो ठीक है" कहकर भगतजी चुप तो हो गए परन्तु कानजी के मुख पर गड़ी हुई उनकी आँखें इसे मानने को तैयार न थीं। [illegible] होते हुए बोले—'अरे, यह तो जरा सोया कि फिर [illegible] जायगा। मचान पर न जाना हो तो यहीं सो जा।"

"नहीं, मचान पर ही जाऊँगा। ले, चल हीरा! [illegible]" कहकर कानजी आगे बढ़ा।

थकान, भूख और जगार, तीनों इकट्ठे हो [illegible], [illegible] कानजी को आज नींद नहीं आ रही थी। आँखें [illegible], [illegible] जातीं। ऐसे ही करते-करते जब बिलकुल [illegible] नींद आई। परन्तु दिमाग में चर्खे ही घूम [illegible]।

बाँस बराबर दिन चढ़ने पर [illegible] सारा शरीर दुख रहा था। दिमाग [illegible] जाने कितनी देर तक वह इसी [illegible]। [illegible] कानों में किसी की आवाज पड़ी [illegible]। [illegible] क्या है?" कहता हुआ [illegible] करने में लग गया।

तीसरा प्रकरण

•

मोह-पाश में

भादो की बदरीली रात थी। आकाश और पृथ्वी पर ताण्डव का आयोजन था। चारो ओर घोर अंधकार था। आधी रात बीतने पर भी कानजी कोरी आँखो मचान की झोपडी म गुदडी का सहारा लिये बैठा था। उसके कान खेत की सीमा पर नहीं, प्रत्युत क्षितिज की सीमा पर काबरिया पहाड की तराई मे भटक रहे थे। प्राण घूम फिरकर जोगीपुरा की नोक पर जा पहुँचते थे। जीवी की सुदर देह लता की अपेक्षा उसकी अमृत भरी आँखें उसे बार बार याद आती थी। जैसे जैसे कानजी इस सबसे छूटने की कोशिश करता था वसे वैसे उसकी उलझन बढती जाती थी। जीवन मे कभी रोया न था, इसलिए रोने मे भी उसे शम लगती थी। इतना होने पर भी वे ढीठ आँखें चुपचाप अश्रु बिदु गिरा ही देती थी। कानजी ने एक लम्बी साँस लेकर अपने से कहा—' अरे मूरख ! न जात न पात कहाँ जाकर दिल लगाया है ?"

लेकिन उसके बाद उसने आज भी रोज की तरह अपना मजाक ही उडाया—' पहाड पर की कनेडी[1] बहुत ही सफेद होती है, लेकिन किस काम की ? जलाने तक के काम नही आती।" जब कि उसके हृदय ने रोज का गाना आज भी गाया—' न न मैं उसके रूप का भूखा थोडे ही हूँ। रूप म तो गाँव की काली ही कौन सी कम है ? और मेरे पीछे हाथ

१ वृक्ष विशेष, जो बहुत सफेद होता है।

पैर भी क्या थोडे मारे हैं ? परन्तु नही जोगीपुरा वाली की तो बात ही कुछ और है। एक झलक मिलते ही जनम जनम की भूख भाग जाती है।"

और कानजी ने इस सुअवसर को ऐसी फुर्ती से प्राप्त किया, जैसे जीवी की झलक पाकर वह अपनी जनम जनम की भूख को शात करने जा रहा हो। कुटुम्ब की एक बुढिया के मृतक थे। कानजी ने बिना कहे ही सात कोस पर स्थित एक बडे गाव से साबुन ले जाने का जिम्मा लिया। हीरा जैसा को तो अचम्भा भी हुआ— न जाने क्यो बेकार की जानमारी कर रहा है। उस खेमा जैसे किसी को भेजा होता तो कम से कम साबुन तो ले ही आता।" उसने कानजी से कहा भी, पर उसने सक्षेप मे यही उत्तर दिया—"कभी ऐसा भी चक्कर लगाना चाहिए न ? अगर हम ठाकुर बने घर मे बैठे रहे तो क्या मुसीबत पडने पर कल कोई हमारे काम आयगा ?"

यद्यपि इस उत्तर से हीरा को सताप नही हुआ तथापि वह 'तुम्हारी मर्जी' कहकर चुप हो गया। अन्दर ही अन्दर उसके मन मे सदेह था— 'हो न हो कानजी किसी दूसरे ही कारण से जा रहा है।"

हीरा का सदेह सत्य था। कानजी ने जोगीपुरा का ही रास्ता पकडा था। रास्ते मे वह ऐसा भी सोचता था—"गाँव मे अगर कोई नात रिश्तेदारी होती तो भी वह इस वहाने किसी के घर जाता। अब क्या वहाना करेगा ?' लेकिन अत म 'चोरी के लिए मोरी भी निकल ही आयगी' यो मन मे निश्चय करके उसने जोगीपुरा मे प्रवेश किया।

यह ठीक है कि जोगीपुरा मे पटेलो की बस्ती थी, पर वे दूसरी प्रकार के पटेल थे। यही तो कारण था, जिससे कि कानजी, हीरा आदि इस गाँव से—इस गाव के लोगो से अपरिचित थे।

जीवी के घर की ओर मुडते हुए कानजी को तो यह बिना सम्बन्ध का गाँव और भी अच्छा लगा— यहाँ कौन जानने वाला बैठा है जो यह कहगा कि पटेल होकर नाई के घर क्या गया ?'

जीवी के आँगन मे पहुँचते ही कानजी के कान मे घर मे होती कलह

की आवाज पडी। पीछे लौटने को मन हुआ, पर इतने मे ही "घर का काम जब होना होगा तब हो जायगा। मुझे तो पहले अपने बाप की टहल[1] करनी है पीछे कुछ और" कहती हुई जीवी को हुक्के के साथ दरवाजे से बाहर निकलते देखा। कानजी को देखते ही जीवी के शब्द मुह के मुँह मे रह गए। दोनो हृदयो मे से कौन-सा कितना ज्यादा जोर से धडक रहा था, यह कहना कठिन है। लेकिन मुह देखकर तो यही लग रहा था कि जीवी का ही ज्यादा जोर मे धडक रहा है। दूसरे ही क्षण जीवी ने अपने को सँभाला। कानजी से 'आओ' कहकर बूढे बाप के हाथ मे हुक्का देती हुई बोली— 'बापा, जरा जगह दो न।"

हा भाई, हाँ आओ!" कहता हुआ बूढा आखें मीचता हुआ खाट की पायत की ओर खिसका। पूछा—' कौन है बेटी ?"

' वे ही, ऊधडिया के पटेल हैं।"

"खूब आये भाई! बेटी इन्हे जरा तमाखू दे, और यदि चिलम न हो तो देख उस आले मे ।'

' नही-नही, मेरे पास है।" कहकर कानजी ने चिलम निकाली। जीवी के हाथ से चिलम लेते हुए उसका हाथ कुछ काप रहा था। काँपते कापते ही उसने जीवी की उँगलिया भी सहज भाव से दबा दी। जीवी कान की लौर तक ऐसे लाल हो गई, जैसे उसके हृदय ने समस्त रक्त मुह की ओर ही धकेल दिया हो।

उसने कानजी को झिडकी भरी नजर से देखा। बाप की ओर इशारा करके उसने पीठ फेरते हुए जो दूसरी नजर डाली तो कानजी को लगा जैसे वह कह रही हो—'तुम्हारा भी कोई ठिकाना है!'

चिलम पीने के बाद कानजी उठा। बोला— अच्छा तो नाई ठाकुर अब मैं चलता हूँ।' बूढे ने बडा आग्रह किया—"घर से तो जल्दी ही चले होगे। न जाने क्या खाया पिया होगा ? दूध मे जरा आटा उबालकर "

१ सेवा।

"नही नही, मैं तो घर से खाकर ही मोणपुर के लिए निकला हूँ। यह तो इस मोड पर आकर रास्ता भूल गया, इसलिए मैंने कहा कि लाओ आया हूँ तो नाई ठाकुर से ही मिलता चलू !"

'बहुत अच्छा किया भाई ! मिलना तो चाहिए ही। आदमी को आदमी से प्रेम न हो तो किसको होगा भाई !"

"यह तो है ही। अच्छा राम राम !" कहकर कानजी चला।

"अच्छा भाई ! तुम्हे मोणपुर जाना है न ? यहा से पश्चिम की ओर।"

रस्सी और हँसिया लिये दरवाजे मे आ खडी हुई जीवी बोल पडी—"मैं आम वाले खेत मे चार[1] लेन जा रही हूँ। उधर का रास्ता बता दूगी बापा !"

"हा बेटा, चौमासे मे रास्ता भी तो ऐसा भूल भुलैया का हो जाता है कि जानकर भी '

कानजी ने फिर 'राम राम' की, और आगे बढा। बीसेक कदम का फासला रखकर जीवी भी निकली। पीछे घर मे होन वाली 'हां बेटी, हा बेटी करके लडकी का सिर पर चढा रखा है, पर अगर किसी दिन कलक का टीका न लगाए तो कहना कि मैं क्या कहती थी' इस काय काय की ओर जीवी की अपेक्षा कानजी का ध्यान ही अधिक था। गाव से निकल कर उसने जीवी से पूछा भी— 'यह तुम्हारी सौतली माँ है न ?"

जीवी ने हँसकर कहा—"तुमने क्षण भर म पता खूब लगा लिया ?" और आगे बोली— 'मेरी यह मा अपनी मौसी के एक लडके से मेरा गठबन्धन करना चाहती है। मैं मना करती हूँ, इसीलिए तो "

न जाने गठबन्धन वाली बात से या किसी और कारण से कानजी को यह प्रसग बहुत अप्रिय लगा। बीच मे ही ' जहाँ देखो वहा ऐसा ही है" कहकर आगे बोला—"लेकिन तुम बेकार मेरे पीछे आइ जीवी ! रास्ता तो मैं किसी से भी पूछ लेता।"

१ चारा।

जीवी ने कतराती आखा से कानजी की आर देखा। हसकर बोली—"अगर ऐसे ही किसी से रास्ता पूछ लेना होता ता मोणपुर के बदले जोगीपुरा न आ निकलते !"

कानजी सन्नाटे मे आ गया। जीवी की ओर देखते ही उसकी हँसी छूट गइ। जैसे घबराहट दूर हो गई हो ऐसे बोला—"लगता है जैसे तुम्ह तीनो काला का ज्ञान हा !"

'अरे नहीं, जब मुझे अपने काल का हा ज्ञान नही ह तब तीनो कालो की तो बात ही क्या है ?" कहकर जीवी मुख पर आती उदासी के घूट को पी गई। तुरत बोली—' लेकिन सच बताओ, जो कुछ मैंने कहा है वह सही है या गलत ?" और मादक दृष्टि से कानजी की ओर देखने लगी।

कानजी ने अपने पलक ऐसे उठाए जैसे वे मन मन के हो गए हा। जीवी की आर देखता हुआ एक गहरी सास लेकर बोला—"जीवी, तू मुझे किसलिए बुलाती है ? न जाने उस दिन से मुझे क्या हा गया है ! सच कहता हूँ मुझसे पेट भर अन्न भी नही खाया जाता।"

जीवी ने गुप्त ढग से साँस ली। कहना चाहा—ता यही किसस खाया जाता है पर यह न कहकर हँसती हुई दूसरी बात कहने लगी—'किसी की नजर तो नही लग गई है ? किसी स्याने[१] को दिखाकर "

क्षण भर क लिए कानजी हतप्रभ हो गया पर दूसरे ही क्षण जीवा की आँखो से आँख मिलत ही हँस पडा। लेकिन वह कितनी देर को ? कुछ ही दर बाद बोला—"तुझे यह सब मजाक लगता होगा, क्या ?'

मजाक नहा तो और क्या ? बहादुर आदमी होकर ऐसे ढीले क्या हा ?"

'तरी जो इच्छा हो सा कह ! लेकिन देख, अगर किसी दिन मुझ गुस्सा आ गया तो सोनी को उठा ले जाऊँगा !" कहकर कानजी जीवा

१ तांत्रिक।

की ओर देखता हुआ हँसने लगा। खेत के अडवगा[1] के पास आकर जीवी खडी हो गई।

होठो मे ही हँसती हुई बोली—"सोनी को तो दुनिया उठा ले जाती है, जागती का उठा ले जाओ तो जानू !" और कुछ कहना चाहने वाले कानजी को चुप करती हुई आगे बोली—'एक औरत के लिए अपने शरीर को भ्रष्ट करते हुए लाज भी नही आती !"

"जब प्राणा को भ्रष्ट करते हुए लाज नही आई तब शरीर को भ्रष्ट करते हुए क्या लाज आयगी ? लेकिन सच कहता हूँ" कानजी को गुस्सा आ रहा था या और कुछ हो रहा था, यह तो वह जाने, पर उसकी मुद्रा अनायास विकृत हा गई थी। जैसे उसे बोलने तक का होश न हो।

जीवी ने अडवगा लाँघते हुए कहा—' यहाँ रास्ने मे न कहकर जा कुछ कहना हो सो खेत मे कहना !" लेकिन कानजी को जहाँ-का-तहाँ खडा दखकर जीवी भी रुक गई बोली—"चलो न, दो घडी बातें करेंगे !"

"सच कहता हूँ ! देख, मुझे बुलाने मे कुछ सार नही निकलेगा।" कहता हुआ कानजी जैसे बेहोशी की दशा मे हो, अडबगा की ओर बढा। अन्दर पहुचने पहुँचते तो उसकी आँखें फट चुकी थी। बिना इधर उधर देखे ही उसने पीठ फेरती हुई जावी को जेट[2] म भर लिया, मुह पर स्नेह की मुहर लगाई और फिर छोड दिया। जीवी गिरते गिरत वची। वह अडबगा के बाहर ऐसे निकला जैसे जल उठा हो। जीवी की आर दृष्टि डालकर जाते जाते बोला—"एक दिन उठा न ले जाऊँ तो कहना कि क्या कहता था ?"

१ खेत मे घुसने का स्थान, जिसमे एक लकडी से कामचलाऊ फाटक सा बना लेते हैं।

२ दोनो बाँहो मे।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि कानजी की पीठ को देखती हुई जीवी की आखो मे आने वाले आँसू हर्ष के थे या शोक के, गुस्से के थे या परेशानी के, या फिर किसी और चीज के, पर इतना निश्चित है कि आसू आ अवश्य गए थे।

चौथा प्रकरण

•

माया की भँवर मे

कानजी के मचान पर कानजी, हीरा और भगतजी तीनो बैठे थे। हीरा मक्का के भुट्टे भून रहा था। गुदडी पर बैठे हुए भगतजी हाथ के भुट्टे से एक एक, दो दो दाने नुकाते और मुँह मे डालते जाते थे और कानजी की ओर देखते हुए किसी विचार मे मग्न दिखाई देते थे। जब कि झोपडी के खम्भे का सहारा लिए पैर पर-पैर रखे बैठे कानजी की नज़र सामने आकाश पर गडी थी। हीरा ने एक भुट्टा भूनकर कानजी की ओर रखा, दूसरे मे से मुट्ठी भर दाने नुकाकर मुह मे डाले और फिर दूसरे भुट्टो को फेरने लगा।

"यह भुट्टा ले कानजी ! अरे आसमान मे क्या देख रहा है ? भगतजी न कहा।

'मैं यह सोच रहा हूँ भगतजी कि भगवान् ने यह सब टटा खडा किसलिए किया है ?

"किसलिए ? सिफ नप्ट होने के लिए। आदमी को क्या करन के लिए पैदा करता है ? मारने के लिए ही न ?" भगतजी ने कहा।

'उसे इसी मे मजा आता है क्यो भगतजी ?" कानजी सचेत हुआ। बगल म पडे भुटटे को उठाकर फिर उसकी ओर देखने लगा।

'लेकिन आजकल तुझ पर यह वैराग्य कहा से सवार हुआ है ?' कहकर हीरा ने दानो की दूसरी मुट्ठी मुह मे डाली।

जैसे हीरा की बात ही न सुनी हो ऐसे कानजी कुछ देर बाद बोला—
'यह सब माया ही है क्या भगतजी ?

'माया न हो तो आदमी जिये ही क्यों !' कहकर भगतजी गंभीर हुए।

'लेकिन गीता में तो भगवान् ने माया से विलग रहने के लिए कहा है भगतजी !

यह भी माया है भाई !' कहकर भगतजी कुछ हँसे।

कानजी ने भगतजी की ओर दयनीय दृष्टि से देखा। कहा—"नहीं भगतजी ? ऐसे उडाओगे तो काम नहीं चलेगा। ठीक जवाब दो !'

ठीक जवाब तो मुझसे नहीं आता। तू भी गीता पढ़ता है और मैं भी पढ़ता हूँ। जो तेरी समझ में आए सो तेरा और मेरी समझ में आए सो मेरा। और उस हीरा की समझ में कुछ भी नहीं आता तो इसके लिए कुछ भी नहीं है। क्यों हीरा ?' कहकर भगत जी फिर हँसने लगे।

हीरा ने भगतजी के लिए हुँकारा न भरकर उनकी ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—'अगर सच पूछो तो भगतजी इस कानजी को तुम्हीने बिगाड़ा है। तुम्हीने इसे पढ़ाया और अभी अभी यह जो गीता बाँचने लगा है सो भी तुम्हारे ही कारण !"

लेकिन जब यह मुझसे पढ़ा था तब तो 'सदेवत सावलिंगा' और 'गजरा मारू'[1] बाँचने भर को पढ़ा था। उस वक्त मुझे क्या पता था कि यह गीता की माया में पड़ जायगा।' कहकर भुट्टे की छल्ली बाहर फेंकते हुए बोले – लाओ एकाध नरम देखकर हो तो नहीं तो चलें।

हीरा ने एक भुट्टा भगतजी को दिया और दूसरा कानजी की ओर कर दिया।

'मेरे पास तो है तू खा ले !'' कानजी ने कहा।

अच्छी बात है।' कहकर हीरा ने पहले भुट्टे के दाने चुकाकर छल्ली फेंक दी। हाथ के दाने मुह मे डाले और दूसरा भुट्टा लेकर खड़ा

१ गुजराती लोक प्रेम-कथाएँ।

हाना हुआ बोला—"ला, उठा भगतजी ! तुम दाना की होड करें तो भीख माँगनी पडे। चला, चलता हा ता !"

'अरे चल तो रहा हूँ !" कहकर भगतजी उठे।

कानजी से विदा लेकर दोनो जन नीचे उतरे। अकेले पडे हुए कान जी क कान म कौआ की आवाज आई। 'धत्तेरे की ! काले आ गय न ?' कहता हुआ कानजी उठा और बगल म रखी गोफन तथा पत्थर हाथ म लिए।

सिरडुबाऊ मकरा म होकर जाते हुए हीरा तथा भगतजी क सिर क ऊपर से पत्थर गोल की तरह सननन् करता हुआ निकल गया। हीरा बाल उठा—' अर, दखना कहीं हमारा सिर न फोड देना !"

'इतना ज्यादा डर लगता है ता सिर का साथ लिये क्या फिरता है घर ही छोड आना था न ?" कहकर गाफन म दूसरा पत्थर रखता हुआ कानजी हँसने लगा।

रास्त पर आकर हीरा न भगतजी स कहा—"मुझे लगता है कि यह कानजी अबेर-सवेर साधू हा जायगा। भगतजी, आजकल उसके रग-ढग उस सब माया का छोड जाने कसे लगत ह।"

भगतजी हँसे और बोल—"इसक विपरीत मुझे और ही भय है हीरा ! मुझे ता उलटा ऐसा लगता है कि यह किसी माया म गहरे से गहरा फँसता चला जा रहा है।'

' नहीं, नहीं भगतजी ! एसा कैस हो सकता ह ?" कहकर हीरा साच म पड गया— 'भगतजी न जाने किस माया की बात करते ह ?"

मुह नीचा करक चलने वाले विचार मग्न से भगतजी फिर बाले—"तू मान चाहे न मान, पर इसका पैर किसी गडढे मे पड गया है।"

"नहीं भगतजी, ऐसे तो लाख गडढे फलाँग जाय तो भी कानजी का कुछ नही हान का, वह खुद स्याना और भूत प्रेतो का मुकाबला करता है, यह क्या तुम नही जानत ?"

भगतजी को कुछ हँसी आ गई। "मैं जिस गडढे की बात कहता हूँ

वह और ही है हीरा !' महाराज जरा रुके और हीरा की ओर देखकर मन्द मन्द मुस्कराते हुए बोले— 'कानजी का यह दर्द मैं समझ गया हूं। इसे कोई जीनी डाकिन लग गई है।'' और आगे बढ़ते हुए जैसे दानों बातों के रहस्य का उद्घाटन करने की कोशिश करते हुए वे बोले—''या तो कोई मेहमान बनकर आया हो, या वह खुद किसी दूसरे गाँव में गया हो, या फिर राह चलते धनोबा बना हो—कुछ भी हो, पर तू विचार करके देखना हीरा ! अगर झूठ निकले तो मेरे मुँह पर थूक देना।''

हीरा की आँखें जैसे फन-से खुल गई। उसे याद आया कि पन्द्रह दिन पहले कानजी साबुन लेने गया था। जैसे सारा भेद खुल गया हो। मन ही-मन कहने लगा— हो न हो, कानजी को उस डाइन की ही माया लगी है। ऐसा न होता तो वह साबुन लेने जाता ही नहीं। जोगीपुरा गये बिना उसे इतनी देर हो ही नहीं सकती थी।' एक लम्बी साँस लेकर सिर हिलाते हुए हीरा बोला—''यदि तुम्हारा कहना सच है तो गजब हो गया भगतजी !''

परन्तु भगतजी ने न तो 'क्या ग़जब हो गया' जैसा सवाल ही किया और न इस विषय मे कुछ पूछा ही। जैसे कुछ सुना ही न हो ऐसे बोले— 'तू तो घर ही जा रहा है न ? तो ले, मैं जरा खेत मे चक्कर लगा आऊँ ?'' कहकर वे दायें हाथ को मुड गए।

जैसे कोई पहले पतली पगडण्डी से रास्ता दिखाता हुआ लाए और फिर तीन रास्तों के अपरिचित तिराहे पर छोडकर चलता बने, ऐसे मुँह फाडे हुए हीरा भगतजी की ओर ताकने लगा। बोला— लेकिन भगत जी तुम पूरी बात तो सुनो ! इसका कोई हल तो ''

भगतजी ठहर गए। हीरा की ओर दया-भरी दृष्टि से देखते हुए हँसकर बोले— अरे तू भी क्या आदमी है ? यह तो जिसने उलझाया है वही सुलझायगा। इसमे तू इतना ज्यादा परेशान क्यो होता है ?''

भगतजी की ओर कदम बढाता हुआ हीरा कहता जा रहा था— 'लेकिन यह तो किसी के बाप से भी सुलझने लायक नहीं। ज्यो-ज्यो

सुल्झान की कोशिश होगी त्यो त्यो उल्टा और उलझेगा। तुम पूरी बात तो "

हीरा अपनी बात कहना चाहता था जबकि भगतजी जैसे बात सुनना ही नहीं चाहते हो ऐसे बीच मे बोले— लेकिन पूरी बात सुनकर भी में इसमे क्या कर सकता हूँ ? और तू भी क्या कर सकता है ? इसे तो वह स्वय ही सुलझा लेगा। बिना किसी तरह की चिन्ता किये तू अपने घर जा और किसी काम मे लग !" कहकर भगतजी फिर चलने लगे।

हीरा भगतजी की पीठ का देखता रहा। एक बार कानजी के पास जाकर 'तूने यह क्या सोचा है कानजी ?' कहकर चाडने का भी विचार आया। लेकिन इतना समय बीतने पर भी उसने मुझसे कोई बात तक नही की।' इस भावना से 'जाने दो फोडेगा अपना करम !' यो बड बडाता हुआ अपने घर चला गया।

लेकिन कानजी ने हीरा से जो बात नही की उसका कारण स्पष्ट था। जहा कुछ उपाय न हो वहा ऐसी पागलपन की बात करके क्यो मूख बना जाय ? सोचने को जो-कुछ था वह सब तो उसने मन ही मन सोचकर देख लिया था। जीवी के साथ अपना जीवन मिला देने मे उसे जाति की भी परवाह न थी। बडा भाई घर मे हिस्सा न देगा या गांव के लोग गाव मे न रहने देंगे इसकी भी उसे विशेष चिन्ता न थी। चिन्ता थी तो बडे भाई के जीवन की। इसके साथ ही उसे अपनी इस बाढ पर आई हुई जवानी का भी ज्यादा भरोसा था। और जीवी के प्रति आकर्षण मे भी उसे 'कोरा भ्रम है' जैसा भय लगा करता था। परन्तु यह भय उसने अपने आप खडा किया है, इसकी भी उसे खबर न थी।

बडे भाई का एक हाथ ही टूटा हुआ न था प्रत्युत शरीर और मन भी आधे टूटे हुए थे। यही तो कारण है कि पाँच वर्ष पहले गुजर जाने वाले पिता ने, जिसके रेखें तक न निकली थी ऐसे छोटे बेटे को पास बिठाकर बडे की देख भाल करने के लिए कहा था—"काना ! अपने बडे भाई की सिधाई देखना बेटा ! कल तू बीवी-बच्चो वाला होगा

और मुझे भरोसा है कि तू औरत पाये बिना न रहेगा—लेकिन फिर भी तू अलग न होना समझा ! औरतो को साथ रहना अच्छा नहा लगता लेकिन फिर भी बेटा, तू अपने बडे भाई को न छोडना ! अलग रह तो भी तू उसके घर का बोझ स्वय उठाना । तेरी भाभी मानुख है तो बोलेगी भी । लेकिन तू तो मेरा सयाना बेटा है न ? उसकी बातो पर न जाना और अपने बडे भाई को परेशान न करना !''

और कानजी ने अपना व्यवहार आज तक ऐसा ही रखा था । बडे भाई से वह शायद ही कभी कोई काम करवाता । इस प्रकार बडे भाई एक तो वैसे ही बैठे रहने के आदी थे, दूसरे 'बडे भाई जाओ न, अमुक के यहा मेहमान आये हैं तो दो घडी जाकर बैठो न, काम तो मैं और भाभी मिलकर कर ही लेंगे ।' ऐसा कह कहकर उन्हे और भी आलसी बना दिया गया था । यह सच है कि भाभी और देवर मे ज्यादा नही पटती थी लेकिन कानजी अब उनके कडुबोला स्वभाव का अभ्यस्त हो गया था । उलटकर जवाब देता तो झगडा ही बढता न ? इसलिए कानजी मन ही मन भौजाई का बखान करता था, क्योकि ऐसे पैसे टके और शरीर के होते हुए भी साधारण आदमी का घर चलाना एक दरजे वाली जाति की स्त्री के लिए बखान करने जैसा तो था ही। कानजी यह जानता था कि यदि उसकी जगह और कोई होती तो शायद घर छोडकर ही चली गई होती । इसलिए इस प्रकार कलह करने पर भी भाभी का यह सद्‌गुण कि उसने उसका घर बनाया है उसकी नजर से बाहर न था। दूसरी ओर कानजी के सद्‌गुण भी उसके बडे भाई, भगतजी, हीरा और अन्य समझदार लोगों की नजरो से बाहर न थे । इसीसे तो लडते झगडते लोग अपने जवान लडको को कानजी का उदाहरण देते थे !

यह सब सोचकर देखने से हीरा को भी यह विश्वास हो गया था कि जीवी से कानजी का मन चाहे जितना लगा हो, पर वह उसे घर मे बिठाने का काम कभी नही कर सकता। लेकिन दूसरी ओर वह ऐसे नुस्खे की भी खोज मे था जिससे कि कानजी के जीवन मे कुछ शाति आवे

व्यर्थ ही पागल हो गया था। और फिर उसमें ऐसा है ही क्या, जो "

'उसमे क्या है यह तो मैं भी नहीं जानता हीरा, पर कुछ तो है ही। मेरी जात की होती तो मैं उसे घर म डाले बिना न छोड़ता!' कानजी ने कहा। उसके मुख पर दृढ़ निश्चय की झलक थी।

अरे अगर जात का होती तो फिर बात ही क्या थी। और अभी भी क्या बिगड़ा है? अपनी जात में उससे हजार गुनी अच्छी मौजूद हैं। तू जिसे कहे उठा लावें। रात मे दो-तीन सौ रुपया दण्ड ही भरना पडेगा न? चाहे तो चोरी करके ले आयेंगे। एक बार तू किसी को पसन्द तो कर! सब हो जायगा।" कहता हुआ हीरा सावधान हो गया। 'क्या पागल हो गया है?" कहकर क्षितिज की ओर देखते कानजी से फिर कहा—'वह दूसरी जात की है इसी से इतना प्यार दिखाती है। अगर जात की होती तो, 'नहीं भाई, मेरे बाप की इज्जत धूल म मिल जायगी' कहकर कभी की किनारा कर गई होती।'

जैसे किसी नादान की ओर देख रहा हो ऐसे कानजी ने हीरा की ओर देखा और कहा —"तब तो तू उसे अभी पहचानता ही नहीं। यद्यपि मेरे और उसके बीच अभी ऐसी कोई बात नहीं हुई है तो भी मुझे इतना तो भरोसा है कि अगर मैं उससे अंधे कुएँ मे गिरने को कहूं तो वह हँसते हँसते गिर पडे।" और एक गहरी सास लेकर आगे कहा—"हीरा, भगवान् ने रूप से तो सारा ससार भर दिया है पर वैसा हृदय कहाँ है' सच्चा मोल तो हृदय का ही है पगले! क्या तुझे वह दोहा याद है

मोल बैल को सींग ते, अश्व कान को कोर।

जैं मोल क्यों मनुज को, अन्दर गहन अथोर।"

'यह बात है हीरा! बैल का मूल्य उसके सीगो से होता है, ऐसे ही घोडे का मूल्य उसके कान की कोर से होता है, पर मनुष्य का मूल्य तो मूरख, हृदय देखकर ही आँका जा सकता है—फिर भले ही वह ऊँची जात का हो या नीची जात का!"

कानजी की वाणी और मुखमुद्रा देखकर क्षण भर के लिए तो हीरा

का मन हुआ कि वह दे 'तो कर डाल !' लेकिन वह जानता था कि ऐसा कह देने भर से तो कुछ होने का नही। जात पात भाई भौजाई और नाते रिश्तेदार तो छोडे जा सकते है पर आग चलकर जो बाल-बच्चे होगे उनकी क्या दशा होगी, यह सोचकर हीरा ने एक नि श्वास छोडा और कहा—"यह सब ठीक है कानजी, पर अपने गँवार लोग यह सब कुछ थाडे ही समझते हैं ?" कहकर कुछ समझा हो तो उस पर भी पानी फेरते हुए हीरा ने कहा—"हमसे क्या कही जात पात या नाते रिश्तेदार छोडे जा सकते ह ?"

'इसीलिए तो मैंने अब तक यह सब टाला है। यह तो तूने बात छेडी है इसलिए कहता हूँ। बाकी तो मेरे मन म अब ऐसा कुछ नही। वसे तो जैसा भगतजी कहते थे मेरा मन तो अमृत पीने को बहुत ललचाता है पर आखिर तो ठहरा स्वर्ग का अमृत। कही जीते जी पीने को थोडे ही मिल सकता है ?" कहकर कानजी ने हँसने का प्रयत्न किया। अलाव पर रखी पतीली की ओर दृष्टि डालते हुए बोला— ले बातो ही बातो मे पानी ही जला दिया—और डालना हो तो डालकर खत्म कर ? चल, मुझे तो अभी तिल देखने के लिए भूडरा[1] मे जाना है।"

'मेरे काम का भी पार नही।" कहकर हीरा अलाव की ओर मुडा। आग दहकाकर जरा देर मे चाय तैयार की। उसके बाद दोना जने कुछ सोच मे पड गये। चाय पीते समय होने वाले सडाके के सिवाय पूर्ण निस्तब्धता थी। सिर के ऊपर से उडने वाले कौए भी जैसे चोर की तरह उड रहे थे। उनस कुछ ही ऊपर तोतो का झुड यद्यपि बोलता हुआ जा रहा था तथापि उसकी आवाज उगते हुए सूरज की धूप म समाई सी जा रही थी।

चाय खत्म करके हीरा ने हुक्का भरा। आधा तमाखू जलने तक उसे कानजी की ओर बढाने का खयाल भी नही आया। जैसे उसने दिमाग मे

1 रेतीला खेत, जिसमे झाडियाँ आदि रहती हैं।

कुछ बैठ गया हो ऐसे उसने कानजी की ओर एक दो बार देखकर कहा-
"ऐ कानजी, अगर इस छोरी को अपने गाव मे बिठा दिया जाय तो क्या
नही चल सकता ?"

"कहा ?" कहते हुए कानजी के मुह पर खीझ और जिज्ञासा दोनो
थी ।

"कहाँ क्या ? अपने गाँव का घूलिया नाई बेचारा रँडुआ[1] है न ?
हो सके तो कर डाल !" कहकर हुक्का देते हुए आगे बोला—"बेचारा
जब तक जियेगा असीस देगा समझे !"

"अरे, या क्या किसी की छोरी फालतू है हीरा ? तू भी क्या बात
करता है ?" कहकर कानजी हँसा, पर इस हँसी मे 'कहा यह कौआ और
वहा वह कोयल ! ऐसा कुछ भाव था ।

लेकिन तेरी इस बात से तो मुझे लगता है कि अगर तू कहेगा ता
वह अवश्य मान जायगी । और यदि तुझे उस पर पूरा भरोसा हो तो
फिर उसके माँ बाप भले ही विरोध करते रहे कोई परित्यक्ता तो है
नही, जो नाई की जात को भी परेशान कर सके ।"

हुक्के के दो चार कश मारता हुआ कानजी बोला—"किसी से कहना
नही, समझे !"

' लेकिन इसमे बुरा क्या है ? यह नही तो इसका भाई दूसरा पर
किसी का घर बसाये बिना वह थोडे ही रहेगी ? इसलिए अगर गाँव
के ही नाई का घर बस जाय तो क्या बुरा है ? इस बेचारे मे ऐसा दम
नही कि इसे दूसरी कोई औरत मिल जाय और इसका वश चल जाय ।"
हीरा बोला और कानजी को चुप दखकर फिर कहा—"हो सके तो कर
डाल न ? नानी काकी तो तुझे भगवान् की तरह पूजेगी !" और हँसते
हुए फिर आगे कहा—"और हम गाँव के लोग भी तेरा क्या कम अह
सान मानेंगे ? '

कानजी ने खडे होने की तैयारी करते हुए कहा— "अरे चल चल,

१ विधुर ।

अपना काम देख ।'

दोनो जने मचान से नीचे उतरे। अलग होते हुए हीरा ने कहा—"मैं मजाक नही करता कानजी। मैंने जो-कुछ कहा है उस पर तू विचार करना। एक पथ दो काज जैसी बात है। आगे तू जान।"

कानजी ने फिर वसे ही कहा—"तू जा न चुपचाप।" और होठ चबाता हुआ वह सिरडुबाऊ मक्का मे खो गया।

पाँचवाँ प्रकरण

•

मन्थन

हीरा का उस दिन का 'एक पन्थ दो काज' वाला वाक्य कानजी के दिमाग में कई दिन तक घुमड़ता रहा। कभी उसे हीरा पर क्रोध आता तो कभी यह उपाय बताने के लिए उसके प्रति प्रेम भी उमड़ने लगता। ठिगना कद, गोल मटकी जैसा मुंह, काले पड़ते रंग में बिल्ली जैसी भूरी आँखें—धूला की इस मूर्ति के सामने आते ही उसका जी घबराने लगता। वह मन-ही-मन कहता—'और फिर साला स्वभाव का भी तो चिड़चिड़ा है।'

लेकिन दूसरी ओर उसे यह भी होता—"लेकिन उसको भी क्या गारंटी है कि उसे दूसरा कोई अच्छा ही दूल्हा-राजा-सा मिलेगा? उस दिन बेचारी कह रही थी न कि उसकी सौतेली माँ उसे अपने किसी सगे के गले बाँध देने की कोशिश कर रही है। विरोध कर-करके भी वह कब तक बचेगी और फिर उसका जोर भी क्या चलेगा। बेचारी किसी सूने घर में जा पड़े उससे यह धूलिया का घर ही क्या बुरा है? खाने पीने का आराम तो है ही। नजर के सामने भी रहेगी?"—और इस प्रकार इतने दिन के मंथन के बाद यह अन्तिम वाक्य उसके दिमाग में—उसके दिल में अच्छी तरह जम रहा था। ऐसे एक दिन उसने निश्चय कर ही डाला—जब हीरा पीछे पड़ा है तो फिर होने दो। उस दिन बेचारी नानी काकी भी कैसी कह रही थी। किसी का वश चले, इससे बड़ा और पुण्य भी क्या है?

नानी काकी जो कुछ कह रही थी वह क्या तूने नही सुना ? एक बार जिस देवी ने अपने बाप से गुस्सा होकर मना कर दिया हो उसे घूलिया पसन्द आये तभी न—और फिर उलटा उसे ही लज्जित करके 'हाँ कराना भी तो ठीक नही है हीरा !" और लम्बी साँस लेकर आगे कहा—"मरने दे हीरा ! अपने को न कुछ लेना, न देना ! नाहक "

अरे भले आदमी, लेकिन इसमे तो दो सौ रुपये का सौदा हो तो भी घूलिया "

इन दो सौ रुपयो का नाम सुनकर कानजी को हीरा के ऊपर इतना ज्यादा गुस्सा आया कि उसने तमाचा तो न मारा पर इतना तो कह ही दिया— क्या करूँ हीरा ! यदि तेरी जगह कोई और होता तो अभी खीचकर दो तमाचे जड देता !" और आग बरसाती हुई आँखो से घूरता हुआ बोला—"मैं कोई जीवो को बेचने नही निकला, जो तू ऐसा लालच दिखाता है।'

' लेकिन तुझसे कहता कौन है ?" कहकर हीरा चुप हो गया, पर उसके मन मे तो हो ही रहा था—तो मुझे ही क्या ? यह तो तेरी हालत देखकर मुझे इतना कहना पडा। मेरे विचार से तो इससे घूलिया का घर बस जायगा और आँखो के आगे रहने से तेरे कलेजे मे ठण्डक पडेगी। अब तो शान बघार रहा है पर कुछ ही दिनो मे माथे पर भसम न लगावे तो कहना कि हीरा क्या कहता था ? हीरा ने एक गहरी साँस लेकर खडे हुए कानजी को देखा। एक बार आखिरी बात कहने के इरादे से बोला—' देख, तुझे जाना हो तो जा, फिर देर होगी।" और कानजी को होठ चबाता हुआ देखकर फिर कहा— 'न जाना हो तो तू जान, लेकिन अब भी अपने मन से पूछ देख—अपनी जीभ से यदि किसी का भला हो तो उसमे मुझे तो कुछ बुराई नही दीखती। दिन तो यही ढला जा रहा है फिर तेरे जाने से क्या फायदा ?"

"एक बार देखू तो सही। इस बहाने उसकी (जीवी की) भी परख हो जायगी।" यह सोचकर कानजी खटखट मचान की सीढियाँ

पानी भरती हुई दूसरी स्त्री बोली। पूछा—"कौन जात हो भाई ?'

मैं भी हूँ तो पटेल।" कहते हुए कानजी ने बगल से लाठी निकाली और पैर का सहारा देते हुए नीचे रखी।

"अच्छा भाई अच्छा।" कहकर आखिरी कलसिया खींचती हुई उस स्त्री ने मणी से पूछा— तू पिलायेगी या मैं ?'

तुम अपनी भरी कलसिया को क्या खाली करती हो ? मेरी इस कलसिया में से मटका भरने के बाद पानी बचेगा सो मैं पिला दूंगी। ला तुम्हें उठा दूं। कहकर खाली कलसिया नीचे रखकर मणी ने उस स्त्री को मटका उठाने में मदद दी और कलसिया ऊपर रखकर विदा किया। दो आती हुई पनिहारिनों की दूरी का अन्दाज करके वह बोली— क्यों कानदा कैसे आना हुआ ?"

मुझे जोवी से खास तौर से मिलना है। चाहे तो चारे का बहाना करके ही उस झरने वाले महुए के पास मुझसे मिल ले। भूले नहीं। भले ही रात हो जाय, पर मुझसे बिना मिले न जाय।'

"इस बात से तुम निश्चिन्त रहो। मिल गई तो मैं उसे अभी भेजती हूँ।" चुटकी लेने की वृत्ति को अलग रखते हुए मणी ने कहा। दूसरी पनिहारिनें भी अब कुएं के नजदीक आ चुकी थीं। मणी ने यात्री को पानी पिलाया और यात्री ने एक कलसिया के लिए तुम्हें पूरा घड़ा खींचना पड़ेगा कहकर कृतज्ञता प्रकट की। पिछौरा में हाथ पोंछकर लाठी सँभाली और बोला— अच्छा चलूं बहन।"

आ पहुंची हुई स्त्रियों के सवाल का 'कौन जाने ? कोई होगा। कुआं देखकर यहाँ पानी पीने आया होगा।" इन शब्दों में जवाब देती हुई मणी ने जेहर सिर पर रखी और कानजी की पीठ की ओर एक नजर डालकर चलती बनी।

कानजी का बताया हुआ महुआ पाणपुर जाने वाले रास्ते में ही आता था। महुए के एक ओर चौमासे के कारण उपयोग में न आने

१ उठाकर सिर पर रख दूं।

बात न कर सकूँगा।'' कानजी ने कुछ विवशता से कहा। जीवी

तो चलो मेरे खेत में!' यहकर रस्सी उठाते हुए जीवी आगे बोली— वहाँ चलकर चारा नहीं काटोगे तो कम-से-कम बोझ तो उठवा दोगे।' फिर हाथ बढ़ाकर रस्सा दिखाया—''इस थूहड़ की बाड़ के सहारे-सहारे जहाँ आम का पेड़ आ जाय वहीं खेत में आ जाना! इतने में मैं उधर होकर आती हूँ। यहकर पीठ फेरी और दो-तीन डग भर कर फिर बोली— देखना कहीं गुस्सा होकर घर न चल देना! नहीं तो रात होने को मैं वीरान में यहाँ खोजती फिरूँगी?''

अगर ऐसी ही बात है तो मैं घर की ओर ही चलूँ!'' पिछौरा लेकर पीछे मुड़ते हुए कानजी ने कहा।

तुम तो चले ही जाओ। यहकर जीवी ने पीछे को गरदन मोड़ी और कतराती नजरों से कानजी को देखा। और 'देखें, पहले कौन आता है'' कहकर हँसती हुई पीठ फेरकर चल दी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों में से पहले जीवी ही आई थी। कानजी और जीवी खेत की मेड़ के पास वाले आम के नीचे बैठे थे। क्षितिज के निकट पहुँचे हुए सूरज का पिंगल प्रकाश मकना के ऊपरी हिस्से से छनकर आ रहा था।

जीवी आराम से ऐसी बैठी था जैसे लिपे हुए में बैठी हो। घुटना को घेरे हुए हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसी थी। फरिया का किनारा आधे सिर पर जाकर रुक गया था। कान में लटकता सोने की लौंग का रुपहला झेला[1] उसकी मुखाकृति को कुछ और ही सुन्दरता दे रहा था। आँखों में नाचती मस्ती की छाप मुख पर झलक रही थी। एक-दूसरे को और देखकर आँखों द्वारा बातें करने के बाद जीवी ने हँसकर पूछा— उस दिन की भाँति आज भी रास्ता भूल गए क्या?''

पैर फैलाकर दायें हाथ का सहारा लेते हुए कानजी ने कहा— रास्ता भूलकर आया हूँ या जान बूझकर यह तो मैं भी ठीक से नहीं

१ एक आभूषण।

यहा किये बिना क्या यही छुटकारा हो सकता है ?" कहती हुई जीवी का मुख मुद्रा तो पहले ही जैसी हँसमुख थी, पर उसकी आँखो की उत्सुकता कुछ बढ गई थी।

जैसे गोली छोडने की तैयारी करते हुए अन्तिम चेतावनी दे रहा हो, ऐसे कानजी फिर बोला— देखना कहीं पीछे मुकर न जाना ! अब भी यदि तू 'ना' कहती हो तो रहने दूँ।"

कानजी की इस बातचीत के दरम्यान जीवी जैसी प्रियतमा ने क्या क्या धारणाएँ न बनाई थी। 'मुझे ले जाने के लिए ही आया लगता है।' या फिर मुझे लेकर परदेश भाग जाने की सोची होगी। कोई घृणित प्रस्ताव तो नही करेगा। आदि-आदि। परन्तु इस प्रकार की धारणाओ से धडकता हुआ जीवी का हृदय कानजी के अन्तिम शब्दो और उसके विवर्ण चेहरे को देखते ही धक् से रह गया। गुस्से से बोली— 'कहना हो तो कह डालो ! मानने-न-मानने की तुम्हे और मुझे दोनो को खबर तो पडे।"

'मै तेरी सगाई लेकर आया हूँ।" कहकर आँखो को जमीन पर गडाए रखकर कानजी ने जवाब के लिए कान लगाये।

जीवी को जी जैसे बैठा जा रहा हो ऐसे अपनी सगाई कहा कोई अपने-आप करता होगा ?' कहकर वह मन्द मन्द मुस्कराने लगी।

कानजी के मुँह का द्वार बन्द करने के लिए जीवी का यह वाक्य ही काफी था। जीवी की शक्ल देखी होती तो शायद बोल भी न पाता। 'मैं अपनी सगाई की बात करने नही आया बल्कि मैं तो अपने गाँव के धूलिया नाई की सगाई करने आया हूँ।" कहकर कानजी ने वाक्य तो पूरा कर दिया पर उसके बाद न तो वह आँखें ऊपर उठा सका और न निकले हुए शब्दो को वापस ले सका। 'तो धूलिया के लिए बिचौलिया बनकर आये हो। ऐ सुनाइ दिया पर यह जीवी कह रही है श्वास मे तो उस मह भ्रम भी हुआ कि जी

ने ऊपर देखा। 'नही-नही जीवी, मैंने कहने मे भूल की, यह सब झूठ है।' ऐसा कहने को उसने मुह खोलने का प्रयत्न किया, पर उससे पहले ही एक हाथ का सहारा लेकर उलटे पैर करके बैठी हुई जीवी ने दूसरे दूसरे हाथ से घास तोडते हुए कहा—'क्या मेरे मा बाप से पूछ लिया है।"

कानजी को फिर हिम्मत आई। कहा—'धूलिया की मा कहती थी कि बूढे की तो मरजी है, पर तेरा और तेरी सौतेली मा का मन नही सा है?"

धीरे से, पर गहरी सास लेते हुए जीवी बोली—'मेरा मन नही है, यह जानते हुए भी तुमने सगाई लेकर आने की खूब हिम्मत की।"

कानजी ने खुशामदाना हँसी हँसते हुए कहा—'लेकिन मुझे यह विश्वास था कि तू 'ना' नही करेगी। इसीलिए तो यह काम मैने अपने जिम्मे लिया, नही तो कभी "

'जो-कुछ तुमने किया सो अच्छा किया।" इन शब्दो के साथ ही जीवी ने आह भरकर कहा—'लेकिन अब इसे करोगे कैसे। पूछने जाओगे तो मेरा बाप तो मान जायगा, पर मेरी मा हरगिज न मानेगी।" अब भी वह दूसरी ओर ही देख रही थी।

कानजी ने जीवी की ओर देखते हुए कहा— यह सब तो अब तेरे हाथ की बात है।" और जीवी को चुप देखकर बोला—"तू कहे तो हम दो चार जने धनतेरस की शाम को आवें और उस महुए के पास खडे रहें।"

"अच्छी बात है।" कहकर जीवी चुप हो गई।

कानजी को इससे अधिक और क्या कहना था। जो कुछ कहा था वही इतना ज्यादा जान पडता था कि उसे स्वय भी अपना व्यक्तित्व अत्यत क्षुद्र प्रतीत हो रहा था। पहले का प्रेम त्याग या गौरव, विरह-वेदना या वैराग्य इनमे भी कोई वस्तु उसमे नही रह गई थी। जीवी के पास, बहुत देर तक बैठना भी अब उसे मुश्किल हो रहा था। वह

मन मे सोच रहा था—' यह अभी कुछ बहाना बनाकर मना कर देगी।" पूछा—"तो फिर क्या विचार है ?"

"विचार करने जैसा अब है ही क्या ?" कहती हुई जीवी सचेत हुई और कानजी की ओर देखती हुई, जैसे कानजी द्वारा रटाई हुई बात का ही दुहराती रही हो ऐसे बोली—"धनतेरस की शाम को मुझ उस रास्ते वाले महुए के पास आना है।"

कानजी चाहता था कि कह दे जो तेरा मन दुखी होता हो तो रहने दे।' पर जीवी की शक्ल देखकर उससे कुछ न कहा गया। यह कहना भी अब सिर काटकर जोडने जैसा लगता था। फिर भी यदि बैठन को मिला होता तो कुछ कहता। लेकिन इतने मे ही जीवी ने पास पडी रस्सी और हँसिय को अपनी ओर खीच लिया।

"तो मैं चलता हूँ।" कहकर कानजी खडा हुआ।

रस्सी की गही[1] करती हुई जीवी बाली—"फिर आना।"

"तो धनतेरस को पक्की रही न ?" कानजी ने फिर पूछा।

कानजी की ओर देखती हुई जीवी की नजर जैस कह रही हो—'इस आदमी को अब भी विश्वास नही होता।' और बोली—"पक्की, और अगर दा धनतेरस हो तो पहली की।" यह कहकर वह खडी हुई और आगे कहा—'मैं शाम होते ही महुए के पास आ बैठगी। तुम्हें जब आना हो तब आना। जाओ।" कहकर पीठ फेरी और मक्का में खो गई।

कानजी भी घर की ओर चलने लगा।

छेडी हुई कुमारी के रक्तवर्ण मुख जैसा सूर्य भी क्षितिज के नीचे उतर गया।

१ तह करना।

छठा प्रकरण

•

दूसरे को सौप दिया

कानजी जीवी से पक्की तो कर आया पर पीछे से उसका जी कचा गया—'नही नही, मैं जाकर उससे मना ही कर आऊँगा। यह तो मूरख ही है न ? उसे अच्छा नही लगता था ता मना क्यो नही कर दिया ? यह भी क्या कोई खेल है ? यह तो जनम भर का गठबन्धन है।' फिर उसका अपना ही जी उसे धिक्कार रहा था—'इतना ही ज्यादा सयाना पन था ता उसी वक्त—चलते वक्त ही मना करके आना था। उस वक्त कह दिया होता कि मैं तो सिफ तेरी परीक्षा लेने आया था, तो अब यह दुबारा जाने की इल्लत तो न रहती।'

लेकिन सच पूछो तो अब उसे जीवी से मना करके आने की हिम्मत न होती थी। दूसरी ओर ऐसा भी होता—'नही नही, यह कैसे कहा जा सकता है कि उसे अच्छा नही लगता। और यदि ऐसा होता भी तो जिसने बूढे बाप के मुह पर मना कर दिया उसे मेरे आगे मना करने मे क्या देर लगती। उस पर मेरा कोई अधिकार थोडे ही था। यह तो राह चलते का प्रेम है। लेकिन यह तो उसे भी अच्छा लगता होगा न ? मां बाप से छिपकर आने की बात ही जरा खटकती है। नही तो वह उलटी खुश ही हुई होगी। सौतेली मा के शिकजे से छूटेगी, सो अलग। वह उसे पसन्द ही न आया होगा न ? और कौन जानता है कि उसकी अपेक्षा यह धूलिया वाला अधिक अच्छा न होगा। बार-बार जाने से लागो को

'अच्छी बात है। लेकिन उस खेत म कुछ डर-जैसा लेकिन मैं
ता माछा से कह दूगा, रात को एकाध चक्कर मार आयगा। और तू
भी कोई सारी रात ता हुडा गायगा नहीं। जब आवे तब एकाध चक्कर
उधर मारते आना! देखना क ी पूरी रात मत लगा देना! काम की
ऐसी भीड है, जागरन करोगे तो बीमार पड जाओगे!"

नहीं र यह ता आज धनतरस है इसीलिए!" कहकर था ता
इसलिए कि इस असत्य को बहुत देर तक सम्मान की इच्छा न हो, या
अन्य किसी कारण से कानजी पूरा हुक्का पीने भी न बैठा।

'बैठ पूरा हुक्का ता पी! काम तो जनम भर का है।" कहते हुए
वडे भाई न खडे हाते कानजी के आगे हुक्का रख दिया।

इतने म ही सामने वाले खेत स हीरा आ गया। हुक्का पीकर वह
भी कानजी के पीछे चला। कुछ पूछने के लिए आया हुआ-सा जानकर
कानजी ने बिना पूछे ही कहा—'कुछ देर बाद मुझसे मिलना
अच्छा!

दिन छिपने मे थोडी देर थी। हीरा और कानजी दोनो इकट्ठे हुए।
हीरा ने पूछा—' हम दा ही जन जायेंगे न ?"

"उस नाई वाले को भी चलने दो साथ। रोटी खानी है तो उसे
खानी है हम अकेले जान जोखम म क्यो डालें।"

लेकिन उसे साथ लेने मे तो उलटी जान की जोखम और
ज्यादा है।'

"इसकी कोई परवाह नहीं। लेकिन सोच तो सही कि अगर पकडे
गए ता ? वह तो साथ चाहिए ही।"

हीरा को भी यह ठीक जँचा। 'तो ले मैं उसे खबर किये देता हूँ।"

'और हाँ देख एक काम कर मेरे घर से तलवार ले जाकर अपने
घर रख आ! मैं लेकर निकलूगा तो घर मे सन्देह हो जायगा और बडे
भाई को मालूम पड जायगा ता फजीता होगी।"

'अच्छी बात है।' कहकर हीरा गाँव की ओर चला गया।

डूबते हुए सूरज की ओर देखता हुआ कानजी काम को बीच मे ही छोड़कर मचान पर बैठा था। बडी देर तक ऐसे ही बैठा रहा। घिरते अँधेरे पर नजर पडते ही— मुझे कुछ सूझ नही पडता भगवान्। कौन कह सकता है कि मैं जो यह कर रहा हूँ सो ठीक है या गलत। इस प्रकार सोचता हुआ वह खडा हुआ और बडबडाया— जैसा तू कराता है वैसा ही मैं करता हूँ। इस समय कानजी बिलकुल लाचार बन गया था। मस्तिष्क म घूमते हजारो विचारो ने उसे घबरा दिया था। उसे कुछ सूझता न था।

गाँव के नाके पर ही हीरा से भेंट हुई— अच्छा, अब कितनी देर है? अभी तो तूने खाना भी नही खाया। अँधेरी रात म आठ कोस ...

'तुम दो जने तो चलो। लडुआ आम[1] के पास ठहरना। मैं यह आया। खाने की कोई इच्छा नही इसलिए बहुत देर न लगेगी। साफा तो यही चल जाता पर जूता के बिना नही चल सकता।'

अलग होते हुए फिर कहा— 'तुम चलो, मैं आता हूँ।'

घर जाकर सिर स फटा हुआ साफा उतारा। इधर उधर से देखकर 'चलेगा' जैसा कुछ बडबडाकर दूसरे हाथ पर थोडा सा झाडा और फिर लपेट लिया। किवाड के पीछे पडे जोटे को निकालकर पहन लिया और "मैं खाऊँगा नही भाभी!" कहकर चल दिया भगतजी के घर की ओर।

भगतजी अभी-अभी खेत से आये थ। आँगन मे पडी खाट को बिछाकर साफे का तकिया बनाए, पैर पर पैर चढाये आकाश की ओर देखते लेटे थे। चौसेरी जोडे से 'खडग् खडग्' आवाज करते हुए आने वाले कानजी को सामने देखा एक ओर खिसककर जगह की। कानजी को खडा देखकर कहा—'बैठ जा न।'

"कितो देर के लिए?" कहता हुआ कानजी बैठ गया। इधर उधर नजर डालने के बाद बोला—मैं तो तुम्हारा आशीर्वाद लेने के लिए आया हूँ।"

१ आम का ऐसा पेड, जिसके फल लड्डू-जसे गोल हो।

"किस बात का ?" कहकर भगतजी कानजी के उतरे हुए मुँह की ओर देखने लगे।

"हीरा ने तुमसे कहा तो होगा।" कहकर हीरा हँसी हँसते हुए आगे बोला—"तुम्हारे इस पड़ोसी के लिए औरत लेने जा रहे हैं।" भगतजी को चुप होते देखकर कानजी ने पूछा—"चुप कैसे हो गए भगतजी ! क्या तुम्हें यह अच्छा नहीं लगता ?"

"क्या पागल हो गया है। मुझे क्या है जो अच्छा न लगेगा ?"

"तब तो आशीर्वाद दो तो मैं उठूँ।" कहकर कानजी सावधान हो गया। भगतजी को कुछ मुस्कराते देखकर पूछा—"क्यों दोगे न ?" न जाने क्यों आज कानजी को कुछ भय लग रहा था। किसका ? यह तो खुद वह भी नहीं जानता था। इसीलिए तो वह और भी घबरा रहा था।

"लेकिन भले आदमी ! अच्छे काम में आशीर्वाद की आवश्यकता ही क्या है ? और बुरे काम के लिए तो जानता है कि कोई आशीर्वाद देगा ही नहीं।"

कानजी का मुँह उतर गया—"तुम्हें कैसा लगता है भगतजी !" वह खुद भी नहीं जानता था कि वह अच्छा कर रहा है या बुरा।

"इसमें ऐसा क्या है, जो मुझे बुरा लगेगा कानजी !" कहते हुए भगतजी बैठे हो गये। कानजी के कंधे पर हाथ रखते हुए बोले—"जाओ फतह करो ! आनगाँव की बात है यह ध्यान रखना, और होशियारी से काम करना। और यदि किसी को जरा भी सन्देह हो तो तुरन्त वापस लौट आना। अच्छा तो अब उठ, देर मत कर।" कहकर भगतजी भी खड़े हो गए। कुछ दूर तक कानजी के साथ गये। विदाई देते हुए हिम्मत बँधाई—"गरीब का घर बसाने के बराबर कोई पुण्य नहीं है कानजी ! उसमें तो भगवान् भी सहायता के लिए आयेंगे। इसलिए कोई चिंता न करना।"

ठीक है भगतजी ! यह तो हमने कोशिश भर की है। सामने वाले की तकदीर थी कि काम बन गया, नहीं तो हम उसमें क्या कर सकते थे ? और

अब भी हो जाय तब समझना कि हो गया।" कहकर कानजी 'अच्छा तो जाता हूँ" कहता हुआ चल दिया।

अँधेरे म खड़े भगतजी कितनी ही देर तक कानजी की पीठ की ओर देखते रहे। अब तक उनकी समझ मे यह तो आ गया था कि जीवी से कानजी का दिल मिल गया है लेकिन आज कानजी को देखकर जैसे इससे भी कुछ अधिक समझ मे आ गया हो ऐसे लौटते हुए बडबडाये— 'सब मायाएँ देखी हैं भगवान्! पर इस औरत की माया तो कुछ अजीब ही है।'

भगतजी से अलग होकर कानजी थोडी देर म ही निर्दिष्ट स्थान पर आ पहुँचा। सिर से साफा उतारते हुए धूला की ओर देखकर बोला— "अभी दूल्हा बनने मे देर है धूला भाई! अभी तो होली मे कूदने निकले हो। यह साफे का छोर जरा ठोडी से लपेट लो!" कहकर स्वय भी ढाटा बाँधने लगा। धोती की काँछ अच्छी तरह मारते हुए हीरा से पूछा —"मेरी तलवार लाया है न?

ढाटा बाधते हुए धूला बोल उठा— 'यह रही।" और कधे से तलवार उतारते हुए आगे कहा—"यह तो भाई, तुम्हारे ही हाथ मे शोभा देती है। हमारे लिए तो यह लाठी ही ठीक है।

"लाठी चलाना न आवे तो कोई बात नहीं, पर सँभालना तो आना ही चाहिए।'

हीरा बोल उठा—"हा भाई, नही तो कहीं ऐसा न हो, कि तेरी लाठी से तेरा, और साथ ही हमारा भी कचूमर निकल जाय।'

"मूहूर्त के समय ही ऐसा अपशकुन क्या करते हो?" कहकर धूला ने जमीन पर पडी लाठी सँभाली। 'माकडिया हनुमान'[1]-जैसा अपना रक्षक है। कहकर उत्तर दिशा मे स्थित हनुमान की ओर मुँह किया। लाठी को दोनो हाथो के बीच मे रखकर दो हाथ जोडे। बडबडाया— 'हे मेरे मालिक! अगर काम बनाकर राजी-खुशी लौट आऊँगा तो पाच नारियलो का तोरण बधाऊँगा और तेरे थान पर पाच ब्राह्मण जिमाऊँगा।"

[1] हनुमान को दिया गया स्थानीय नाम।

"और हम नही क्या ?" कानजी ने आगे बढकर कहा।

'तुम्ह क्या नही ?" घूला ने आगे कहा—"तुम्हें ता जन्म-जन्मान्तर तक जिमाऊँ तो भी कम है।"

हीरा बोला —"जन्म जन्मान्तर तक ता तू जिमा चुका। हाँ लड्डू की जगह दूध म मिनी उसके हाथ की रोटी ही एक बार खिला दगा ता बहुत ह, क्या कानजी ?'

बस बस, इतना ही बहुत है।" कानजी भी बाल पडा।

"यह तो उसके ले आन के बाद की बात है।" कहकर घूला भगडा की भाँति प्रलाप करने लगा—"अरे हीरा भाई, तू क्या बात करता है। एक बार तू मुझे घर-बार वाला बना दे, फिर देख मजा! रोज की चाय पिलाई जाती है कि नही ? अरे दोस्त, घर का काम छुड़वाकर भी तेरे जैसा के खेत मे काम करने भेजूगा। यह अहसान क्या कोई भूलने लायक है ? और कोई दूसरा भले ही भूल जाय पर यह घूलिया—यह तो सबसे अलग ढग का आदमी ह समझे ?'

कानजी का घूला की यह चापलूसी तनिक भी अच्छी नहीं लगती थी। अच्छा तो अब चुप रह, रात के वक्त कोई सुन लेगा।' कहकर उसे चुप कर दिया। तीनो जने चुपचाप ही चल रहे थे।

तारो से भरा आकाश मन्द मन्द मुस्कराता सा जान पडता था, जब कि पृथ्वी 'सिर पर इतने दिये जगमगा रहे हैं फिर भी मेरे घर म अँधेरा ?' जैसा मौन प्रश्न पूछती हुई विचार मग्न सी दीखती थी। लम्बे डग भरते कानजी और हीरा के मोची की सिलाई वाले जूते 'चर-मर' कर रहे थे, जब कि गाव के चमार के बनाये घूला के फटे हुए जूता का तला 'फटाक फटाक कर रहा था। कानजी तो सिर झुकाय ऐसे चल रहा था जैसे किसी धुन मे हो, पर हीरा का ध्यान घूला के जूता ने ही खीचा होगा। पूछा— 'चलता है कि नहीं घूला ?"

'हाँ-हा तुम चलो!' कहते हुए घूला ने अपने और हीरा के बीच पडे आठ दस कदम के फासले को झट से दौडकर पार कर लिया।

कानजी ने मन मे सोचा—'आज तो यदि आठ के बदले अस्सी कोस की बात हो तो भी क्या धूला 'ना' कहेगा ?

इसके बाद फिर निस्तब्धता छा गई। पैरो के जूते मानो कह रहे थे—'एक दो तीन, एक दो तीन।'

बच्चो वाले घर मे तो अभी घर काम भी न निबटा होगा कि वे लोग उस महुए के पास आ खडे हुए। कुछ देर बाद कानजी को लगा कि इस स्थान का निश्चय करने मे उसने बडी भूल की है, यदि दोनो नाको को घेर लिया गया तो बच निकलना मुश्किल हो जायगा। आज उसे अपने चारो ओर भय ही भय दिखाई देता था। हीरा का भी ध्यान गया। बाड पर सब तरफ नजर डालकर बोला – मैं अभी आता हूँ। उस बाड पर पीपल है। देखता हूँ, यदि उस पर चढा उतरा जा सकता हो तो। नही तो अन्त मे इस थूहड के गढ को काटकर निकल भागने को जगह तो कर ही लेनी होगी।"

"हा हा भाई सावधानी अच्छी।" धूला बोल उठा।

कानजी दो दो आदमियो की जितनी ऊँची थूहड के बीच खडे पीपल के पास गया। एक आदमी की ऊँचाई पर जाकर दो भागो मे बँटे और फिर मुडकर एक तने हुए पीपल को बारीकी से देखने के बाद कानजी ने तलवार निकाली। तने के आगे से थूहड के डडे काटकर रास्ता साफ किया और पीछे मुडकर हीरा से कहा—"अब कोई परवाह नही। पीपल का तना ही ऐसा है कि इसमे से आसानी से आर-पार निकला जा सकता है। तने के आगे के डडे भी काट डाले है।"

"अच्छा!" कहते हुए हीरा के बीच मे धूला बोल उठा—"यह अच्छा किया काना भाई! सावधान रहने मे हा "पर हीरा ने उसे कोहनी मारकर बोलने से रोक दिया।

जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे कानजी की अकुलाहट बढती गई। कान लगाये बैठा था, पर आज तो उसे अपने काना का भी पता न था।

"और हम नही क्या ?" कानजी ने आगे बढकर कहा।

"तुम्ह क्या नही ?" धूला ने आगे कहा—"तुम्ह तो जन्म-जन्मान्तर तक जिमाऊ तो भी कम है।"

हीरा बोला —"जन्म-जन्मान्तर तक तो तू जिमा चुका। हाँ लड्डू की जगह दूध म मिली उसके हाथ की रोटी ही एक बार खिला दगा तो बहुत है, क्या कानजी ?"

"बस बस, इतना ही बहुत है।" कानजी भी बोल पडा।

"यह तो उसके ले आने के बाद की बात है।" कहकर धूला भगडा की भाँति प्रलाप करने लगा—"अरे हीरा भाई, तू क्या बात करता है। एक बार तू मुझे घर बार वाला बना दे, फिर देख मजा! राज की चाय पिलाई जाती है कि नही ? अरे दोस्त, घर का काम छुडवाकर भी तेरे जैसा के खेत मे काम करने भेजूगा। यह अहसान क्या कोई भूलने लायक है ? और कोई दूसरा भले ही भूल जाय पर यह धूलिया—यह तो सबसे अलग ढग का आदमी है, समझे ?"

कानजी को धूला की यह चापलूसी तनिक भी अच्छी नही लगती थी। "अच्छा तो अब चुप रह, रात के वक्त कोई सुन लेगा।" कहकर उसे चुप कर दिया। तीनो जने चुपचाप ही चल रहे थे।

तारा स भरा आकाश मन्द म द मुस्कराता सा जान पडता था, जब कि पृथ्वी सिर पर इतने दिये जगमगा रहे हैं फिर भी मेरे घर म अँधेरा ?"-जैसा मौन प्रश्न पूछती हुई विचार मग्न सी दीखती थी। लम्बे डग भरते कानजी और हीरा के मोची की सिलाई वाले जूते 'चर मर' कर रहे थे, जब कि गाव के चमार के बनाये धूला के फटे हुए जूता का तला 'फटाक फटाक' कर रहा था। कानजी तो सिर झुकाय ऐसे चल रहा था जैसे किसी धुन म हो, पर हीरा का ध्यान धूला के जूतो ने ही खीचा होगा। पूछा—"जनता है कि नही धूला ?"

"हाँ हाँ तुम चलो।" कहते हुए धूला न अपने और हीरा के बीच पडे आठ दस कदम के फासले को झट-से दौडकर पार कर लिया।

कानजी ने मन म सोचा—'आज तो यदि आठ के बदले अस्सी कोस की बात हा तो भी क्या धूला 'ना' कहगा ?

इसक बाद फिर निस्तब्धता छा गई। पैरो के जूते मानो कह रह थे—'एक दा तीन, एक दो तीन।'

बच्चा वाले घर मे तो अभी घर काम भी न निबटा होगा कि वे लाग उस महुए के पास आ खडे हुए। कुछ देर बाद कानजी को लगा कि इस स्थान का निश्चय करने मे उसने बडा भूल की ह, यदि दोनो नाका को घेर लिया गया तो बच निकलना मुश्किल हो जायगा। आज उसे अपने चारा ओर भय ही भय दिखाई देता था। हारा का भो ध्यान गया। बाड पर सब तरफ नज़र डालकर बोला – मैं अभी जाता हूँ। उस बाड पर पीपल है। देखता हूँ, यदि उस पर चढा-उतरा जा सकता हो तो। नही तो अन्त मे इस थूहड के गढ को काटकर निकल भागन को जगह तो कर ही लेनी होगी।"

"हा हा भाई, सावधानी अच्छी।' धूला बोल उठा।

कानजी दो दो आदमियो की जितनी ऊँची थूहड के बीच खडे पीपल के पास गया। एक आदमी की ऊँचाई पर जाकर दो भागो मे बँटे और फिर मुडकर एक तने हुए पीपल को बारीकी से देखने के बाद कानजी ने तलवार निकाली। तने क आगे से थूहड के डडे काटकर रास्ता साफ किया और पीछे मुडकर हीरा से कहा—"अब कोई परवाह नहीं। पीपल का तना ही ऐसा ह कि इसमे से आसानी से आर-पार निकला जा सकता है। तने के आगे के डडे भी काट डाले हैं।"

"अच्छा !" कहते हुए हीरा के बीच मे धूला बोल उठा—"यह अच्छा किया काना भाई ! सावधान रहन मे ही "पर हीरा ने उस कोहनी मारकर बोलने से राक दिया।

जैसे-जैसे समय बीतता गया वैस-वैसे कानजी की अकुलाहट बढती गई। कान लगाये बैठा था, पर आज तो उसे अपन काना का भी पता न था।

कभी किसी आदमी का बोरा, ता कभी पैरा की आहट भी सुनाई दती थी। दिशाआ की अदला-वदली हा गई थी। उसे अपन ऊपर हँसी आई। मन म रोया—'भयभीत को सवत्र भय ही न्खिाई देता है।' परन्तु इतने मे ही हीरा बोला— 'पीछे से काइ आ रहा हो, ऐसा लगता है कानजी !

कानजी का सन्देह तो था ही। थोडी दर कान लगाने के बाद बाला— उठ हीरा, इस बाड के उस पार निकल चलें। फिर कोई परवाह नहीं। खेतो मे अरहर है इसलिए किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी।"

आवाज पास आ रही थी।

पीपल के पास पहुँचते ही कानजी ने धूला से कहा—' इस छेंडी' मे हाकर उस पार निकल जा !"

'मैं ? पहले तुममे स ।"

"मर राड के। कहकर कानजी ने तने से लटककर अपन का ऊँचा उठाया। साप की भाँति आर पार निकल गया और आहिस्ता स उस आर कूद गया। तलवार निकालकर उस ओर के भी डण्ड साफ करता हुआ बोला—"हीरा, चल, उस धूलिया को भी चढा दे !'

धूला को भी लगता था कि अब ता खुद निकलने म ही मजा है।

हीरा न सहारा देकर छेंडी तक पहुँचाने म मदद की। धूला का सिर तो उस ओर निकल चुका था, पर कधे फँस गये थे। वह घबराया। उसने यह सोचकर कि निकला नही जायगा कोशिश करन मे भी कुछ कमी कर दी।

आदमिया की आवाज और भी पास आती जा रही थी। हीरा न कहा—"अरे, जार लगाकर निकल जा ! यही न कि जरा छिल जायगा। लेकिन ऐसे ता तु हमारी भी आफत बुलायगा। ल, मैं धकेलता हूँ। एक के बदले सबका मारेंगे। जरा जोर लगा।'

१ किसी घनी झाडी या बाड को काटकर आदमी के आने जाने लायक बनाई गई जगह को 'छेंडी' कहते हैं।

धूला का शरीर पसीना पसीना हो गया था। बोला—"लेकिन भाई साहब! उँह! नही ।"

हीरा को गुस्सा आया—'अरे जरा जी कडा करके, नही तो तर कावा य आये!"

'लेकिन माई बाप !

'इन दोनो जनो की बक झक सुनते हुए कानजी की आखें इस घनघोर अँधेरे मे भी तारे-जैसी चमक उठी। उसने देखा कि आने वाले आदमी झरन के किनारे लगभग चढ चुके हैं। घडी-आध घडी मे तो यहाँ आ पहुँचेंगे। उसे धूलिया पर बेहद गुस्सा आया— औरत करने आया है यह!' बडबडाते हुए वह आगे बढा, 'निकलता है कि नही?' कहकर धूला के पास आते-आते तो कन्धे से तलवार उतार ली। 'तो देख मजा!" कहकर सररर करके खीची। तानते हुए बोला—"ए ता "
पर उससे पहले ही, 'नही माई-बाप यह! कहते हुए धूला के कन्धे फट से बाहर आ गए।

कुछ कुछ कांपता हुआ कानजी जैसे होश मे आ गया हो ऐसे सोच रहा था—"अगर यह इस प्रकार न निकला होता तो गजब हो जाता कि नही। सचमुच मैं तो इसे काट ही डालता।' उसका अग-अग पसीने से भीग गया था। धूला के पीछे उतरकर आने वाले हीरा का भी जैसे उसे भान न था। उसका धडकता हुआ हृदय तो जैसे अब भी यह कह रहा था— गजब कर डालता।

रास्ते पर आने वाले चार-पाँच आदमी कोई राहगीर-से लगे। वे जैसे आए थे, वैसे ही बातें करते हुए चले गए।

तीनो ही को एक प्रकार की शांति सी मिली। धूला का कलेजा तो अभी तक धक धक करता धडक रहा था। कानजी की ओर देखकर पूछा, "ओ काना भाई! सच बताना यदि मुझसे न निकला जाता तो क्या तुम मेरा सिर ही काट डालते?'

"इसे काटने मे क्या कोई देर लगती? उठाई तो थी। देर तो बस

चलाने भर की ही थी।' कहकर कानजी ने एक लम्बी सास ली औ कहने लगा—"बच गया जा ! घर जाकर परसाद बाटना !"

"नही नही सच कहा काना भाई ! क्या मुझे मार ही ।"

इस सबको मजाक समझते हुए हीरा बीच मे ही बोला—'क्या मूरख है ? अभी तू चारा की बात ही नही जानता। अब तो तू अकेल ही मरता, पर यदि तुझे जीता छोड जाते तो तेरे साथ हमारी भी मौ थी। इसलिए यदि तू न निकला होता तो तेरा सिर तो हम लेते ही जात।

यह सुनत ही धूला फिर काप उठा। मन ही मन मे कहा भी— मौत के मुह से बच गया। कानजी से उस डर ता पहले ही लगता था पर इस समय तो वह उसे यम जैसा लगने लगा। हीरा का भरोसा भी कम हो गया। मन को भी लगा—'मरी साली औरत ! न आव ता सही, राजी खुशी घर पहुँच गया तो समझूगा कि गगा नहा आया।'

'तुम दानो यही बठो हीरा ! मैं उस पार जाकर देखता हूँ आयगी तो बुला लूगा।' कहकर कानजी जिस रास्ते से आया था उस से उस पार चला गया।

हीरा से दिल खोलकर बातें करने का मौका मिलते ही धूला ने कहा—'चाहे जो कर हीरा भाई, पर मुझसे इस छेंडी से वापस नहीं जाया जायगा।

हीरा का धूला पर वेहद गुस्सा आ रहा था—'यह साला तो ऐस है कि किसी समय सिर ही उडवा द।' ऐसा ही हुआ करता था। दांत पीसते हुए कहा—'बिना वाले, चुप रह अब !"

"लकिन माई बाप मुझस " धूला की आवाज बिलकुल ढीली थी।

अरे लेकिन तू चुप तो रह ! अभी निकलने का वक्त तो आन दे।"

'ता अच्छा भाई साहब !" कहकर धूला भी चुप हो गया।

कानजी महुए के पास आकर खडा हो गया और ध्यानपूवक गाँव से *आने वाले रास्ते की ओर देखने लगा। ठेठ छोर पर एक काली छाया* दिखाई दी। बडी देर तक तो उसे यही लगता रहा जैसे वह छाया जहाँ-

की-तरह खड़ी हो, पर अन्त में उसकी समझ में आया कि वह छाया धीमी चाल से उसी ओर आ रही है।

कानजी का दिल धड़क उठा। उसे विश्वास था कि यह जीवी ही है। बिना देखे ही उसकी सौम्य मूर्ति आँखों के आगे नाचने लगी। प्रश्न पर प्रश्न उठे—'आखिर वह क्या कहेगी? मना तो न करेगी?' फिर लगा—'मना कर दे तो और भी अच्छा, नहीं तो मैं ही उसे वापस जाने को कहूँगा।'

उसी धीमी चाल से चलती जीवी महुए के पास आकर खड़ी हो गई। कानजी के छोटे वाले वेश को देखकर शायद वह पहचान नहीं पाई। पूछा—"कौन है?" आवाज में भय का नामो निशान तक न था।

"आ पहुँची?" कहता हुआ कानजी उसके समीप आ गया। जीवी से कुछ पूछ-गछ करने का विचार आने से पहले ही वह आगे बढ़ती और बोलती सुनाई दी—"अकेले ही हो या और भी कोई है?"

कानजी ने एक लम्बी साँस लेकर और ही बात कही—"जरा इधर आकर खड़ी हो जा! मैं उन दोनों को बुला लाऊँ!"

वे दोनों कौन हैं? कहाँ हैं? यह कुछ भी न पूछकर जीवी रास्ते से एक ओर हटकर खड़ी हो गई।

कानजी की 'पत्थर' और 'चलो' जैसी धीमी आवाज कान में पड़ते ही धूला ने 'वह आई है क्या?' जैसी स्वाभाविक बात न पूछकर कहा—'हीरा भाई! भाई, तो मुझे किसी और जगह से ।"

'गुस्सा तो ऐसा आता है कि यहीं का यहीं फैसला कर डालूँ।" बड़बड़ाते हुए हीरा ने बाड़ के पास आकर कहा—"तुम चले आओ, हम उस थूहड़ के पास निकलेंगे।" और बाड़ के सहारे-सहारे चलने लगा। कुछ दूर चलकर तलवार निकाली। दो चार हाथों में ही रास्ता साफ किया।

बाहर निकलते हुए धूला ने कानजी के पीछे पीछे आती छाया को देखा। जैसे कोई छोटा बालक खिलौना देखकर खुश हो उठता है, ऐसे

धूला खुश हो उठा। उसका मुख, उसका रूप रंग देखने की तीव्र लालसा जाग उठी। जैसे कोई नई बात कह रहा हो ऐसे हीरा की बगल म आकर बोला— वह तो आई है न ?"

हीरा ने धूला को कडी नजर से देखा। उसे दूर धकेलता हुआ बोला— चलना हो तो या दूर हटकर चल चुपचाप !" धूला पर उसे इतना ज्यादा गुसा क्या आ रहा है वह तो हीरा की समझ में भी नही आता था।

धूला क मन म भय समा गया— य तीनो ही मिलकर रास्त मे मेरा काम तमाम तो नही कर डालोगे ? मारकर गाड दें तो पता लगाने वाला भी कौन है ?' और यदि पीछे से गाँव वाला का डर न होता ता इसमे भी सन्देह न था कि वह इन तीना से काफी फासला रखकर चलता।

जीवी की चाल के हिसाब से कानजी को बिलकुल धीरे धीरे चलना पड रहा था। इससे ऊब भी आती थी। कुछ रुककर जीवी से तो नही, पर हीरा से कहा—' अरे जरा जल्दी चलो ! ऐसी चाल से कब तक रास्ता कटेगा !"

धूला झट से हा हीरा भाई !" कहता हुआ आगे हो लिया। हीरा को तो कुछ हँसी भी आ गई।

वे दोनो जीवी से आगे तो हो गए पर वह कोई पागल नही थी कि मेडिया[1] के जोर से पीछे खिची आवे। कानजी के लिए भी यह सम्भव नही था कि इस अँधेरी रात और ऐसी स्थिति म जीवी को दूर रखकर उससे आगे निकल जाय। वह मन ही मन खीझ रहा था—'यदि ऐसा ही था तो तुझसे किसने जबरदस्ती 'हा कराई थी। उसी वक्त मना कर दिया होता। और अब भी क्या बिगड गया है ? कहे तो वापस छोड आऊँ। परन्तु इस सारे गुस्से को घोलकर पीते हुए कहा—"अच्छा जरा कदम बढा !'

' लेकिन तुम खुद चलो न मैं अपने आप आती हूँ पीछे पीछे।"

१ मेडिया—बैलगाडी मे जुए मे जुते दो बैलो के अतिरिक्त आगे एक अथवा दो बैल और जोत दिए जाते हैं, वे 'मेडिया' कहे जाते हैं।

क्या तुझे छोडकर हमसे जाया जायगा । अँधेरी रात ''

''मुझे तो मौत भी नहीं आती ?'' कहकर जीवी ने कानजी की ओर देखा ।

' लेकिन तू इसमें ऐसी गुस्सा क्यो होती है ?'' कहकर कानजी कुछ देर रुका और आगे बोला— 'ऐसा था, तो घर से निकलती ही नही ।''

''मुख मारकर निकली ।' जीवी की आवाज और शब्दों में निहित ताप, खीझ, लाचारी और निराधारता के बावजूद उसकी दृढता को तो वही समझ सकता था, जो सच्चा प्रेमी हो । कानजी सहमा रुक गया । जीवी की ओर दो कदम पीछे लौटता हुआ बोला—''सच कहता हूँ जीवी कि यदि तेरी इच्छा न हो और तू इसीलिए जा रही हो कि मैंने तुझसे कहा है तो जा वापस लौट जा ! जैसे मैं तुझे लाया हूँ वैसे ही तेरे घर तक छोड आऊँगा ।''

''अच्छा अब चलो चुप-चाप, सयानपन किये बिना !'' कहकर जीवी ने मीठी झिडकी से भरी आखो से कानजी को देखा । ''देखो फिर'' कहकर आगे कदम बढाया ।

कानजी ने हाथ आडा करते हुए कहा— 'नही खडी रह ! देख, अब भी समय है । वह जो ठिगना जाना ह सा क्या तुझे पसन्द आयगा ? जो कुछ कहना हो सो साफ साफ कह दे ! बाद म यदि मुझे दोष देगी तो ठीक नही होगा ।''

''जिस समय वचन लेने आए थे उस समय क्या तुम्हारी अक्ल चरने चली गई थी, जो अब यह सब पूछ रहे हो । अच्छा चलो, आगे बढो ! ' कहकर जीवी ने कानजी को जरा धकेला । क्षण भर के लिए तो कानजी को इतना ज्यादा गुस्सा आया कि जीवी को मारकर स्वय भी मर जाय । एक नि श्वास छोडकर होठ काटता हुआ जीवी के पीछे चलने लगा ।

तेरस की अँधेरी रात ऐसे बीत रही थी, जैसे पूरे यौवन पर हो । आस पास का जगल ऐसा स्तब्ध था, जैसे इन रात के मुसाफिरा की ओर शका भरी दृष्टि से देख रहा हो । जगल म घूमने वाले सियार भी इन

लोगों का देखकर दबे पैरो पीछे लौट जाते। पीछे आने वाले कानजी और जीवी एक बड़े पेड़ के नीचे से गुजरे कि एक उल्लू ने 'घूऊ' की आवाज की। कानजी के हृदय में भय की नहीं, प्रत्युत अपशकुन की एक हल्की सी कपकंपी छूटी।

एक तीव्र आवेग के साथ विचार आया। वाक्य गले तक आकर रुक गया— अच्छा चल, दाहिनी ओर मुड़ जा! भाग चलें, कहीं-न-कहीं तो पहुँच ही जायेंगे।' और ये शब्द जैसे जीवी से कह दिए हो ऐसे भ्रम में पड़कर बोला—"सच कहता हूँ, समय है अब भी लौट जा!"

किसका ?"

उसी आवेश मे कानजी बोला— 'किसका किसका किये बिना लौट न यो! कहकर जीवी को बांह पकड़कर कुछ दाईं ओर घुमाया। स्थिति स्थापक जैसी जीवी से विवशता भरे स्वर मे फिर कहा— ठीक कहता हूँ, समझी! मान जा। मुझे और स्वयं अपने को क्या धोखा देती है—क्या कलंकी बनाती है पगली! एक बार नरक मे चले गए तो फिर निकलना न हो सकेगा समझी! ठीक कहता हूँ। अब भी समय है।"

कानजी के सयानपन पर अविश्वास करती हुई जीवी क्रोध के साथ आगे बढ़ी और बोली – चलना हो तो चुपचाप चलो, नही तो आओ पीछे अकेले अकेले!'

एक बार तो कानजी हतप्रभ हो गया। लेकिन जैसे जैसे रास्ता कटता गया वैसे-वैसे उसका सयानपन भी पीछे छूटता गया। जीवी का तेजी से आगे निकलना उसे अच्छा लगने लगा। चेहरा भी कुछ खिला। 'मा बाप का घर छोड़ना पड़े और वह भी यो चुपचाप, तो दुख तो होगा ही। अन्यथा यदि उसे न आना होता तो क्या वह घर से निकलती? मुझ मूर्ख ने उससे भाग जाने को कहा, लेकिन वह बेचारी जानती है कि इसके पीछे भाई भौजाई का झंझट है। और वह यदि परदेस में भी पहुँच गया तो कौन सी हुण्डी कमा लेगा। कुत्ते की तरह भटक भटककर मर जायेंगे।'

इस प्रकार विचार करते करते वह इतना सावधान हो गया था कि दो क्षण पहले उठे हुए अविचार का ध्यान आते ही कुछ कापने भी लगा। उसने मन ही मन जीवी का उपकार भी माना। ऐसे ही एक प्रसग की चर्चा के समय भगतजी द्वारा कही हुई उस दिन की बात उसे याद आई और उसने मन मे सोचा—'सच है, जवानी के जोश मे अधे होकर भाग तो जाय, पर कितने दिन को ? जवानी का रग उडते क्या देर लगती है ? उसके बाद तो जीवन भर साप निकलने के बाद लकीर पीटने की तरह आदमी के पास पश्चात्ताप करने के अतिरिक्त और कोई चारा नही रहता।'

हीरा तथा धूला दोना जने काफी आगे थे। किसी सिंह की छाया के नीचे पडे शिकार की ओर आस पास की झाडिया मे लुक छिपकर ताकने वाले चीते के समान भय और लोलुपता से पीछे देखते रहने वाले धूला ने अपने को रोकने म असमथ पाकर कहा— 'वह आने मे आगा पीछा करती जान पडती है हीरा भाई !"

धूला मुड मुडकर पीछे देखता था। यह देखकर हीरा को कुछ गुस्सा तो पहले ही से था, अब जो यह अवसर मिला तो बोला — तू खुद तो चुप चाप चल ! पीछे लौटकर भी क्या तुझसे कुछ हो सकता है ? जब तक कानजो तेरे अनुकूल है तब तक तुझे कोई फिक्र "

धूला ने प्रसन्न होकर कहा—"इसीलिए ता काना भाई ने उसे आगे कर लिया जान पडता है।" और चुप रहना उचित लगने पर भी बोल पडा—' एक बार मेरे घर मे आ जाय ! फिर तो "

हीरा ने कहना चाहा — यदि कही इस समय तेरा भाई (कानजी) सुन ले तो हो सकता है, तेरे घर म डालन का विचार ही छोड दे !' पर यह प्रकट न करते हुए उसने धूला को आख दिखाते हुए कहा—तू अपनी जात बताये विना चुप रह इस समय !"

धूला चुप तो हुआ, पर वह भी 'अच्छा भाई, यह लो मैं चुप हूँ, अब तो बस !" कहने के बाद ही।

पहला मुर्गा बोलने के पहले ही वे ऊधड़िया की सीमा पर आ पहुँचे।
स्वागत करते हुए भूरे कुत्ते को पुचकारता हुआ कानजी घूरे के पास वाली इमली के नीचे खड़ा हो गया। धूला का घर थोक के नाके पर ही था इसलिए आगे के दरवाजे से जाने मे भी कोई बाधा न थी, फिर भी कानजी ने धूला से कहा— 'अरे जा, जाकर पीछे का दरवाजा खोल !" और कुछ देर बाद हीरा से भी कहा—"हीरा, तू जाकर तब तक बाड मे छेंडी कर, उससे कुछ नही हाने का।"

'हा-हा, तुम यही खडे रहो मैं छेंडी करके बुलाता हूँ।" कहता हुआ हीरा भी चला गया।

बगलो मे हाथ दबाए और सिर झुकाए खडी जीवी पैर के अँगूठे से जमीन कुरेद रही थी। कानजी ने उसकी ओर देखा, पुकारा— जीवी !"

जीवी ने कोई जवाब न दिया। जैसे महुए से गिरते महुओ की 'टप टप' आवाज सुनाई देती है वैसे ही कानजी को जीवी के झरते हुए आसुओ की आवाज सुनाई द रही थी। जीवी के पास जाते हुए वह या बडबडा रहा था या मन मे सोच रहा था, इसका तो खुद उसको भी पता न था— इस जनम मे तो तुझे अपने हाथो ही धकेलता हूँ। क्या करूँ ?' उसने एक हाथ जीवी की पीठ पर स होकर उसकी बाँह पर रखा और दूसरे से उसका सिर अपनी छाती स लगाया। जीवी का दबी हुई सिसकियाँ निकल पडी। रोते रोते हिचकियाँ बँध गइ। क्षण भर के लिए कानजी की आँखो मे आये आँसू सूख गए। 'अच्छा न लगता हो तो चल, चलें !' यह कहना चाहा पर दूसरे ही क्षण बडबडाया—'नही-नही, किसी के मुह मे रखे कौर ' और जीवी की ठोडी का ऊपर करते हुए गला साफ करके बोला—' तू क्यो फिक्र करती है। मैं भी तो गाँव मे ही हू। दुनिया की नजरो में हम भले ही अलग हो पर " कानजी के कान मे आवाज पडी—' काना भाई दरवाजा " और धूला कानजी की बाँहों मे जीवी का देखकर चुप हो गया। कानजी ने जीवी को अपनी बाँहो से अलग कर दिया। एक कडी नजर धूला पर भी डाल ली।

इतने म ही हीरा आ पहुँचा। धूला से यहा—' मैं वहाँ तुझे घर मे युला रहा हूँ और तू यहाँ खडा है।" और कानजी को ओर देखकर बोला—'ला चलो काँटे निकाल दिये है।"

हीरा के काँटे निकाल दिये है', वाक्य को सुनकर कानजी को कुछ हँसी आ गई। एक भारी साँस लेकर बोला — 'अब मेरा यहाँ क्या काम है ? मैं भगतजी के यहाँ बैठा हूँ।" कहकर उसने कदम बढाया। उस समय उसे एक एक पैर मन मन का लग रहा था।

भगतजी के ओसारे मे पैर रखते ही कानजी को खाँसी [illegible]। भगतजी को कुलबुलाते देखकर बोला —"क्यो भगतजी, [illegible] जाग रहे हो ?'

भगतजी भूरे कुत्ते के भूँकने से जग गए थे। बैठ [illegible]— "जागते होन पर ही जागते रहने की जरूरत है [illegible] निर्भय रहते हैं।" कहकर भगतजी खडे हो गए। [illegible] पर बैठते हुए पूछा —"क्या चैन चान है न ?"

"तुम्हारा आशीर्वाद मिलने के बाद [illegible]। [illegible] एक बार तमाखू पिलाओ न।" कहकर [illegible] कानजी बडबडाया—"एक तो तमाखू [illegible]

हुक्का भरते भरते हीरा भी आ [illegible] होने पर भी शायद ही कभी [illegible] पहुचा। जेब से तमाखू निका[illegible] तमाखू रखो न।"

कानजी को हँसी आ [illegible] नो नही भरी है।'

भगतजी का जी [illegible] है तो इसके खत्म हो [illegible] से तमाखू लिया और [illegible]।

धूला भी धीर [illegible]

पर कह नही सकता था । उजेला होता तो भगनजी पहले ही वोल उठत, पर इस समय तो जब उसके शरीर की हलचल-बेचैनी बढी तभी उनके ध्यान म आया । बोले— तुम क्यो ठण्डे होकर बैठे हो हीरा ? घडी भर बाद तो चौदस बीत जायगी । दो जनो को बुलाना हो तो बुलाकर फेर पटा (विवाह विधि) कर डालो न ?' फिर भगतजी ने आगे कहा— "और उन दो जनो का भी क्या काम है ? हम हैं ही । हाँ गीत गाने वाली एक दो छोकरियाँ बुला लो !"

"अपने से तो यह भी नही हो सकता कि उठकर पानी पी लें !" कहता हुआ कानजा भगतजी वाली खाट पर लम्बा हो गया ।

हाँ हा, काना भाई ! तुम सो जाओ !" कहकर खडे होते हुए धूला ने हीरा से विनती की—"हीरा भाई, तो तू ही उठ भाई ! अपने घर से ककु भाभी और नथिया (हीरा की वहन) को बुला ला ! उस तरफ वस्ता काका के यहा भी जरा कहते आना ! और जीवी भाभी (जीवी नहीं) को तो जरा खबर देनी ही पडेगी । इतना तो तू कर भाई ।"

तमाखू का घूट लेता हुआ हीरा हँस पडा । 'फक्क' से मुह का धुआँ बाहर निकल पडा । कुछ खाँसी भी आ गई । भगतजी को हुक्का देता हुआ बोला—"कहते हो न कि धूला भोला है भगतजी ! दो के बदले पाम तो गिना दिये और अभी खडा होता हूँ कि इतने मे ही देखना ।"

"ऐसा तो होता ही है भगत काका ! पर यदि उस थोक के मुखिया के यहाँ खबर न की जायगी तो कुछ बुरा लगेगा । बाकी वौहरे और उन सबको कौन बुलाता है ।'

'अच्छा, तू ज्यादा सयानपन किये बिना जा, और रोली, कलावा तथा अन्य जरूरी चीजें जुटा !" कहकर हीरा उठा और अँगडाई लेते हुए भगतजी से बोला—'यह तमाशा तो देखो भगतजी, यह नाई कहता है कि तुम मेरे नाई बन जाओ ।"

"कभी-कभी ऐसा भी होता है !" कहकर भगतजी हँसने लगे ।

"नही भाई, नही ! तेरे लडके का ब्याह हो तब देखना ! यदि हुक्के

की एक चिलम भी तुझे भरने दूँ तो इस धूलिया से चाहे जो कहना !"
कहकर आँखें मटकाता हुआ धूला घर गया ।

किसी विचार मे मग्न भगतजी थोडी ही देर बाद खडे होते हुए बोले—"मरा तो तुझसे यही कहना है कानजी कि यदि लाया है तो लाने की लाज रखना !" और हाथ मे लोटा तथा कधे पर धोती डालकर "ऐसा हो तो उस कोने मे खाट बिछा ले ! यहा तो अभी गडबड होगी और जो नीद आई है वह भी उचट जायगी ।" कहकर नित्य के नियमानुसार—पर आज कुछ जल्दी—नदी की ओर चल दिए ।

देखते-देखते गाँव की औरतो से धूला का घर भर गया । धूला का एक दस-बारह वष का भाई था । वह मुखिया और दो चार अन्य पटेलो को बुला लाया ।

एक तो धूला का घर वैसे ही खाता पीता था और उसमे भी यह अवसर। हालाँकि जीवी के पीहर वालो का कुछ विरोध था, लेकिन फिर भी यह तो था ही कि एक रात मे औरत की थी । उसमे भी हीरा-जैसा उदार कर्ता धर्ता मिला । तब फिर गुड बाटने मे कैसे कमी रह जाती ।

इस बे-मौसम के विवाह का आनन्द लूटते युवक और युवतियो की शीतल प्रभात की बुलन्द आवाज ने आस पास की सीमा और नजदीक के गावो को यो विचार मग्न कर दिया—"अरे भाई, इस ऊधडिया मे मुर्गा बोलने ही यह जो गीता की झडी लग रही है सो क्या है ?"

और इसका जवाब देने वाला सामने वाला श्रोता भी प्रश्न ही पूछता था—' किसी के यहाँ लडका हुआ होगा । और तो क्या हो सकता है !"

"हा भाई, ऊधडिया के जवाना का भला क्या पूछना ? साले ब्याह तो करेंगे दरअसल गुडडो का और ठाट ऐसा रोपेंगे, जैसे इकलौते लडके का ब्याह हो रहा हो ।' कोई अनुभवी कहता । तो दूसरा अपनी जवानी की याद करता हुआ बताता—"होगा, यदि कुछ न मिले तो ऐसा आयोजन करके गीत गाने म बुराई ही क्या है ?"

लेकिन अब यही प्रश्न गाव वालो के मन मे भी उठता था, दूर वालो

की तो बात ही क्या करना। जो जागता वही अडोसी पडासियो को जगाता। वे तीसरे से पूछने और होने होने उसका निराकरण करने के लिए दो चार का झुड बनकर धूला के यहा आ पहुँचता। एक बडी परात मे गुड भरकर पौरी मे ही खडा हुआ हीरा आने वाने की अजलि मे गुड रखते हुए जवाब देता—' किस बात का, यह घर मे जाकर दखो !''

बहुतो को ता यह अचानक होने वाला रामलीला का खेल सा लगता था। धूला का चेहरा और पोशाक भी रामलीला के विदूषक के अनुरूप ही थे। मारकीन का बिना धुला फूगा हुआ साफा दिवाली पर पहनने को मिलाकर रखा हुआ नया अँगरखा, और शरीर के साथ मेल खाने स इन्कार करती हुई मादर पाट[१] की माडीदार अकडनी हुई धोती आदि पोशाक (धूला की यह पोशाक मजदूरी के फटे टूटे कपडो मे, नीद से सीधे उठकर आने वाले गाँव के लोगो से उसे बिलकुल अलग कर रही थी) के अतिरिक्त अगूठे से लगाया गया गाढी रोली का लम्बा तिलक, उस पर चिपकाये मुट्ठी भर चावल और गले मे कलावे की चार पाँच आटियो का हार—इन सब वस्तुओ ने मिलकर जैसे धूला का रूप ही बदल दिया था। दाएँ हाथ की कलाई मे कलावा बाधने वाले म भी—हीरा ही था —कोई कजूसी नही की थी। परन्तु इसम हीरा का दोष न था। उसने तो पहले नियमानुसार दो ही धागे बाधे थे, पर धूला बाला—' कलावा खच होने स न डरना हीरा भाई, घर मे दूसरी गुच्छी है।' हीरा को गुस्सा आया और तीन अगुल के बराबर कलाई भरकर धूला की इच्छा पूरी की।

घर मे भरी हुई स्त्रिया वर नया कन्या—या दो पक्षो मे बैठकर—एक दूसरे का गाली गाती और उसके बाद सीख भरे गीतो की बौछार करती।

ओसारे मे गाव के अधेड और वृद्ध इसकी चर्चा करने के बाद कि यह बात कैसे बनी हीरा कानमी तथा भगतजी की (भगतजी को इसलिए

१ मोटा कपडा।

कि उनके बिना कानजी तथा हीरा मे यह काम करने की सामथ्य नहीं थी) प्रशसा करते कुसुम्बा घालते और हुक्का गुडगुडात बैठ थे।

जब कि आँगन की धरती ऐसी धमक रही थी कि उसका धमक से ही जवानी स हाथ धा बैठने वाले स्त्री पुरुष भी अधेरे का लाभ उठाकर, जाती हुई जवानी का आनन्द लेने क लिए घेरा बनाते जा रहे थे।

दिन निकलने क साथ ही आदमियो का होश आया। "मुझे तो अभी और धार काढनी[1] है।" "अरी, मेर तो चुटकी भर भी आटा नहीं।' तो कोई 'हाय हाय ! मेरी तो छोरी रो रोकर मर गई होगी।" कहती हुई खडी हुइ। ओसारे वाले भी अफीम के नशे म तो नही (क्योकि उसके आने म, अभी देर थी) पर अच्छी तरह खान की तरग म 'बहुत अच्छा हुआ। *भगवान् न दया की, नहीं तो घूलिया रह ही गया था।'* तो कोई 'भगवान् उसकी बल बढावे और सुखी रखे !" ऐसे आशीर्वाद के साथ हुक्का गुडगुडाते घर की ओर चलने लगे। आगन की घूमर[2] (गीत गाते समय स्त्रिया का गोल घेरे मे घूमना) भी बन्द हो गई थी। विदा देने का खडे धूला पर जो दो चार स्त्रिया की नजर पडी ता वे खडी-की-खडी रह गइ और धूला की ओर दखकर गाने लगी—

सुन रे छिनार के छोर। सीख दत्तो हूँ।
कूडे का टोकरा अपनी अम्मा को सौंपना।
खाना बनाना मेरी जीवी बहन को सौंपना॥
सुन रे
पानी की जेहर अपनी भौजाइयो को सौंपना।
ताला और कूजी मेरी जीवी बहन को सौंपना॥
सुन रे

और यह सुनकर अनजान गाँव, अनजान घर और अनजान आदमिया मे आ पडी जीवी की आँखो स टप टप आसू गिरने लग। एक

१ दूध दुहना।
२ गुजराती शब्द।

ही व्यक्ति परिचित था परन्तु 'अरे कानजी कहाँ गया ?' जैसे प्रश्न मे लिये गए उसके नाम के अतिरिक्त वह तो कही दिखाई तक नही देता था। देता भी कहा से ? खान की इस पाटी से उस पाटी तक करवटें बदलने वाले कानजी को स्वय ही भय था—बिना देखे ही अपनी शक्ल के बारे मे विश्वास था कि इतने आदमियो मे किसी के भी सामने वह चुगली खाए बिना न रहेगी—फिर भले ही वह हँसे, या न हँसे, बोले या न बोले।

सातवाँ प्रकरण

●

हृदय का हुडा

नाग-कन्या की अद्भुत बातो की भाँति गाव मे जीवी की बातें भी हो रही थी। खासतौर से उन मेने वालो मे से कोई कहता था—' कानजी लाया तो उसे अपने घर मे डालने को था पर हीरा और भगतजी ने उसे खूब समझाया। उसे भी (जीवी को भी) बडी देर तक भगतजी के घर मे विठाकर रखा गया था। कानजी टस से मस नही होता था। अत मे उसके बडे भाई को बुलाया गया। वह कानजी के सामने रोया-झींका। तब कही जाकर कानजी माना तो सही पर गुस्सा होकर सो गया। लेकिन इसके बाद हीरा और भगतजी सोचने लगे कि अब इस रॉड का क्या करें ? मुर्गा बोलने वाला था। वापस भेजने जाते तो दिन निकल आता। फिर भी कहते है कि वह बेचारी तो जाने के लिए तैयार थी पर कानजी के भाई को डर लगा कि आज नही तो कल, किसी-न-किसी दिन कानजी इसे लेकर भाग जायगा। इसलिए उस टॉटे ने इस धूलिया के साथ गठजोडा करने की जुगत की। धूलिया के लिए तो जैसे भगवान् ही नीचे उतर आए। नही ता धूलिया भाई के कपाल मे ऐसी इन्दर की परी जैसी औरत कहाँ लिखी थी ?'

तो कोई यह भी कहता— 'इस बेचारी के कुटुम्ब मे कोई नहीं है। बाप है, सो अफीम खाकर पीनक मे रहता है। उसके बाद सौतेली माँ है। घर में तो उसी की चलेगी न ? इसलिए उसने (माँ ने) कहने

मे । होगा कोई काना लूला या कोई बूढा खच्चर ! ऐसा होगा तभी तो यह घर से भाग निकली है। नही तो अगर कोई अच्छा आदमी होता तो खुद ही सोचो कि क्या इस ठिगने धूलिया से कोई खुशी के साथ शादी करता ?'

तो कोई भगतजी को ही इसका मध्यबिन्दु बनाता—"यह सब कारिस्तानी इस भगतरा की है। इसीने धूलिया पर कोई जादू किया है। औरत क्या है देखन दिखाने लायक है, लेकिन इस प्रकार बेचारी का जीवन नष्ट कर दिया।"

तो कोई इसका प्रतिरोध करता— 'अरे चल-चल ! इसमे जीवन नष्ट करने की क्या बात है ? यह नही तो इसका भाई दूसरा। कोई-न कोई तो ढूढना ही पडता। बाकी सबमे क्या लाल लगे हैं ? सच पूछो तो सुन्दर पति की अपेक्षा तो ऐसा ही अच्छा। बेचारा ! न तो तेरी मेरी जैसी कोई रांडें ही मोहित हो, और न घर की मालकिन का ही जीवन नष्ट हो।"

तो फिर काली-जैसी कोई रहँट के पालने की याद करती हुई चुप-चाप कहती— इस धूनिया का तो इधर उधर का बहाना ही है। काना भाई को तुम कच्चा न समझना ! देख लेना ! जीते रहो तो याद करना कि काली क्या कहती थी ?"

और यो एक नही, अनेक बातें हो रही थी !

ये बातें विशेष रूप से स्त्री-समुदाय मे और वह भी पनघट पर होती थी। बाकी कुछ वृद्धो के सिवाय समस्त पुरुष समुदाय को आजकल ऐसी बातें करने की फुरसत ही न थी। एक ओर खलिहान मे धान की दाँय[1] चल रही थी तो दूसरी ओर रबी की फसल के लिए हल चल रहे थे। रात के वक्त दो घडी की फुरसत मिलती। लेकिन उस फुरसत का उपयोग

१ गेहूँ, जौ, चना, धान आदि को काटकर खलिहान मे इकट्ठा करके उसके ऊपर गोलाकार बलो को घुमाया जाता है। इस प्रक्रिया को 'दाँय' कहते हैं।

तो अनादि काल से चली आती रीति के अनुसार हुडा गाने मे ही होता।

दिवाली का दिन आया और गाँव का वातावरण बिलकुल बदल गया। जिन्ह मनुष्यो से घृणा थी ऐसे एक दो आदमियों के अलावा आज समूचे गाँव ने काम को दो दिन के लिए खूटी पर लटका दिया था। साधारण दिना मे नहाते वक्त रोने मचलने वाले बालक भी आज तो बडे सवेर ही नहाकर और फूलदार कपडे पहनकर मुखिया की बैठक की ओर रवाना हो गए थे। खाट मे बैठे होने के बाद, मुह फाड फाडकर (जँभाई लेकर) अफीम मँगाने वाले अफीमची लोग भी हुक्का ले-लेकर मुखिया की बैठक मे आकर दीवार के सहारे बैठ गए थे। स्त्रिया का यद्यपि रोज के जितना ही काम था और उन्हें वहा मण्डली मे भी नही जाना था तो भी आज ता दिवाली है यह प्रसन्नता उनकी चाल और मुख पर झलक आती थी। और जवाना का तो पूछना ही क्या? सब अपनी मनचाही टोली मे मतवाली चाल से चलने और हुडा गाते मुखिया की बैठक मे आ रहे थे। बैठक मे आते ही वे अपने गीत की पक्तियो को छोडकर वहाँ गाये जाने वाले गीत की पक्तियो को उठा लेते और यो उस वातावरण मे स्वय भी खो जाते थे।

परन्तु अभी हुडा का असली रग नही जमा था। दो रसिक वृद्धो ने तो कहा भी—"अरे, यह तुम हुडा गाते हो या मजाक करते हो? जरा स्वर को ऊँचा चढने दो।"

तो कोई जवाब देता—"इनसे कुछ नही होगा। अभी उस लाल टोपी (यह नाम कानजी और हीरा की टोली को दिया गया था) को आने दो, फिर देखना रग।' और तभी मुहल्ले के नाके से आती आवाज कान मे पडी। हृदयोर्मि से गाये गये गीतो की मिठास और मादकता ही कुछ और होती है! कानजी, हीरा और एक तीसरा—यो तीन जने एक-दूसरे की कमर मे हाथ डाले ऐसे चल रहे थे जैसे शराब के नशे मे झूम रहे हो। पीछे इसी ढग से आती चार जवाना की टोली सुर मिला रही थी—

'ब्याहूँ ब्याहूँ रे सघन वन में बसो
बेलु और भोजा ग्वाल।
कहाँ से लाओगे रे वन मे बाजा
भोजा! कहाँ से शहनाई की जोड़।'

जब कि भोजा जवाब देता है—

'सया सो ग्वाला बेलु! गाने को आवें
उनमें ढोली[1] का बेटा भी संग।

और इस प्रकार गाती गाती यह लाल टोली बैठक में आ खड़ी हुई। बैठक का सारा वातावरण ही जैसे इन लोगों के अधीन हो, ऐसे इन लोगों के लिए जगह की गई। हुडा गाने वाले जवानों ने भी दो भागों मे बँटकर इन लोगों के ही हुडा का चालू रखा।

गीत आगे बढ़ा! बेलु नाना प्रकार की बाधाओं का उल्लेख करती है। नारियल की बाधा सामने आती है।

उसका जवाब भी भोजा के पास तैयार है— 'हमारे वन में हैं अनगिन बिल्लियाँ, वे सब हूप से आयेंगी मेरे काम।'

और इस प्रकार बाधाओं का उल्लेख करती बेलु को संतोषप्रद उत्तर देता हुआ भोजा अंत में उससे विवाह करता है।

प्रकरण पूरा होते ही कानजी चुप हो गया। सामने दीवार के सहारे बैठे भगतजी से कहा— 'भगतजी जरा हुक्का तो पिलाओ!''

''अरे भाई! क्या नहीं? लो न!' भगतजी के पास बैठे एक अफीमची ने कहा और जैसे तमाखू का सारा सत खींच लेना चाहता हो, ऐसे हुक्के की नली से मुँह लगाये लगाये ही उसे बढ़ाता हुआ झुका।

आस पास के लोगों के साथ कानजी भी हँसा।

आँगन मे हुक्का भरने के लिए सुलगाई गई आग के पास टोल बनाकर खड़े हुए लड़के पटाखे छुटा रहे थे। दूसरी ओर बैठक मे कुसुम्बा की हथेलियाँ भरकर एक दूसरे के सामने की जा रही थीं। ''अरे, आज दिवाली

१ ढोल बजाने वाला।

के दिन भी क्या 'ना' की जाती है।" क्या मेरा हाथ पीछे हटाओगे ?" 'ऐसे बारह महीने बाद आने वाली खुशी के दिन भी ना' ?" ऐसे आग्रहो से बैठक गूज-सी रही थी।

फिर भी न जाने उस गीत के बन्द होने के कारण या उस प्रेम-कथा के रस मे सराबार प्राणा के विरह वेदना अनुभव करने के कारण चाहे जो कुछ हो, पर हर एक व्यक्ति के हृदय को एक प्रकार की निस्तब्धता ने घेर लिया था।

इसके बाद सुखडी[1] बँटी और वहाँ से उठी हुई मण्डली धूला के नई आरत करने की खुशी म, उसके द्वारा दिये निमन्त्रण का आदर करने के लिए, उसके यहाँ जा बैठी। कानजी का हुडा चालू ही था

भाजा के साथ खेल ही-खेल मे ब्याही हुई वेलु बडी होती है। उसके रूप पर मुग्ध राणा उसके बाप के पास विवाह का प्रस्ताव भेजता है। राणा से कौन इकार कर सकता है। उससे अच्छा जमाई और कौन मिल सकता था ?

राणा भाजा गूजर को बारात मे आने का न्योता भिजवाता है—

भोजा घोडे पर रख ले जीन
मेरी बारात मे जल्दी आ।

भोजा को वन मे ढोर चराते वे दिन और वेलु के साथ हुए अपने विवाह की याद आती है, विचार मग्न हो जाता है। मन की इस परेशानी को झालोर[2] गाय (कामधेनु जैसी गाय) के सामने व्यक्त करता है।

झालोर गाय की सम्मति मानकर पाताल मे चरती बावली,[3] घोडी खरीद लाता है—

१ आटे, घी और गुड से बना एक खाद्य पदार्थ, जिसे थाली मे जमाकर बर्फी की तरह काटकर उसकी कतलिया बना ली जाती हैं।
२ राजस्थान के एक स्थान का नाम, जहाँ की गाएँ प्रसिद्ध हैं।
३ घोडी की एक जाति, जिसका रग काला और सफेद, या लाल और सफेद होता है।

'राणा की बजो हैं छत्तीस शहनाइयाँ
उस गूजर के ढमके हैं ढोल ।

राणा की बारात में जाने की अपेक्षा भोजा स्वय दूल्हा बनता है। सवा सौ गूजरो के समूह के साथ भोजा भी राणा की बगल मे पडाव डाल देता है।

बेलु का बाप परेशानी मे पड जाता है। अन्त मे फौलादी दरवाजा ताडने और कोट से कूद जाने की कडी शर्तें रखता है। लेकिन इसमे तो उल्टी भोजा की ही जीत होती है। बेलु के बाप की परेशानी और बढती है।

दोनो दूल्हे तोरण के सामने आ खडे होते हैं। राणा तोरण पर जरी की धोती डालता है, जबकि भोजा हार डालता है। यह बात जानकर बेलु कहती है—

'धोती धोती तो राणा फट जायगी
मेरे हिये मे रहेगा वह हार ।'

इतना होने पर भी बेलु का बाप अपनी लडकी को राणा के साथ ब्याह देता है। राणा बेलु को लेकर वापस लौटता है। परन्तु

'तीन राहो का आया तिराहा
बैठी रिस होके बेलु नारी ।'

और जो बेलु ब्याह होने तक बाप के आगे मुह तक न खोल सकी थी वह बियाबान जगल मे राणा से साफ कह देती है—

'क्यो रे चलूँ राणा गजे,
तेरे मुह पर नहीं हैं मूछ ।

इस पक्ति को पूरी करके कानजी एक युवक की ओर देखकर बोल उठा— इसे कहते हैं औरत ।"

'ये तो सतजुग की बातें है, इस कलजुग मे तो ऐसी "

ऐसा कहते हुए एक अधेड के बीच मे ही कानजी बोला—"ठीक है भावा भाई, आजकल की तो उल्टा समझ वाले का सिर कटवा दे।" और

फिर अपनी वारी आने पर गीत गाने लगा ।

वहाँ से तो बेलु को जाना पडता है, पर इतने मे ही एक कलार की दूकान आती है । राणा के सगी साथी शराब पीकर बेहोश हो जाते है । इस अवसर से लाभ उठाकर बेलु उस कलारिन के यहा छिप जाती है ।

पीछे से भोजा भी शराब पीने आ पहुँचता है । बेलु के पैर के तलुए पर उसकी नजर पडते हैं ! वह कलारिन से पूछता है—

'सच बता री माथु कलारिन
तेरे घर मे है कौन सी नारि ।'

भोजा और बेलु के प्रेम से अनजान कलारिन बहाना बनाकर बात को उडाना चाहती है, पर भोजा नही मानता, अत मे बेलु उसके हाथ लगती है ।

और इसके बाद जब सुखी जीवन बिताने के दिन आते हैं ता धूला अपने दरवाजे मे खडा होकर कानजी को आवाज लगाता है—' काना भाई, जरा इधर आना !'' विवश होकर कानजी उठता है ।

"जरा सुखडी बनाने की तरकीब तो बताओ ! देखो यह इतना आटा "

"लेकिन जब यह समूचा हीरा ही तेरे पास बैठा है तो मुझे इसमे "

' तो भी, तू वता तो सही ! ले, कुछ नही करता तो यहा बैठकर हुक्का तो पी !'' हीरा ने हुक्का रखा और पसै[1] भरकर यह अन्दाज करने लगा कि वह कितने सेर होगा ।

कानजी खाट पर बैठा था । सामने ही कोठी के सहारे नये कपडा मे लिपटी जीवी बैठी थी । नानी बुढ़िया आटे की डलिया लेकर उठी । जीवी के मुह को खुला देखने ही बोली— 'हाय हाय बहू ! सामने वह काना बैठा है, जरा घूघट तो काढ ! '

यदि यह कहा जाय कि इससे कानजी तडप उठा, तो अनुचित नही है । जिस मुह को देखकर ही सन्तोष किया जा सकता था वह भी आ`

१ दोनों हाथ भरकर अन्दाज करना ।

सदा के लिए बन्द हो रहा है।' कहा—'अरे क्या पागल हुई है नानी काकी! क्या मुझसे भी घूघट काढा जायगा? मैं और धूला ता एक ही उमर के है।"

"तो भी तू महीना आध महीना बडा तो होगा ही। जिस दिन तेरी माँ सोहर मे नहाई उसी दिन धूलिया का "

हीरा बोल उठा—"अरी, समझ गए भैया! बरस दो बरस का फरक हो और घूघट काढा जाय तो कोई और बात है।"

धूला बोला—'और घूघट काढने से ही क्या होता है? यह तो " और बुढिया को अपनी ओर घूरते देखकर कहने लगा—"तू मेरी तरफ यो क्यो देखती है माँ! घी गुड कब लायगी?'

कानजी अभी तक उस घूघट की ही धुन मे था जिस शब्द को जीभ पर लाते शायद महीना लग जाते—और वह भी महा मन्थन के बाद—वह झट से होठो के बाहर निकल पडा— नही री जीवी 'भाभी', ऐसी एक महीने की छोर बडाई मे घूघट नही होता समझी! नानी काकी तो वैसे ही।"

'तो मैं कौन इसके पीछे पडी हूँ। वह तो आज मेरी नजर पड गई, इसलिए मैंने कहा कि काढ लिया होता तो अच्छा था, नही तो न भी काढे तो क्या बिगडा जाता है?' घी की चपटिया[1] के साथ बाहर आती नानी बुढिया ने कहा। और इसके बाद घी उँडेलते उँडेलते मुह मटका-कर बोली—"इस हीरा के बाप के साथ और मेरे साथ भी यह तुम्हारे जैसा ही हुआ। मैं पहली बार ही सासरे आई थी। जैसे यह जीवी बहू बैठी है ऐसे ही मैं भी बैठी थी और वे ऐसे बैठे थे जैसे तू। आकर बैठ गए। इतने मे घर मे से मेरी सास "

'अरी, तू एक बार गुड लाकर दे दे?" धूला ने ऊब प्रकट की।

बुढिया बात अधूरी छोडकर फिर उठी।

यह अवसर पाकर कानजी भी उठ गया।

१ मिट्टी का पात्र।

बाहर गीत गाने वाले युवक बेलु और भोजा के संक्षिप्त विवाहित जीवन का भाग पूरा कर चुके थे। अच्छे अच्छो के कठोर हृदय को पिघला देने वाले अंतिम भाग मे कानजी ने स्वर मिलाया।

एक सन्ध्या को झरोखे मे खडी बेलु पश्चिम दिशा की ओर देख रही है। शका कुशका मे गोते खाता मन पूछता है— रोज तो ढोर इससे पहले ही आ जाते थे, आज कैसे देर हो गई?' इतने मे हो गायो के झुण्ड को खडे खेत मे होकर आते देखा। बेलु सोचती है—

सीधे रास्ते आती थीं नित्य रे
क्यो रूंदा हरा भरा धान?'

तभी झालोर गाय आ पहुँचती है। उसके सीगो को रँगा देखकर बेलु पूछती है—

'कहाँ से रँगाये माता सींग री,
तेरा कहा है भोजा ग्वाल?'

गाय जवाब देती है—

सामने सीम मे है साप की बाँबी,
उस से रँगे हैं मेरे सींग।'

बेलु फिर वही प्रश्न करती है—

'अच्छे रँगे हैं माता सींग री
पर छोडा कहाँ भोजा ग्वाल?'

कुछ देर गप शप करने के बाद गाय कहती है—

'छोटे नीम के नीचे भोजा सो रहा,
कोई लम्बी के चादर तान।'

गाय के इन वचनो और रँगे हुए खून से भरे सीगो को देखकर बेलु समझ जाती है। एक बार तो गाय को धिक्कारती है, पर होश आते ही शोक को छोडकर कहती है—

'भोजा गया सो तो कुछ नहीं माता,
पर देखता बेलु की बाट।'

'हृप से ब्याहे हम वन मे भोजा,
हृप से जलेंगे आज।'

और उसे भूलने के लिए उसने वडी वडी कोशिशें की, लेकिन जैसे वायु मे मिली सुगध को अलग नही किया जा सकता वैसे ही रक्त के साथ मिले उसे पक्ति के भाव का भुलाना भी कठिन था।

वैलो को सजाने की तैयारी करते हुए लडका के कुछ सवालो का जवाब देकर कानजी वापस लौटा। जब वह गाव मे आया तब बुढियाओ के अलावा सब लोग पूर्व दिशा वाले सिंहद्वार की ओर रवाना हो चुके थे। कानजी भी सीधा सिंहद्वार पर पहुँचा।

गायो को सिंहद्वार पर पहुँचाने का काम समाप्त करके स्त्रिया और वालक गाव की ओर लौटे, जव कि पुरुष एक बहुत पुराने महुए की ओर मुडे।

सब लोग घेरा बनाकर वैठे थे। घर पीछे कम से कम एक एक आदमी तो है ही यह तसल्ली कर लेने के बाद मुखिया खडे हुए। बोले—"ला चलो, अव किसकी वाट देख रहे हो ? इस साल इतनी गनीमत है कि कोई लडा झगडा नही।" इतना कहकर पास वाले आदमी से भेंटने को मुडे। मुखिया से भेंटने के बाद वह आदमी भी मुखिया के पीछे चला और यो भेंटने का काम पूरा हुआ।

काफी अँधेरा होने पर सब गाव की ओर मुडे। अन्तिम गीत गाया गया—

'जीते रहो तो मजलिस लगाना
मरने वाले का हो अन्तिम प्रणाम।'

इसके वाद दीवाली और बीतते वर्ष की एक ही क्रिया शेष रह जाती थी, और वह थी घर रहने वाले सगे-सम्बन्धियो से भेंटने की। इसके लिए जवान लडके और लडकियाँ मेल मिलाप वालो से मिलने गाँव मे निकल पडे।

हर दिवाली को कानजी वडी भाभियो, काकियो आदि से मि...

मिलाता लगभग पूरे गाव का चक्कर लगाकर ही घर आता था परतु इस दिवाली को वह सीधा घर आया। भाभी से मिलकर उसका आशी र्वाद लिया और खत्ती पर बिछी खाट पर हुक्का लेकर बैठ गया।

इसके बाद गाँव के कितने ही युवक, लडकिया और ब्योहारी भी भाभी से मिल गए। जिनसे उचित समझा उनमे कानजी ने भी मिल लिया। परतु इतने मे ही जीवी आई और वह सन्न से रह गया। जीवी के भाभी से मिल लेने के बाद उसे खुद उठना चाहिए था, लेकिन न तो वह उठा और न जीवी ने ही कोई तत्परता दिखाई, तभी भाभी, बोली—'क्यो बैठे हो देवर! जीवी बहू तुमसे घूघट तो काढ़ती नही फिर मिलने मे क्यो ''

'मिलने से ही क्या होता है?'' कानजी ने कहा। इतने पर भी यदि जीवी 'तो अब चलू बडी जीजी'' कहकर न चल दी होती तो शायद कानजी मिलने के लिए खडा भी हो गया होता।

कानजी को भी यह अच्छा लगा कि मिलना इस प्रकार टल गया। कारण इसमे उसे छल लगता था। भले ही जीवी के साथ उसका अनु-चित सम्बध अथवा ऐसा कुछ न था फिर भी देवर भौजाई का सम्बध तो नही ही था। उसने मन मे कहा—'लोक की दृष्टि से चाहे भाभी भी वहम न करती हो, पर जैसा भगतजी कहते हैं दुनिया को छलना अच्छा है पर मैं कोई अपने को थोडे ही छल रहा हूँ।'

लेकिन दूसरी ओर जैसे भगतजी ही कानजी से पूछ रहे हो ऐसे कोई उसके अतरतम मे उससे पूछ रहा था—'भले आदमी क्या बनता है? हीरा के लिए तो माना भी जा सकता है, क्योकि (सच-झूठ तो भगवान् जाने पर जैसा लोग कहते हैं) उसके बाप और नानी काकी मे । फिर नानी काकी तो आज भी हीरा पर अपने पेट के लडके जितना प्यार करती है। इसलिए उस (हीरा) तो कदाचित् धूलिया के प्रति लगाव हो भी सकता है, लेकिन तुझमे और धूलिया म ऐसा क्या था, जो तूने तरस खाकर उसे औरत करा दी। और कुछ नही तो कम-से कम इतना स्वाथ

तो है ही कि जीवी नजर के सामने रहेगी।"

भोजा-बेलु की अन्तिम पक्ति याद करते हुए एक भारी साँस लेकर वह हँसा और मन ही-मन कहने लगा—

'भाजा ब्याहे थे हम घने बन मे
और मन मे निकली थी बात।'

और इसके बाद न जाने कैसे फिर एक मन भर का नि श्वास निकल पडा।

आठवाँ प्रकरण

•

लाने की लाज रखना

स्त्री के शरीर मे यौवन का उफान आते-आते शान्त हो जाता है। यही बात धरती के लिए भी थी। चौमासे की झडी और तूफान शान्त हो गया था। धरती द्वारा पहनी हुई हरी साडी का रग भी जैसे उडने लगा था। उसमे भी रबी की फसल के लिए तैयार किये गए इक्के दुक्के खेत देखकर तो ऐसा लगता था मानो बीच बीच मे थेगडियाँ ही लगा दी गई हो।

परन्तु स्त्री के शान्त यौवन की भी एक अद्भुत खुमारी होती है। वह खुमारी कुए का पानी पीकर वढी हुई गेहूँ की फसल के ऊपर दिखाई देती थी। यह सारी की सारी फसल पूर्व दिशा से धीरे धीरे आती हुई शीतल वायु मे मन्द मन्द मुस्कराती दिखाई देती तो क्षण भर बाद ही ओस की बूंदो मे सूर्य को नचाती हुई धीर-गम्भीर बन बैठती, दोपहर के समय ऐसी फीकी दिखाई देती जैसे अत्यधिक कार्य की व्यग्रता मे पडी हो तो सध्या समय उन सब चिन्ताओ को भूलकर हँसने का प्रयत्न सा करती। वस्तुत सध्या के समय तो वह ऐसी लाल गुलाल बन जाती, जैसे उसकी पिया मिलन की अधीरता, और अर्ध रात्रि की शीतल समीर मे तो यह सारी-की-सारी फसल धरती की ओर ऐसे ढलती रहती, जैसे मानो सिसकारी भरती हुई पिया की गोद म छिप रही हो।

किसानो ने भी चौमासे के ऊँचे ऊँचे मचानो को छोडकर धरती पर।

ही आसन जमा दिया था। साग[1] के पत्तो से छाई हुई झोपडी की जगह घास के पूले बाधकर छोटी सी झोपडी ही बना ली गई थी। चौमासे की बदली वाली रात मे बजते अलगोझे या बासुरी की जगह किसी किसी झोपडी से इक्तारे के मधुर स्वर आ रहे थे।

कानजी का अपना कुआ न था, जब कि हीरा का था, पर पुर लेने या पानी काटने वाला कोई दूसरा साथी न था इसलिए ये दोनो जने पिछले कई वर्षों से रबी की फसल साझे मे ही करते थे। फिर शुरुआत मे हीरा को एक और भी आराम था। वह यह कि कानजी के अकेला—फक्कड होने के कारण झोपडी पर नम्बरवार सोने का प्रश्न ही जाता रहा था। लेकिन अब तो हीरा दो बच्चो का बाप बन चुका था। इसलिए घर की अशान्ति की अपक्षा झोपडी की कडाके की ठण्ड उसे अधिक अच्छी लगती थी। लेकिन वहा कभी कभी कानजी अशान्ति पैदा कर देता था—"तू यहा सोने आता है, यह मुझे बुरा नही लगता। क्योकि मेरे लिए तो एक से दो अच्छे, लेकिन क्या तुझे इसकी भी खबर है कि घर पर ककु भाभी मेरी जान ले लेगी।"

हीरा हँसकर जवाब देता—"कभी जान ली होगी, पर अब तो वे दिन गये कानजी! अब तो उल्टे घर साने मे ही जान जाती है।"

ऐसा कहने पर भी कभी-कभी तो कानजी हीरा को आधी रात के समय ही घर को धकेलता। हीरा को बडा गुस्सा आता, लाचारी भी दिखाता, पर कानजी माने तब न। बेचारे हीरा को विवश होकर वहाँ से जाना पडता। "इस वक्त कोई घर जाता देख ले तो क्या कहेगा?" इस भय के अतिरिक्त सबसे बडी कठिनाई तो यह थी कि किवाड खुलवाने के लिए चिल्लाना पडता था। प्राय वह दूसरी झापडी मे ही गोता मार जाता। दूसरे दिन जब कानजी को पता चलता तो वह पेट पकडकर हँसता।

इस वष भी कानजी को वह पुराना मजाक याद आया और एक बार

१ वृक्ष विशेष।

तो वह कर भी दिया । परन्तु दूसरी बार जैसे ही ऐसा हुआ वैसे ही हीरा को सन्देह हो गया— ये महाशय कही और कुछ तो नही करते ।' और यदि ऐसा हो भी तो इसके लिए बहुत सोच विचार करने की जरूरत न थी । घूला के घर की दिशा मे ही खेत भी था । इस बात की जाँच करने के लिए ठड से सिकुडता और इधर उधर देखता हीरा एक ओर छिप रहा पर न तो झोपडी की आग ही बुझी और न कोई जाता ही दिखाई दिया । 'इस टेकरी का चक्कर लगाकर तो न गया होगा' ऐसी शका होती, लेकिन तभी कानजी या तो सियार भगाने को उठता या चिलम भरता दिखाई देता । बडे सवेरे अपने घर की ओर मुडता हुआ अपने सदेहशील स्वभाव पर बडबडाया— अरे मूरख ! जरा यह तो सोच कि यदि ऐसी बात होगी भी तो क्या कानजी तुझसे कहे बिना रहेगा ? उसने तो उसी दिन सौगध खाकर कहा था कि मुझ जीवी का मुह देखे उतने महीने बीत गए है, जितने दिवाली को बीते हैं । उसका पूरा मुह देखे भी काफी दिन हो गए ।'

कानजी के इस कथन मे तनिक भी झूठ न था । निश्चय करके मिलने की बात तो दूर रही, वह तो इस भय से कि कही अचानक भेंट न हो जाय, चलने फिरने मे भी बडी सावधानी बरतता था । जीवी ने रतन के साथ जो भाएला[1] जोडा था वह भी उसे खाये जाता था । इसीलिए तो उसने रतन का जाना-आना भी बन्द करा दिया था ।

एक दिन मुहल्ले मे घूमती रतन से छाछ ले आती जीवी ने पूछा— "क्यो रतन, अब मेरे घर नही आती ? आ, चल "

"नही, जा, नही आना !" रतन ने मुह बिचकाकर कहा ।

'लेकिन मैं तुझे गुड दूँगी । तू चल तो सही ।' कहकर जीवी ने रतन की बाँह पकडी ।

रतन ने भयभीत दृष्टि से घर की ओर देखा । खेतो से आते रास्ते की ओर भी देख लिया । और अन्त मे जीवी की ओर करुण दृष्टि से देखकर बोली—"नही, मेरे भाभा मारेंगे ।"

१ मित्रता, सहेलीपन ।

क्षण भर के लिए जीवी का मुह ऐसा उतर गया जैसे पीनिया हो गया हो। जैसे विश्वास न होता हो ऐसे पूछा— तेरे काका ने मना किया है या बापा ने ?"

"नहीं, मेरे काका ने।" कहकर रोनी सी सूरत से रतन जीवी की ओर देखने लगी।

कही ऐसा न हो कि भूल से कह रही हो इसलिए तीसरी बार यही सवाल दुहराया—'तेरे काका ने ?"

'हां आ।" कहते हुए रतन ने सिर हिलाया।

जीवी ने तुरत उसकी बांह छोड दी और होठ चबाती हुई चला गई।

अब तक तो जीवी का यही विश्वास था कि कानजी का यह अपने से दूर रहन का व्यवहार लोगो के दिखाने के लिए ही है पर आज जब रतन को 'नही, मेरे काका मारेंगे" कहते सुना तो उसकी आँखें खुली। एक वार तो वह झुझला उठी—'यदि यही करना था तो मुझे यहाँ लाये ही क्यो ? कौन सा सगा भाई बिना औरत के रह जाता था जो वचन लेकर मुझे बांध लिया।' आर यदि आज उसे कानजी मिल गया होता तो वह शायद बीच रास्त मे उसमे लड भी पडती।

घर मे घुसत ही सास को कहते सुना—' ओहो, छाछ लेन आनगाम गइ थी क्या री।" दिन भर चक्की खाटने वाले की तरह 'खुट-खुट' करती सास को 'होगा, यह तो उसकी आदत ही हो हो गई है,' कहकर टाल देने वाली जीवी को आज क्रोध आ गया। छाछ की मलरिया[1] की चौके के बाहर कोठी के पास रखती बोली—"ऐसा ही था तो तुम जाती ?"

यह तो समझ गई कि तू बडी कमाई करके आई है, पर मलरिया को तो ठिकाने से रख !" नानी बुढिया ने कहा और जीवी को "रखो रखना हो तो" कहकर चक्की वाले चबूतर पर बैठती देखकर, दायें कंधे पर सिर की झोक देते हुए बोली—' वाह ! सब-कुछ मैं ही करूंगी ?

१ मिट्टी का छोटा पात्र।

क्या तू मेरे घर गद्दी पर बैठने आई है ?"

'बडी आई गद्दी पर बिठाने वाली !" कहकर जीवी उछल कर खडी हो गई । सार[1] से टोकरा लिया और बगल म दबाकर घर से बाहर निकल पडी ।

पीछे बुढिया बडबडाती ही रही—"लेकिन मुझे कण्डो म आग ता नही लगानी ? अभी घडी भर मे कुआँ छूटने वाला है और खाने का ठिकाना तक नही" पर जीवी ने तो ' करो, करना हो तो" की बडबडाहट के साथ खेतो का ही रास्ता लिया ।

सास भी, "इस राँड को आज हुआ क्या है ?" यो बडबडाती हुई खाना पकाने मे लग गई ।

यह ठीक है कि जीवी बगल मे टोकरा दबाये खेतो मे कण्डे बीन रही थी, पर यह सब यन्त्रवत् ही हो रहा था । आधा टोकरा भरती और एक जगह ढेर लगाकर आगे बढती, परन्तु उसे इसका भान तक न था कि उसने ऐसे ढेर कितने और कहाँ-कहाँ लगाये हैं । बडी देर बाद जब वह हेल[2] चिनने बैठी तो उसने याद करके देखा कि वह इतने कण्डे बीन चुकी है, जिससे एक के बदले दो हेल चिनी जा सकें । समय भी बहुत हो गया था और वह आई भी सास को बिना मर्जी के थी, फिर भी उसने हेल ऐसे धीरे धीरे चिनी जैसे उसे इसकी कोई चिन्ता ही न हो । उठाने वाले की राह देखती बैठी रही । कुछ देर हुई होगी कि पास ही के झरने के पानी भरने आने वाली एक स्त्री को देखकर जीवी ने आवाज लगाई और बुलाया । जब वह हेल लेकर घर की ओर चली तब सूर्य पश्चिम मे ऐसे सहज भाव से ढल गया जैसे दोपहरी बिताकर उठा हो ।

धूला ओसारे मे हुक्का पीता हुआ ऐसे बैठा था जैसे उसकी राह ही देख रहा हो । जीवी को देखते ही उसने पहला सवाल किया—"कण्डे लेने कौन-कौन गई थी ?"

१ घर मे गाय भैंस बाँधने की जगह ।
२ टोकरे मे कण्डों का चिनना 'हेल चिनना' कहलाता है ।

जीवी ने कोई जवाब नहीं दिया। ओसारे मे एक ओर ओलाती के नीचे कडे डालकर टोकरा लिये हुए वह घर मे घुस ही रही थी कि धूला ने फिर पूछा—"क्या, क्या कानो मे ठेंठा[1] लगा लिये हैं?"

जीवी वहीं खडी हो गई। धूला की ओर गरदन घुमाती बोली—"क्या है?" और तीखी नजर से उसकी ओर देखने लगी। मुह की रेखाओ मे भय का नामो निशान तक न था। हा, एक प्रकार की कठोरता अवश्य थी। धूला काँप उठा।

धूला भी ऐसा न था जो अपनी धाक जमाने के इस प्रथम अवसर को हाथ से जाने देता। इसके विपरीत वह तो ऐसे अवसर की राह ही देख रहा था। वह तुरत खाट से उठा। जीवी को सटाक से खीचकर एक तमाचा जडा। ऊपर से एक लात भी लगाई। हुंकार तो चालू थी ही—"तेरी माँ की राड! तू अभी मुझे जानती ही नही। आज तो इतना करके ही छोडता हूँ, लेकिन आगे यदि अकेली कही बाहर गई या बुढिया का कहना न माना तो तू जाने!"

जैसे कुछ हुआ ही न हो ऐसे टुकुर टुकुर देखती जीवी अब भी वही खडी थी। धूला फिर गरजा—"तू मेरे सामने से चली जा! नही तो अभी खबर पड जायगी, समझी।" और जीवी ऐसे खडी थी जैसे इस 'खबर पडने' को देखने के लिए ही खडी हो। खाट पर बैठा धूला अन्तिम चेतावनी दे रहा था कि इतने मे ही घर से नानी बुढिया आ पहुची। जीवी को घर की ओर धकलती हुई धूला को बुरा भला कहने लगी— 'यदि इस बात पर हाथ न उठाया होता तो क्या तेरी बहादुरी का पता न चलता?"

परन्तु यदि सच पूछा जाय तो धूला को लोगो के सामने अपने व्यक्तित्व का परिचय देना था। जब से जीवी आई थी तभी से लोग उसका मजाक उडाने लगे थे—"रूप का टुकडा तो लाये हो धूला भाई, पर देखना जरा भारी पडेगा।"

१ ऐसी वस्तु कान मे लगाना, जिससे सुनाई न दे।

धूला मूँछो पर ताव देता हुआ जवाब देता—"भारी भारी क्या कहते हो, यदि कुछ ही दिनो मे सीधा न कर दू तो मेरा नाम धूलिया नहा। उसकी मजाल नही जो तनिक भी इधर-उधर करे।"

और जब कोई आज के पराक्रम की बात यो पूछता—सुना है कि घर मे मार-पीट कर डाली धूला ?" तो उसे कुछ शरम भी आती। गरदन हिलाते हुए गभीरता से जवाब देता—"अभी हुई कहा है अब होगी।' कारण, इससे धूला को सतोष नही हुआ था। क्योकि न तो जीवी दरवाजे के बीच में बैठकर चीखी थी और न गुस्सा होकर बाहर ही निकली थी। इससे तो उल्टा उसका असतोष बढा ही था। गाँव के लोगो को अडोसी पडोसियो के कहने से पता चले तो मारना किस काम का है। मारना तो तभी साथक है न, जब कि लोग जीवी का विलाप सुनकर इसका अनुभव कर लें कि धूला ने मारी है। और यह सोचकर वह मन मे कहता—'अच्छी बात है दुबारा मौका आने दे। तब तेरी खबर लूगा।' और इसके बाद दुबारा कब मौका मिले और कब उसका पानी उतार, इस उधेड बुन मे जीवी की उस दिन की निश्चल मूर्ति का स्मरण करके बडबडाता—'अरे जा, मैंने ही भूल कर दी। अब क्या होना है ? नही तो मुझे उसी समय सीधा कर डालना चाहिए था। अच्छी बात है—अबकी बार अवसर मिलने दो, फिर देखना तमाशा।'

और धूला को यह अवसर चौथे दिन शाम को ही मिल गया। जिस समय वह कुएँ वाले खेत पर बैठा था उसी समय उसके पडोसी रेशमा ने ने वही से खबर लाकर दी कि फलाँ दिन शाम के वक्त जीवी गाय खोजती-खोजती कानजी की झोपडी पर गई थी। ऊपर से उसने यह भी कहा—' देखने वाले व्यक्ति का कहना था कि वह पूरी पाली[1] मक्का

१ बम्बई में चार सेर का एक तोल का परिमाण। एक पाली, दो पाली के हिसाब से ही वहाँ अनाज तुलता है। ब्रज मे भी ऐसा प्रयोग होता है। अक्सर गाँव मे स्त्रियाँ कहती हैं—'एक ढया (ढाई सेर), पसेरी (पाँच सेर) मक्का पिस गई पर उसकी बातें खतम न हुई।

पिसने तक झोपडी से बाहर नही निकली थी ।"

यह सुनकर धूला आग बबूला हो गया । एक ओर उसे कानून का डर लगता था तो दूसरी ओर उसका मालिकपन [illegible] था । 'जो-कुछ होना हो सो हो ।' कहता हुआ वह घर आया । जौंकी को ढूँढ मारा, पर वह घर मे कही न दिखी । बुढिया से पूछा तो पता चला कि पानी भरने गई है ।

"आने दो आज उसकी खर नही ।" कहता हुआ वह [illegible] मे आया ।

"लेकिन है क्या ? तुझे क्या भूत लग गया है ?" [illegible] बुढिया ने कहा ।

"भूत तो तेरी बहू को लगा है । उस दिन इतना कहा-सुना, फिर भी राड ।"

बुढिया बीच मे ही बोल उठी—"[illegible] कराके जरा धीरे से बोल !" और [illegible] उसके पास बैठकर पूछा—"आज और क्या हुआ है ?"

धूला ने धीरे से, पर गुस्से से, [illegible] । [illegible] बताया—"यह रांड कोई मुझसे [illegible] है । [illegible] से ।"

बात भी झूठी हो जाती है।"

बुढिया ने धूला का खाना भी छोटे लडके के द्वारा कुएँ पर ही पहुँचवा दिया। दूसर दिन तो धूला का गुस्सा भी 'अच्छी बात है, अबकी बार तो छोड देता हूँ पर आगे यदि तूने फिर ऐसा किया तो दखना ! इस बानियाँ के पास जान की तेरी जनम भर की आदत न छुडा दूँ तो याद रखना कि धूलिया क्या कहता था ।' इन शब्दो के साथ ठडा हो गया। उसने बुढिया को भी चेतावनी दे दी—'अबकी बार तो गम खाये जाता हूँ पर यदि आगे से कोई ऐल फैल देखने मे आये तो जीती न छोडूँगा समझी ?'

दूसरी ओर गाँव म भी तरह-तरह की बातें हो रही थी पर इसम सत्य क्या था इसे तो जीवी और कानजी दो ही जानते थे। जीवी गई तो थी गाय ढढने ही पर सामने कानजी की झोपडी देखी तो उससे जाये बिना न रहा जा सका।

कानजी झोपडी मे बैठा-बैठा तँबूरे के टूटे हुए तारो को बदल रहा था। जीवी को देखते ही चौंक उठा। इधर-उधर नजर डाली। एक ओर सध्या का गुलाबी रग काला पड रहा था, दूसरी ओर गाव को घेरता हुआ धुआँ भी जमते अँधेरे को गहरा कर रहा था। कानजी बोल पडा—'क्या ? तू कहाँ से ? इस समय ?'"

"गाय खोजने निकली हूँ।" झोपडी की बल्ली पकडते हुए जीवी ने कहा। तँबूरे पर नजर डालकर हँसती हुई बोली—"बाबाजी बनने की तैयारी कर रहे हो क्या ?'

'तू मेहरबानी करके या तो अदर आ, या फिर वापस जा ! बेकार '

कानजी के उतरे हुए मुह को देखकर जीवी और भी ज्यादा हँसी और उसे तग करने के इरादे से ही झोपडी में घुसती हुई बोली—"इसम इतना घबराते क्यो हो ? लो, मैं यह अदर आ गई !"

'लेकिन लेकिन इस समय तू यहाँ आई क्या ? तेरी गाय कही

यहाँ झोपडी मे तो ''

जीवी को कुछ दु ख तो हुआ, पर उसने अपना विनोदी स्वभाव न छोडा। बोली—''यदि दपण हो तो जरा अपना मुँह तो देखो !''और जैसे स्वगत-कथन कर रही हो ऐसे कानजी पर तरस खाती हुई कहने लगी — ''कहा वह अल्हड बछडे-जैसा मुँह और कहा यह गरीब गाय जैसा मुह ?'' कानजी की ओर देखते हुए कुछ क्रोध के साथ फिर बोली—' यो हक्का-बक्का होते तुम्हे लाज भी नही आती ? ऐसा क्या है जो तुम इतने ज्यादा डरते हो ? क्या कोई औरत अपने खेत पर जाती ही नहीं ?''

''नही नही, मैं कोई अपने लिए थोडे ही डरता हूँ'' कहता हुआ कानजी जैसे होश मे आ गया हो या अपने पहले व्यवहार के लिए पश्चात्ताप कर रहा हो, ऐसे हँसा। बोला—''मैं तो तेरे लिए ! उस व दर को पता लगेगा तो फिर मार पीट करगा इसीलिए, नही तो मुझे और कोई ।''

लेकिन इसमे तुम क्या घबराते हो ? मैं तुमसे फरियाद करने आऊँ तो कहना। यह तो मुझे तुमसे जरा एक बात पूछनी थी इसलिए मैंने कहा कि लाओ इधर आई हूँ तो इस झोपडी मे ।''

''क्या बात है ?'' कहकर पीछे हाथ टेकते हुए कानजी जीवी की ओर देखकर हँसने लगा।

कितने दिन बाद जीवी को यह हास्य देखने को मिला था ! वह कानजी को तिरछी नजर से देखती खडी रही। कानजी ने अपनी आखें हटा ली। बीच मे पडे तँबूरे को एक ओर रखते हुए फिर पूछा—''क्या बात पूछती है यह तो बताया ही नही ?''

''खाक धूल। बात क्या पूछनी है मैं तो यो ही ''

'कैसी चट है ?'' कहकर कानजी ने झोपडी की बल्ली पकडकर झूलने के लिए तैयार जीवी से कहा—''कही तोड न डालना !''

'देखो कहकर जीवी ने और भी वजन डाला। कानजी बोल उठा— ''अरे, पागल तो नही है। अभी उठगा तो फिर ! नखरे न कर, समझी

सच कहता हूँ।"

"नहीं तो क्या करोगे?' कहती हुई जीवी की सूरत, उसकी तिरछी नजर, उमड़ता मद, मद मद मुस्कराते होठ, गालों में पड़ते हल्के हल्के गड्ढे और इस सबके बाद पूरी शरीर की मरोड़ आदि देख कर कानजी को फिर कहना पड़ा—"यहाँ से जाती है कि नहीं? बात कहनी हो तो फिर किसी दिन मिलना। अब तू जा!"

लेकिन मुझे कहाँ जाना ही नहीं। बहुत कहोगे तो लो यह बैठी हूँ।' कहती हुई जीवी बैठ भी गई। बोली—'नहीं जाती जाओ। तुमसे जो हो, सो कर लो!"

'मुझे कुछ नहीं करना देवी! मैं तुमसे कहता हूँ कि तू जा!" कहकर कानजी ऐसे होठ जोर से चबाने लगा जैसे उसे कोई अकथनीय उलझन हो रही हो। फिर कहने लगा—'उठ, ओ जीवी! सच कहता हूँ। मुझसे अब " पर इससे पहले तो वह खड़ा भी हो गया था। पागल आदमी की तरह वह जीवी की ओर मुड़ा। 'तो देख " कह कर हाथ तो बढ़ाये, पर दूसरे ही क्षण उसके उर प्रदेश का हल्का सा धक्का मारते ही, जैसे उसे उठाये ही न लिये जा रहा हो ऐसे झोपड़ी से बाहर निकल गया।

कुछ दूर जाकर खड़े हुए कानजी ने मीठी नजरों से घूरती जीवी से कहा—'तभी से मैं कह रहा था न? अब भी सच कहता हूँ। बाहर निकल!' और जीवी फिर भी 'नहीं निकलती जाओ!' कहकर मुह बिचकाती हुई तिरछी नजरों से देखने लगी तो कानजी को एक ओर चल ही देना पड़ा। जाते जाते बोला—'तो ले बैठी रह अकेली!"

जो झोपड़ी मे भी न समा सके, ऐसा भारी नि श्वास छोड़कर जीवी बाहर निकली। मुँह नीचा किये हुए ही गाँव की राह पकड़ी। कानजी ने उसे दो बार बुलाया तो न रुकी पर तीसरी बार बुलाया तो झट खड़ी हो गई। कानजी का मुह भारी हो गया था। जोर से सास लेकर नीची निगाह किये हुए वह बोला—"देख जीवी! मुझे बहुत दिन से तुझसे एक

बात कहनी थी। मैंने तुझे यहाँ लाकर भारी भूल की है, लेकिन अब उसमे सुधार नही हो सकता। परन्तु फिर भी यह सच है कि आज से हम दोनो ऐस रहेगे जैसे एक दूसरे को पहचानते ही न हो। इसी मे तेरा और मेरा दोनो का भला है।" कहकर कुछ रुका। जीवी का निश्वास सुनकर फिर बोला—"तुझ पर क्या-क्या बीतती है, यह सब मुझे मालम है, परन्तु परन्तु अपने दिल की बात मैं किससे कहूँ? लेकिन अब तो '
फिर बात बदली—"आज तो तू यहा आई सो आई, पर अब फिर इस ओर "

"नही आऊँगी।" कहकर कानजी की ओर एक ज्वालामयी दृष्टि डाली और पीठ फेरकर चली गइ।

कानजी अपने हाथ बगल मे दबाये जीवी की पीठ को बेहोशी सी मे देखता हुआ बडी देर तक वही खडा रहा। होश आने पर खेत के चारा कोनो पर नजर डाली और गाव की ओर चला। मस्तिष्क मे कइ हजार विचार उठ रहे थे। तरह तरह के सवाल जवाब हो रहे थे। उनमे से मुख्य तो यही था—'मैं इसे यहा लाया ही क्यो? और पश्चात्ताप करता हुआ स्वगत कहने लगा—आखो के आगे लाकर उलटा दु ख ही बटोरा है।' साथ ही यह भी सोचा—'धूलिया की ऐसी-तैसी? मिया-बीवी राजी तो क्या करेगा काजी? दुनिया भले ही कुछ कहे। और वैसे भी क्या नही कहती?' लेकिन इतना होने पर भी उसका जी तो चटखता ही था—'यही नही, उस दिन भगतजी कहते थे—कानजी, जीवी को लाया है तो लाने की लाज रखना।'

गाव मे घुसते ही कानजी ने अपने मरे हुए मा-बाप की कसम खाते हुए निश्चय किया 'चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाय पर मैं कभी जी नही बिगाडूगा। आज से उसकी ओर आख तक न उठाऊँगा।

लेकिन कानजी का यह विचार और मन्थन काइ दुनिया की जानकारी मे थोडे ही था। उसने ऐसी ऐसी बातें की, जिनका कि कोइ अस्तित्व ही न था। जब वे बातें भगतजी के कान मे आईं तो उन्होंने

बात ही बात मे कानजी से कह दिया—' शरीर बिगड जाय, यह बात तो मेरी समझ मे आती है भाई। क्योकि देर-सवेर नई चमडी आ जाती है, पर यदि जी बिगड जाय तो उस पर लगा दाग़ दूसरे जनम मे भी नहीं छूटता।"

"सच बात है भगतजी !" कहकर कानजी विचार मग्न हो गया। उसे यह समझते देर न लगी कि भगतजी ने यह उदाहरण उसी के लिए दिया है। उस दिन से उसने पक्की गाँठ बाँध ली—'आज से जीवी को मेरी आखिरी राम राम।' और मन ही मन भगतजी से कहा—'यदि आज से कभी उसका नाम लूँ तो कानजी से फट' कह देना भगतजी !"

और उस दिन से कानजी ने जीवी पर से जैसे मन ही उठा लिया। कभी बराबर वालो की मण्डली मे बैठा होता और जीवी आ जाती तो वह उठकर चल देता और अगर बैठा भी रहता तो उससे बात करना तो दूर, उसकी ओर देखता तक नही। जहाँ तक उससे होता उसकी ओर पीठ ही रखता। दूसरो से की गई बातचीत मे 'क्या घुमा फिराकर भी अपने लिए कुछ कहता है ?' के लिए निरन्तर परेशान रहने वाली जीवी को बिलकुल निराश होना पडता।

और कानजी की ओर से होती आने वाली अवहेलना से जीवी का दु ख कई गुना बढ गया। मन-ही मन कहती थी—'ऐसा आदमी तो कही देखा ही नही। कौन कितने पानी मे है यह क्या गाँव मे किसी से छिपा है। लेकिन कोई भी इतना ज्यादा अलग तो नही रहता।' और मानो सोचती कि कब कानजी मिले और कब कहूँ— यो सामने देखने से ही पाप लगता है तो आधी रात को बुलाने क्या झख मारने के लिए गये थे।'

लेकिन कहे तो तब न, जब कि कानजी सामने मिले ? जीवी को बहुत दिनो बाद देखता तो या तो पीछे लौट जाता या दूसरे रास्ते से निकल जाता। जीवी मन मे सोचती— छाया पड जाती होगी।' और एक दिन किसी बात के प्रसङ्ग म पाँच सात जना के बीच म उसने कह

भी डाला—"बडी बडी बातें ही करते हो हीरा भाई ! मुंह पर मूछें तो मद की ह पर कलेजा तो पिड़कुलिया का ही लगता है।' जीवी ने कहा तो हीरा को लक्ष्य करके था पर देखा था कानजी की ओर ही। लेकिन कानजी ऐसे चुप रहा जैसे बहरा हो—न हँसा, न जीवी की ओर देखा। जीवी का खूब गुस्सा आया, पर क्या करे ? घूला की मार और सास की कलह सह सकती थी पर कानजी की यह उदासीनता उसके हृदय को काटे खाती थी।

कानजी को जब वह दूर से देखती तो उसका हृदय जैसे तड़प उठता— 'और तो कुछ नही न बोले तो भी कोई बात नहीं, पर आंख उठाकर कभी सामन तो देखे ! मैंने तेरा ऐसा क्या बिगाडा है। और आजकल तो उसकी आँखें भी भर आती थी।

नवाँ प्रकरण

•

वियोग की वेदना

गेहूँ की फसल पर गुलाबी किरणें फैलाता हुआ जाड़े का सूरज निरन्तर ऊँचा चढ रहा था। रात के अँधेरे मे पौधो की फुनगियो पर आकर बैठी हुई ओस की बूँदें धीरे धीरे लुप्त हो रही थी। सिर पर मटका और बगल में कलसिया दबाए धोती के पल्ले मे हाथ छिपाती पनिहारिनो की पंक्ति भी कुएँ की ओर जाने लगी थी। इक्के-दुक्के खेतो से पुर की 'चिकरक चिकरक' आवाज भी आने लगी थी।

कानजी तथा हीरा अभी झापड़ी मे ही थे। बीच के अलाव म एक भारी लक्कड जल रहा था। दोनो ओर पूलो की शय्या पर बिछी गुद ड़ियाँ भी अभी ज्यो-की-त्यो थी।

गुदड़ियो मे लिपटे हीरा तथा कानजी हुक्के का आदान प्रदान कर रहे थे। सहसा नजदीक के पुर की आवाज कान म पड़ी।

'ले चल उठ हीरा मुझे पुर जोड़ने और फिर घर जाना हो तो जा! इतने मे तो यह एक नथ[1] पूरा कर दूँगा।' कहता हुआ कानजी खड़ा हो गया। मैं तुम नथ के मारे '

'अरे तू एक बार पुर जोड़ तो सही! इस अधूरी को पूरी करके ही मैं घर जाऊँगा। फिर तू अकेले ही लगे रहना!' कहता हुआ हीरा भी खड़ा हो गया।

१ खेत का वह एक हिस्सा, जिसके दोनों ओर नरसों रहती है।

"यह ठीक है।" कहकर कानजी झोपडी के बाहर निकला।

जँभाई के साथ अगडाई लेते हुए हीरा बोला—"ओहो! दिन तो काफी चढ गया है।"

"नही तो क्या तेरी बाट देखता बैठा रहेगा?" कहकर हँसता हुआ कानजी दाईं ओर मुडा। खेत की मेड पर पधया[१] दिये हुए दो बलो को लाकर पुर मे जोत दिया। बैल कद म भले ही छोटे हो पर ताकत मे तो ये वन मे घूमते साड जैसे थे। इसीलिए तो कानजी के इन बलो के बारे मे यह कहावत सी बन गई थी — 'बैल देखने हो तो जाओ कानजी खुशाल[२] के यहाँ।'

कानजी ने पुर भरकर दोनो हाथ बैलो की पूछ पर रखे। जमीन से सटे हुए मुह रखकर चलने वाले बैलो ने ऐसे सपाटे से पुर खीचा जैसे वे खाली पुर खीच रहे हो। दूसरा पुर निकाला पर तीसरे पुर पर तो उसने बैल खडे कर दिए। पारछे की बगल से एक पत्ते की पुडिया निकाल कर गरीली की धुरी मे थोडा थोडा कोयले का चूरा भर दिया। और इसके बाद तो इस गरीली से उठती हुई मधुर ध्वनि के साथ कानजी ने दोहा गाना भी शुरू कर दिया।

पुर के साथ गाये जाने वाले दोहो का ढग ही ऐसा है कि इस पद्धति का अभ्यासी कोई भी व्यक्ति गद्य को भी पद्य बनाकर गा सकता है। इस ढग से अनेक युवक मन को बहलाने वाले दोहे गाते। लेकिन जब कानजी गाता तब तो बहुत से आदमी यह मान ही नही सकते थे कि कानजी अपने निजी दोहे गाता है। बहुत से उससे सीखने के लिए मिन्नत भी करते। कानजी कहता— अरे भाई, वह तो उस समय तरङ्ग आयी थी सो गा दिया। अब मुझे याद थोडे ही है कि तुम्हे सिखा द।" फिर भी लोग न मानते पर जब रोज के नये नये निकलने लगे तब तो मानना ही पडा। किसी किसी स देहशील ने तो कानजी के पास से गजरामारू

१ लम्बी रस्सी, जिससे बाधकर जानवरो को चरने छोड देते हैं।

२ 'खुशहाल' का अपभ्रश, खाते पीते किसान के लिए प्रयुक्त।

सदावत्स सावलिंगा, सारंगा सदावृक्ष और भजन आदि की पुस्तकें से जाकर भगतजी से बँधवाकर भी देगी। लेकिन शाम के गाहे हो तो मिलें। और जो कुछ थे भी वे सारी दुनिया को मालूम थे। परन्तु कानजी के दोहों का असली मजा तो तभी आता था जब यह पूरे रङ्ग में होता था।

हीरा का खेत पनघट से काफी दूर था। लेकिन वहाँ से खड़े होकर गाँव के छोर से आती पनघट की पूरी पगडण्डी और कुआँ सभी दिखाई देते थे। पानी से घेर भरकर घर जाने वाली युवतियों को नज़दीक से देखने की अपेक्षा दूर से देखने में ही वास्तविक आनन्द आता है। कभी सामने से आती युवती से बात करती क्षण भर रुकें तो कभी कन्धे पर पड़ी हुई रस्सी का चाबुक मारकर सामने वाली के प्रहार को सेंके, अकेली हो तो इधर उधर गरदन घुमाकर चेहरे को हवा में घुमाती आस पास नजर डाले। लेकिन यह सब तो तभी देखने को मिल सकता है जब देखने वाला व्यक्ति दूर हो।

पनघट की इस हरी भरी बाट को देखकर कानजी आज बहुत दिनों बाद रंग में आया था—

मीत ! शीत की वायु तें, जातु करेजो काँपि।
प जोबन की वायु तें, रख न सकति हम चाँपि॥

एक ओर की मेड़ पर पानी देते हुए हीरा ने समर्थन किया— यह वायु तो कुछ और ही है भाई !"

"चल मेरे वीरा ! " कहकर कानजी ने पुर की 'चिकरक चिकरक' आवाज़ में फिर अपना मुक्त स्वर मिला दिया—

मीत ! मुठी भर जनम में, है यह कसी बात।
जो वियोग के दुखद पल, जुग सम हमें लखात॥

हीरा फिर बड़बड़ाया— ऐसे न लगें तो फिर वियोग कैसा ?'

सवेरे से ललकारते हुए कानजी के इस आखिरी दोहे ने तो पानी भरने आई जीवी के हृदय में उल्कापात मचा दिया। पनिहारिनों में से एक ने तो कहा था— काना भाई ! इतना ज्यादा क्यों खिल रहा है ?"

"तुझे देखकर ही।" दूसरी ने मजाक किया।

"नहा भाई, अपने म ऐसा क्या रूप समाया है जो कोई मोहित हो जाय, और वह भी ऐसा कि दोहे गाये ?" जीवी की ओर कतराती आँखा से देखती हुई पहली बोली।

लेकिन जीवी का जी आज अपने वश मे न था। जैसे उसे कोई खीच रहा था—गला फाड फाडकर जैसे उसे कोई बुला रहा था। कहता था—

मीत ! नयन भरे बावरे, लम्बी बेनी आस।
सोचतु आवेगी कबहुँ, बेनी वारी पास॥

जीवी ने खाली जेहर एक ओर रखते हुए हीरा की बहन नाथी से कहा—"मैं जरा चील[1] का साग तोड लाऊ !"

"कहा से तोडेगी ?"

'इन्ही खेतो से।"

और जैसे परमात्मा न कहलवाया हो ऐसे नाथी बोली— इसकी अपेक्षा तो मेरे ही खेतो मे चली जाओ न ! घडी भर म तोडकर आ जाओगी।"

"यहीं देखू तो सही। न मिलेगा तो फिर वहीं चली जाऊँगी।" कहकर जीवी बगल की खेत मे घुसी।

"तब तक मैं एक जेहर डाल आऊँ !"

'अच्छी बात है। लेकिन जल्दी लौटना !" कहकर जीवी ने खेत मे प्रवेश किया।

और फिर तो नीचे झुककर चील तोडती और उसे पल्ले मे रखती हुई जीवी नाक की सीध मे चली जा रही थी। कोई देख रहा होगा ?' 'क्या कहेगा ?' जैसी जो खटक थी वह भी अब जाती रही थी। क्षण भर म ही उसका अग प्रत्यग, हृदय की धडकन और उसकी समग्र आत्मा दोहे के भावाध म समा गए थे। अगले दोहे की खोज मे उसका दिल जैसे बोल रहा था—द्रवित हो रहा था—'लम्बी वेणी वाली की उसको

१ विशेष प्रकार की भाजी या तरकारी।

चाहना थी।' और दूसरे दाहे को कान लगाकर सुनने लगी—

बधु, चलत पथ मे मिली, बेनी कारी आय।
भइ कठिन हिय ते लिपटि, लम्बी बेनी हाय॥

जीवी का क्षण भर क लिए शका हुई— 'न जाने किसकी बात होगी।" लेकिन अतर की गहराई मे उसे विश्वास था कि कानजी आज यह सब उसी के लिए कह रहा है। वह अपने दिल की हविश निकाल रहा है। जीवी ने भी मन मे कहा— हृदय से लिपट गई थी तो फिर क्यो उस वेणी को स्वीकार न किया ? किसने मना किया था ? —तभी फिर पुर चालू हुआ। दोहा सुनाई दिया—

कजरारी मेरी आख मे, फुली परी जनु होय।
बेनी अरु वाकी चाह सब धुधरी दीस मोय॥

और जैसे इस शोक मे डूब गए हो ऐसे बला का पीला पडता देखकर कानजी ने 'चल मेरे वीरा " कहकर उनकी पूछ पर हाथ रखा। पुर के कुएँ म उतरते समय फिर पनघट की ओर देखा। जीवी को उसने दूर से ही पहचान लिया था। इस समय वह एक खेत की मेड पर आ पहुँची थी। हवा म लहराते उसके आसमानी पोमचे[१] का वह क्षण भर तक देखता रहा। आज बहुत दिन बाद दोनो की नजरें एक हुई थी। शम के मारे कानजी की नजर नीची हो गई। जब कि जीवी तो अब भी अपनी नुकीली आखो से मिडकी की वर्षा कर रही थी। माना उसका मन कह रहा हो—'कहाँ बदला है ? जैसा था वैसा ही तो है।' होश आते ही फिर चील तोडने लगी।

पुर चालू हुआ लेकिन अब की बार कानजी दोहा न गा सका। अभी यहाँ आयगी, इस आशा से उसने दूसरा पुर भी खाली कर दिया, पर जीवी तो अब तक जहा की-तहाँ अडी थी। कही ऐसा न हो कि वह बिना मिले वही से पनघट की ओर चल दे। इस डर के लगते ही कानजी से बिना बोले न रहा जा सका— क्या बिना मिले जाने का विचार है क्या ?" पुर

१ रगीन फरिया।

भरते हुए कानजी ने पूछा।

उखाड़े हुए चील की जड़ें तोड़ती हुई जीवी बोली—"हाँ, तुम्हारी आँखों मे तो अब फुली पड गई है और धुंधला धुंधला दिखाई देता है। ऐसी हालत में पास आकर क्या करूँ ?"

भरे हुए पुर को दूसरी बार खींचकर देखते हुए कानजी ने कहा—"यह ठीक है, पर जब अमृत या कृष्णा मरे हुए को जिला देता है तब क्या उससे मेरी इतनी-सी फुली नहीं मिटेगी ?"

"जिससे फुली पड़ी है उससे वह उलटी बढ़गी या कम होगी ?" कहकर कानजी की ओर देखती हुई जीवी फीकी हँसी हँसी।

कानजी ने फिर बरत[1] खींची। बोला—"लेकिन क्या तुझे मालूम है कि जब बिच्छू काट लेता है तो उसके ऊपर उसी का डक घिसकर लगाने से तुरत सारा जहर चुस आता है। यह भी ऐसी ही है।" कह कर उसने जीवी को देखा और हँसने लगा। होश आने पर बैलो की पूछ पर हाथ रखता हुआ बोला—"मैं अभी वापस आता हूँ।"

चील तोड़ती जीवी भी पारछे की दूसरी ओर आ खड़ी हुई। कान जी भी लौटकर आ खड़ा हुआ। परन्तु इस समय दोनो गूँगे बन गये थे। कुएँ म डुबकी खाते पुर की अपेक्षा सब कुछ शात था। दोनो को बोलना था, पर पहले शुरू कौन करे ?

जीवी की ओर देखते और बेहोशी-सी मे पुर को ऊभ चूभ कराते रहने वाले कानजी को देखकर जीवी को हँसी आ गई। बोली—"मेरी ओर टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो ?" और पल्ले की भाजी को ठीक-ठाक करती जैसे जाने की तैयारी कर रही हो ऐसे कहने लगी—"अच्छा बताओ, रोक रखकर क्या कहते थे ?"

जीवी के अग पर प्यासी होने पर भी एक प्रकार की तृप्ति भरी दृष्टि डालते हुए कानजी हँसकर बोला—"बस इतना ही। तुझे जी भर देखना था। दो बोल सुनने को मिले तो बेचारे जी को जरा "कानजी

१ पुर खींचने का मोटा रस्सा।

हँस पडा । पर इस हास्य को देखकर जीवी को उलटा दुःख ही हुआ। पुर के सिरे पर बँधी बरत को गरीली पर उछालते हुए कानजी ने कहा—"इससे ज्यादा कहूँ भी क्या ? कहने योग्य मैंने रखा ही क्या है ?" और जीवी की ओर देखे बिना ही बैलो का हाँक दिया ।

परन्तु जीवी तो अब भी खडी थी । वापस लौटते हुए उसने कानजी से पूछा—' क्या, क्या मुझ पर बहुत गुस्सा आ रहा है ?" और जैसे उत्तर की प्रतीक्षा कर रही हो ऐसे बगल म खडे घाटू बराबर गेहू के पौधो से खेल करने लगी ।

' गुस्सा आने लायक तूने किया ही क्या है, जो गुस्सा आयगा । गुस्सा तो उलटा तुझे आना चाहिए ।" कहकर कानजी ने ज़ोर से साँस ली ।

"तो फिर इतने दिन से मुह मोडकर क्या घूम रहे हो?" और कानजी को चुप देखकर व्यग्य मे पूछा—' लोगो का डर लगता होगा, क्यो !"

कानजी ने बैलो की रास छोड दी । पारछे से बाहर निकलते हुए 'यह भी ठीक है कहकर हीरा को पुकारा—'हीरा, ले ज़रा तमाखू भर ले !'

यदि ऐसा ही था तो आधी रात के वक्त बुलाने नही आना था ।" जीवी ने आज कह ही डाला और हल्के गुस्से से कानजी की ओर देखने लगी ।

खीसे[1] में से तमाखू निकालते हुए कानजी ने कहा—' यह सब तो ठीक है पर जो भूल कर बैठा हूँ उसका अब क्या हो ?" कहकर तमाखू का चूरा करत हुए बोला—"और यदि तुझसे अब भी सुधारी जा सके तो सुधार ले ! ' कानजी भी कुछ गुस्से मे था ।

'अच्छा !" कहकर जीवी ने गरदन घुमाकर पीछे देखा । हीरा अभी जहाँ का तहाँ उलझा था ।

उसने कानजी की ओर देखते हुए पूछा—"इसका मतलब तो यही है न, कि मैं फिर चौथा मालिक खोजू ?"

१ जेब ।

' चौथा कैसे ?'' कानजी पूछने को तो पूछ बैठा परन्तु झट कहने लगा—''यदि पट न सके तो चार छोडकर पाँच भी किये जा सकते हैं। हाँ, यदि ऐसा करने मे धूलिया कुछ बाधा डालेगा तो मैं दखूगा। इसके लिए ''

अँगुली पर गेहूँ की पत्ती लपेटती हुई जीवी ने सहसा ऊपर देखा। तुम्हारा दिमाग तो खराब नही हो गया है !'' पूछते हुए तेजोद्दीप्त आँखो से कानजी की ओर देखती हुई बोली—''जीवी कोई पतिया की भूखी नही हैं, समझे ! पति खोजना होता तो खोजना उसे भी आता था।'' कुछ रुककर आगे कहा— 'पर वह तो यह कहो कि उसे किसी की लगन लगी थी नही तो ''

''अच्छा, अब बहुत हो चुका।'' जैसे असह्य हो गया हो ऐसे कानजी बोला और दूर पर आते हुए हीरा से कहा– चिलम तो वहाँ होगी न ?''

''तो फिर कमी ही क्या रही है ?' कहकर जीवी चलने लगी।

गेहूँ की पत्ती तोडती और उसके टुकडे करती जाने वाली जीवी की ओर देखते हुए कानजी का दृष्टि मे मूर्ति धुधली होने लगी। दूसरे ही क्षण पास का कुआँ दिखना भी बन्द हो गया। कानजी को होश आया। झटपट आखें साफ़ की। देखा तो बगल मे चिलम बढाता हुआ हीरा खडा है। मुट्ठी मे से तमाखू देते हुए कानजी ने कहा— तो चल, रख ! सूरज तो सिर पर आ गया है पर अभी ''

परन्तु हीरा से पूछे बिना न रहा गया—''यह सब ता होगा पर तू ऐसा क्यो हो रहा है ?''

''कुछ नही रे !'' कहकर कानजी हँसा। बाला—''तू जल्दी कर न ? यदि आज इतना पानी दे दिया ता '

''नही दिया गया तो कल दे दिया जायगा। कहकर हीरा चिलम भरने तो गया, पर आज के दृश्य ने—कानजी की आसू भरी आँखा ने उसे गभीर बना दिया। ''आज तो नही, पर एक दिन मुझे उस सौगध खिला कर पूछना पडेगा कि तेरे पत्थर जैसे कलेजे मे यह सब हो क्या रहा है

माया से अलग रहने वाले गीता के भक्त को यह सब क्या जजाल है ?"
और चिलम मुह से लगाकर सिर झुकाए, पैर के अँगूठे से जमीन कुरे
दता हुआ कानजी की ओर देखने लगा। और स्वगत कहने लगा—
मान न मान हीरा, पर इसमे कोई बडा रहस्य जान पडता है। नही
तो दु ख के पहाड टूट पडे। अरे, अपने बाप क मरने पर भी जिसकी
आँखो में आँसू नही आये वह यो दिन दहाडे टप-टप आँसू गिरा रहा है।'

दसवा प्रकरण

•

व्यर्थ प्रयास

उस दिन कानजी से मिलने के बाद से कुछ दिन तक ता जीवी गुम सुम बनकर ही घूमती रही। लेकिन अत मे उसे यह शून्यता भी खलने लगी। 'यदि वे मेरे बिना रह सकते हैं तो मैं उनके बिना क्यो नही रह सकती ?' कुछ ऐसा साचकर वह लोगो स पहले की अपेक्षा और भी ज्यादा मिलने जुलने लगी। जहाँ कानजी होता वहाँ तो विशेष रूप से जाती। जवानो का मजाक भी उडाती।

आज भी जीवी ने ऐसा ही किया। कानजी, मनारे आदि युवक हीरा के यहा बैठे थे। जीवी भी वही जा पहुँची। बात करने का अवसर पाते ही जीवी बोली— मनारे भाई, मुह ता सुदर है पर दिल से तो काले हा ?" साथ ही एक दूसरे युवक को लक्ष्य बनाया—"ओ हो ! उस दिन भजनो मे कैस मस्त हो रहे थे ! या तो भोले भाले दिखाई दते हो, लेकिन पखावज पर तो ऐसे उछल उछलकर भजन गा रहे थे जैसे तुम्ही गोपियो के साथ रास कर रहे हा।"

और यह सुनत ही कानजी ने न जाने क्यो जीवी की ओर कडी निगाह से दखा। लेकिन जीवी की तो उसकी ओर पीठ ही थी। कानजी का क्रोध बढ़ गया और मनारे आदि को जीवी से बातें करते दखकर तो वह वहाँ ज्यादा देर बैठ भी न सका। उसन चलते चलते ही जीवी की ओर दखा, पर जीवी ने न तो पलक उठाये और न बात करना बद किया।

जीभ को तुरत काबू मे कर लिया। और "ठीक है" कहकर जीवी के प्रति उसकी लगन को सदा के लिए समाप्त हुआ देखने की इच्छा रखने वाले हीरा के मनोरथ को उसन धूल मे मिला दिया।

हीरा ने बात फिर उखाडी—"तो भी दो दिन के बाद तू फिर उसके ऊपर दोहे जोडने लगेगा।" और कानजी का चुप होता हुआ देखकर आगे कहा—"तब तो न फूलती होगी तो भी फूल जायगी।"

जवाब मे कानजी ने एक भारी साँस ली। नीरस हँसी हसता हुआ वह बोला—"तू भी क्या बात करता है? इसके कारण क्या कोई दोहा गाना बन्द कर देगा। और यह कैसे जाना कि मैं इसी के लिए गाता हूँ? यह तो इन चार महीनों से ही यहाँ आई है। इसमे पहले मैं किसके लिए दोहे गाता था?" कहकर कुछ तिरस्कार के साथ हसा। बड बडाया—"क्या बात करता है?"

हीरा खीझकर बोला—"अरे भाई, लेकिन गाना। दोहा गाने की कौन मनाही करता है? और मैं तो कहता हूँ कि उसके नाम के गाने बना। इसमे किसी का क्या जाता है?" कहकर कानजी की ओर रिसैली[1] आखो से देखता हुआ कहने लगा—"यह तो लोग बातें करते हैं सो मैं तुझसे कहता हूँ। मैं कोई अपनी ओर से बनाकर थोडे ही कहता हूँ।"

कानजी जरा धीमा पडा। हीरा की ओर देखता हुआ बोला—"तो देख, मैं तुझसे साफ कह देता हूँ" और अँगुली उठाकर आगे कहा—"मैं लोगों या लोगो के बाप किसी से भी नही डरता और डरने वाला भी नहीं।" दो कदम चलकर फिर खडा हो गया और क्रोधपूर्ण दृष्टि से हीरा को देखकर बोला—"यह ठीक है कि मैं उसके दोहे बनाता हूँ, पर यदि कल मैं उसे अपने घर मे डाल लू तो क्या तुम सब मेरे नाक-कान काट लोगे?"

हीरा ने अनुभव किया—'साला गजब हो गया।' बोला—"लेकिन घर में डालनी है तो यह भी कर डाल न? तुझे रोकता कौन है?"

१ क्रोध भरी।

"लेकिन तू भूलता है हीरा ! यह भी कर दिखाता पर जरा खयाल आ जाता है इस बन्दर के साथ उसका गठबंधन न कराया होता तो फिर यह भी कर दिखाता।"

"तो फिर बस ! यों बेकार बकवास क्यों करते हो ?" कहकर हीरा बडबडाया—"और हिम्मत हो तो घर में डाले बिना ही। लेकिन भाई, यह बच्चों का खेल नहीं है। इसमें जान हथेली पर रखनी पड़ती है।"

"समय आने पर यह भी हो सकता है।" कानजी बोला।

"तो फिर देर क्यों ?" हीरा ने कहा। और कानजी को चुप देख कर बोला—"पर तुझे तो न ऐसा करना है और न उसका पिण्ड ही छोडना है। बता, इसमें तेरा क्या लाभ है ?"

कानजी हीरा के कहने का पूरा अभिप्राय समझता था। भारी साँस लेकर इतना ही कहा—"इसमें क्या लाभ हुआ हीरा ?"

"तो फिर उसका पिण्ड छोड !"

कानजी ने फीके ढंग से हँसते हुए कहा—"पिण्ड तो जब से आई है तभी से छोड दिया है।"

बडी देर तक निस्तब्धता छाई रही।

जैसे किसी विचार से जगा हो ऐसे हीरा बोला—"मैं तो यही सोचता हूँ कि तू इतना भक्त कब से हो गया है ?"

"भक्त हो गया हूँ यह कह या और जो कुछ मन में आवे सो कह, पर आज बात चली है तो कहे देता हूँ कि यदि करूँगा तो पूरा करूँगा—खुल्लम खुल्ला उस घर में रखने के बाद ही उसकी ओर देखूँगा। नहीं तो भले ही आकाश पाताल एक हो जायें गलत रास्ते पर न जाऊँगा।" कानजी एक भारी साँस लेकर होंठ चबाने लगा।

"तो तू जाने !" कहकर हीरा भी कुछ सोचने लगा।

दूसरे दिन हीरा भगतजी की झोपडी पर गया। दोनों जने होले[1] भूनकर चुका रहे थे। हीरा ने बात चलाई—"मानो, चाहे न मानो

१ कच्चा चना भुनने पर 'होला' कहा जाता है।

भगतजी, पर कानजी को कुछ हो गया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि उसने कुछ कर दिया है।"

भगतजी की जगह यदि कोई दूसरा होता तो चने का दाना हाथ का हाथ मे ही रह जाता और हीरा की शोकपूण मुख मुद्रा देखकर प्रश्न पर-प्रश्न पूछने लग जाता—'उसने अर्थात् किसने ? कुछ वह क्या कर सकती है ? और कानजी को क्या हुआ है ? वह तो घोडे जैसा है ?' आदि आदि। पर भगतजी पर इसका रत्ती भर भी असर न हुआ। हीरा पर एक नजर डालकर हँसे और होले का दाना मुँह मे डालते हुए बोले—"तूने जो कहा सो समझ मे नही आया हीरा !" और वैसे ही होले नुकाने रहे।

हीरा कुछ खीझा— 'यो अनजान बनकर न बोलो भगतजी ! उस दिन तुम्ही न पूछ रहे थे — आजकल कानजी ने मेरे यहाँ आना जाना क्यों बन्द कर दिया है ?' और आज उलटे "

"हाँ, हाँ, लेकिन उसका है क्या ? तू वह वह' करता है, इससे मैं क्या समझू ?" भगतजी ने हीरा की ओर देखते हुए कहा और फिर होले खाने लगे।

हीरा ने मन मे कहा—"सुने बिना क्या अपना सिर समझोगे ?" पर इस प्रकार गुस्सा करने पर भी भगतजी तो हँसने ही रहने वाले थे। झोपडी के बाहर एक नजर डालकर हीरा भगतजी से सटकर बैठ गया। बोला—"यह उस नाइन की ही तो बात है। तुम चाह जादू-टोने मे विश्वास न करो भगतजी ! पर मैं तो करता हूँ। मुझे तो लगता है कि उस रांड ने कानजी के ऊपर—चाहे जैसे हो—मोहिनी डाल दी है।"

भगतजी को हँसी आ गई— 'यह तूने कैसे जाना ? किसी सयाने को कुछ कहते देखा था या कुछ और ?"

"इसमे सयाना क्या कहता भगतजी ? मैं अपनी आँखो से देखता हूँ सो कुछ नही ?"

जैसे कुछ भी न जानते हो ऐसे भगतजी ने हीरा की ओर देखते हुए

पूछा—' तू क्या देखता है, जग बना तो सहा !"

"क्या क्या ? यही कि इस कानजी का दिल इस जीवी से लगा है। पर इसमे "

' कैसे जाना ! लोग कहते हैं इसीमे न ? लेकिन मुझे तो लगता है कि लोगों की यह बात तनिक भी सच "

"अरे यदि सच होती तो भी गनीमत थी। उसका पाप उसीसे पूछता परन्तु ऐसा—क्षण भर मे तो ऐसा कि एक प्राण और दो शरीर और क्षणभर मे ऐसा कि एक दूसरे की छाया भी न छुएँ—कभी नहीं होता ? इसमे हमे समझना क्या है ?"

भगतजी हँसत मुख से कुछ देर तक हीरा की ओर देखते रहे। फिर भौंहें सिकोडते हुए पूछा—'तेरी समझ मे क्या आता है ?'

"मैंने तुमसे कहा न कि इस जीवी ने कानजी को कुछ कर दिया है। बिना इसके । यह तो हमने इससे भी अच्छी स्त्रियाँ देखी हैं भगतजी ! किसी जगह मैं फिसल गया हूँगा, पर धन्य है कानजी को। रत्ती भर इधर से उधर नही हुआ। हाँ यो हँसी मजाक करता है—अरे, स्थान और समय सब निश्चित करता है पर बाद मे जाना-आना राम का नाम है।" और भगतजी की हँसी मे अपनी हँसी मिलाते हुए हीरा ने आगे कहा—'तो तुम्हीं कहो भगतजी ! ऐसा आदमी यो बिना जात पात के उसके पीछे अन्धा होकर घूमता है यह क्या बिना कुछ किये सम्भव है ?"

मुख नीचा किये होला चुकाते हुए भगतजी को नकार मे सिर हिलाते देखकर हीरा फिर बोला—' तुम मानते नही भगतजी पर ढाक बजवाकर देखो—यदि तसल्ली करनी हो तो। कानजी के ऊपर जादू टोना किया हुआ न निकले तो जो चाहो सो लिखवा लो ! बोलो, है विचार ?" कहकर हीरा भगतजी की ओर देखने लगा।

' तेरी सब बातें सच हैं, पर यह जादू वाली बात झूठ है।" कहकर हीरा की ओर हाथ से इशारा करते हुए बोले—"अरे पगले, औरत के नैनो को तू क्या जाने ? महादेव सरीखे गोते खा गए तो कानजी जैसों की

क्या बिसात है।" भगतजी की आखो मे हल्की-सी चमक दिखाई दी।

"नही नही, लेकिन भगतजी "

"नही।—' भगतजी की भौहे जरा तनी।—"यह सारी बात झूठी है। औरतो को कभी जादू टोने की जरूरत ही नही पडती। वे तो खुद ही जादू हैं।" कहकर जरा धीमे पडते हुए बोले—' तू और कानजी समझते होगे कि भगतजी कुछ नहीं जानते, पर मैं स ब जानता हूँ। वह मेरे घर क्यो नही आता। अभी-अभी तो उसे तँबूरे की लत लगी है। और वह स्वय भी इसे कहा छिपा सकता है? फिर भले ही वह जीवी की ओर न देखता हो पर तो भी गाँव मे क्या किसी से छिपा है?" और कुछ देर हीरा की ओर देखकर भौहे सिकोडते हुए बोले—"तू इसे जादू कहता है, पर मैं इसे उससे भी बडा ऐसा दु ख कहता हूँ जिसकी कि कोई दवा नही। हाँ ये दोनो एक हो जायें तो और बात है। लेकिन तब तो यही समझना कि स्वर्ग नीचे उतर आया है। नही तो इसके बिना यो रो गाकर दिन काटने के अलावा और कोई चारा नही।" कहकर कोई चमत्कारपूर्ण बात न कही हो ऐसे सिर हिलाते हुए हृदय मे सास भरकर आगे कहा— "यह कोई जादू टोना नही, यह तो एक दूसरे से हृदय मिले हैं।' कहकर भगत का मुख ऐसा खिल उठा जैसे वे हँस रहे हो।

"लेकिन इसमे तुम ऐसे प्रसन्न क्या होते हो भगतजी इसका कोई उपाय खोजो न! यह तो हमने जान लिया कि हृदय मिले हैं, पर इसका काई उपाय तो बताओ! तभी तो समझेंगे कि भगतजी की सुहबत से कुछ लाभ हुआ।"

"अरे नही भाई! भगतजी के पास ऐसा उपाय होता तो भगतजी स्वय ही आन न्द का सुख पर तुरन्त भगतजी ने बात बदल दी— "हीरा, इसी का नाम जीवन है। तू क्यो व्यर्थ झमेले मे पडता है। जो होता है होने दे और जो देख सके, देख! उससे न सहा जायगा तो वह स्वय ही रास्ता "

इस समय हीरा को भगतजी पागल जैसे लगे। वह चिढकर बोला—

"अरे क्या पागल हुए हो भगतजी ! सोचो कि काई कदम उठाया दोनो ने घर-गृहस्थ बसा लिया लेकिन बाद मे जात-पाँत, नाते रिश्ते दार इन सबका क्या होगा । और फिर उनके बच्चा या "

"लेकिन भले आदमी ! तू भगवान् को तो मानता है न ? तो यह सब उसके ऊपर छोड दे । व्यथ "

"अरे छोड दिया भगतजी । लो रहने दो अपनी चतुराई । तुम तो उनमे से हो जो सीधे की जगह टेढ़ा रास्ता दिखाते हैं । लोग जो कहते हैं सो झूठ थोडे ही है । आज से तुम्हारे पास बठना ही नही ।" कहकर हीरा ने अपना स्याह-काला मुह एक ओर फेर लिया ।

भगतजी की जगह और कोई होता तो अच्छा चल चल, न बठना । तुझे बुलाने ही कौन गया था ?' कहकर हीरा को फटकार देता, परन्तु ऐसा करने के बदले वे तो हँस ही रहे थे । जैसे हीरा पर तरस खा रहे हो ऐसे बोले— यह तू क्या कहता है हीरा । क्या मैं तेरा और कानजी का बुरा हाते देखकर प्रसन्न हूँगा ? तुम दोनो का ही क्या, मैंने किसी राह चलते का भी बुरा चीता हो तो बता ।"

ऐसा तो कुछ नही पर तुम कहते हो न कि जो कुछ होता है सो होने दो । क्या तुम्हारे जैसे पढ़े लिखे आदमी को ऐसा कहना चाहिए ?"

"पढा लिखा हूँ इसलिए तो ऐसा कहता हूँ हीरा ।" कहकर भगत जी हँसने लगे ।

"कुछ नही भगतजी । तुम अकेले आदमी हो इसलिए जो चाहो सो कहो और जो चाहो सो करो तुम्हारे लिए सब ठीक है पर हमारे जैसे "

'मतलब यह कि कानजी की चिता तुझे है मुझे नही क्यो ?" भगतजी का मुह कुछ उदास सा लग रहा था ।

'ऐसा तो कुछ नही लेकिन फिर भी तुम तुम जो ऐसा कह रहे हो उससे भगत जी ।" कहकर हीरा भगत की ओर देखकर हँसने लगा ।

'तू तो भला आदमी है । देख पीछे विदकना मत ।" कहकर हीरा को चेतावनी देते हुए बाले— लेकिन यदि तेरी जगह मैं कानजी का साथी

होता तो इसी समय जीवी को लेकर उसने घर मे बिठा देता।"

गुस्सा करने की गुञ्जाइश न होने पर भी हीरा गुस्सा किये बिना न माना—"अब तुम बिना कुछ कहे चुप रहो भगतजी।" कहकर जैसे स्वगत-कथन कर रहा हो ऐसे धीरे से बोला—'मेरा कैसा दुर्भाग्य है जो तुमसे बात की।"

"लेकिन ले न, अब भी क्या बिगडा है। यह तमाखू रख तब तक। तमाखू के धुएँ के साथ तेरी बात का भी धुआ।" कहकर भगतजी बगल मे पडी चिलम को साफ करने लगे।

जब कि अन्यमनस्क बना हुआ हीरा ऐसा उदास होकर बैठा जैसे अंतिम उपाय भी व्यर्थ हो गया हो।

ग्यारहवाँ प्रकरण

किस सम्बन्ध से

हीरा ने तो कानजी से रास्ते मे कुछ बात न की पर सवेरे उससे एक आदमी ने कहा— 'कुछ सुना कानजी भाई ? क्या तुम नही जानते कि रात को घूलिया ने अपनी बहू को पीटा है ?''

'क्यो किसलिए ?'' कानजी का मुह तन गया।

' किसलिए यह तो भगवान् जाने, पर दो दिन हुए किसी जगह तुम सब लोग बैठे थे ? कहते हैं कि वहाँ जाकर जीवी सबसे हँसी मजाक कर रही थी। कल रात घूलिया के कान मे बात आई होगी। इस पर कहते हैं उसने खूब पीटा है।''

''फोडेगा साला करम, हमे क्या ?'' बडबडाते हुए कानजी अपने घर जाने को उठा। रास्ते के उस छोर पर आती जीवी को देखकर उससे कुछ पूछने की—कल रात की मार के विषय मे ही—इच्छा हुई, पर भट यह देवी जी भी क्या कम हैं ? ऐसे ही काम करती हैं जिससे कि मार पडे।' यो सोचकर चुपचाप चले जाने का निश्चय कर डाला। मन को यह भी लगता था— इसी को बताने की गरज नही है तो फिर मुझे ही क्या गरज पडी है जो पूछू ?''

परन्तु दूसरी ओर जीवी भी कानजी को देखते ही बिलकल ढीली सी हो गई थी। आँखो मे कुछ-कुछ आँसू भी छलकने लगे थे। पैर भी बिलकुल शिथिल हो गए थे। लगता था जैसे 'अब गिरी, अब गिरी'।

यदि उस तग रास्ते मे छेंडी होती तो भले ही घूरे की तरफ क्यो न जाना पडता, एक बार को तो जीवी उस छेंडी से ही अवश्य बाहर निकल गई होती । आखो मे उमडते आसुओ को रोकने के लिए उसने बहुत कुछ होठ चबाए और कानजी को मुह न दिखे, इसके लिए फरिया का छोर भी खीचा, पर सब व्यथ गया

अबोले कानजी से भी बिना बोले न रहा गया— 'क्यो, कल रात क्या था ?''

जीवी की एक हल्की सिसकी निकल गई । आखो से टप-टप गिरते आँसू धारा मे बदल गए । लेकिन वह बोली कुछ नही । खडी भी न रही । जैसे ही वह कानजी को छोडकर आगे बढ़ी वैसे ही एक कठोर आवाज उसके कान मे पडी—''खडी रह !''

फिर भी जीवी दो कदम तो चली ही । परन्तु आगे कदम रखने की उसकी हिम्मत न हुई । वही खडी हो गई । कानजी ने पीछे घूमकर फिर पूछा—''कल रात क्या झगडा था ?''

आँखो को पलको की ओट मे रखने का प्रयत्न करती हुई जीवी कठिनाई से कह सकी—''कुछ नही था ।'' और फिर चलने लगी ।

''कुछ क्या नही था ? खडी रह, और जो हो सो सब सच सच मुझे बता दे !''

कानजी की आखो मे आग थी । आगे-पीछे आती पनिहारिनो का भी उसे ध्यान न था । जीवी को बहरी बनी देखकर वह चिल्लाया— 'क्यो, सुनती नहीं ? कहता हूँ कि खडी रह !''

जीवी फिर रुकी । आँसू भरी आँखो से उसकी ओर देखने का प्रयत्न किया । रुदन और शब्द दोनो साथ मिल गए—''सब इकट्ठे होकर चारो ओर से क्यो मेरी फ़जीहत '' और एक सिसकी भरकर चली गई ।

कानजी गाँव की ओर चला । रास्ते मे चलते चलते बडबडाता जाता था—'ठीक है बेटा ! आज मैं तेरी (धूला की) खबर लेता हूँ । मैं तो सोचता था कि चलो जाने दो, कोई बात नही, पर इस तरह तो

सिर पर चढे जाते हैं ।' गाँव मे यद्यपि वह चुप था, लेकिन उसकी चाल उसके गुस्से को प्रकट कर रही थी । एक-दो ने तो पूछा भी, पर उह उसने टालू जवाब देकर चुप कर दिया । वह सीधा धूला के घर की ओर ही जा रहा था ।

हीरा घर के मुख्य दरवाजे की बगल मे अन्दर की ओर बिछी खाट पर बैठा रस्से जोड रहा था ।

आगन से होकर जाते रास्ते पर किसी को सपाटे से जाते देखा । पीठ से उसे सन्देह हुआ—"अरे कानजी जा रहा है या और कोई ?"

"हाँ, क्या ?" कानजी ने दो कदम पीछे हटकर पूछा । उसकी आखें लाल थी । मुँह तमतमा रहा था ।

"ऐसे क्यो ?" हीरा बोल उठा । हँसकर कहा—"ले आ ! भगतजी अभी खेत से नही आये होगे ।" कहकर खडे होते हुए आगे कहा—"ला, हुक्का भर लें ।"

कानजी ने खडे-खडे ही मुहल्ले पर एक नजर डाली । कतराती आखो से धूला के घर की ओर देखा । एक भारी साँस लेकर होठ चबाता हुआ द्वार की ओर मुडा । द्वार की ओर मुह किये और पैर लटकाये खाट पर बैठ गया । हाथ की हथेली पर कनपटी रखकर फिर नीचे के होठ को चबाने लगा ।

हीरा की बहू ककु के लिए कानजी की यह गम्भीर मुखमुद्रा—और वह भी इस सीमा तक—एक आश्चय की ही वस्तु थी । "क्यो काना भाई, किस सोच मे पडे हो ?" ककु ने स्तन पान करते बालक को दूसरी ओर लगाते हुए कुछ डरते डरते पूछा ।

"किसी मे नही ?" कहकर कानजी ने हीरा से पूछा—"अरे, तू तो हुक्का भर रहा था न ?"

रस्से के साथ गुत्थम गुत्था करते हीरा ने कहा—"भरता हूँ इस इतने हिस्से को ठीक करके । तुझे इतनी जल्दी काहे की है ?"

"ठीक है जो है सो । तू एक बार हुक्का तो भर !" कहकर कानजी

दरवाजे के बाहर देखते हुए छोटी छोटी मूँछो पर हाथ फेरने लगा ।

"लेकिन फिर भी । खेत मे किसी का ढोर घुस गया था क्या ?"

"नही भाई, नही ।" कुछ चिढकर कानजी बोला ।

"तो ऐसा गुस्से में कहाँ जा रहा था ?"

कानजी की मुद्रा फिर कठोर हुई । बोला—"कहाँ ? उस भगी की खबर लेने । यह साला हरजाम अपने मन म समझता क्या है ?"

"लेकिन हुआ क्या है ?" कहकर रस्से को एक ओर डालकर दीवार के सहारे रखे हुक्के को लेते हुए पूछा—"तुमसे कुछ कहा ..."

"मुझसे क्या कह सकता था ? कहता तो वही चीरकर ... लेकिन उसे चलते फिरते मारता है । वह अपने मन मे समझता क्या है ?"

"लेकिन भले आदमी इससे हमे क्या ? उसी की चीज है, कसूर करेगी तो मारेगा ही । इस बात पर हमारा सहन जाना क्या शोभा देगा ? किसी का पता चल गया तो ..."

"तू इस समय मेरे सामने मत बोल हीरा ! सच पूछो तो यह सब तूने ही कराया है । मैं कहता था न कि यह दो कौड़ी का आदमी है । बेचारी उलटा दुख पावेगी । पर ..."

"अरे लेकिन भले आदमी ! यदि यही कहना है तो कहने के ढग से ही कहा जायगा न । कहीं इस प्रकार ओट लेकर[1] कहा जाया जाता होगा । कोई राह चलता तक यह सकता है कि भाई तुम क्या ? और फिर उससे न अपनी जात मिले न पाँत, और न कोई सम्बन्ध । उलटा ..."

"सम्बन्ध क्यों नही है ? उसे यहाँ लाने वाले तू और मैं ही हैं न ? उस बेचारी की कितनी ओछी दशा समझ रही होगी ? तू तो 'न जात मिले न पाँत' कहकर अलग हो सकता है पर मुझसे यह न हो सकेगा ।" और जैसे गुस्से का उफान आवेग से ... होकर बोला—"ला, एक बार मुझे हुक्का तो दे । मैं देखता हूँ अभी ।"

१ 'ओट लेकर' का अर्थ है पक्ष लेना ।

हीरा ने हुक्का देते हुए कहा—'तू जरा शान्त हो, शान्त ! यह सब कहने वाले तो हम बैठे है। नाहक अपने हाथों अपनी फजीहत क्यों कराता है ?'

कानजी हुक्का पीना छोड़कर हीरा की ओर गरदन घुमाते हुए बोला—'ऐसी नाहक फजीहत से मैं डरता नहीं हीरा, समझा ? इसके विपरीत मैं तो किसी की लड़की की—जो बेचारी न सासरे की रही न पीहर की—फजीहत को रोता हूँ। मुझसे यह नहीं देखा जाता।" कहकर हुक्के का घूंट लेकर हीरा को देता हुआ बोला—"तोगो का डर लगता है तो तू न बोल ! मैं तो उससे भी कहूगा ही। और अगर साला अबे-तबे करेगा तो मारूँगा भी। किसी धोखे में न रहे।"

ककु तो सन्नाटे में आ गई। उसने और हीरा ने मिलकर धीरे धीरे कानजी को शान्त किया।

"अच्छी बात है, आज तो लेकिन यदि उसने कभी दुबारा उसको मारा तो । हाँ, यदि उसका कोई कसूर हो और मार-पीट करे तो और बात है, परन्तु इस प्रकार चलते फिरते, बिना बात मारेगा तो इसका अच्छा फल न मिलेगा हीरा ? कहना हो तो कह देना।" कहकर कानजी उठा।

ककु ने धूला को धमकी भी दी। हीरा ने भी धूला को बुरी तरह फटकारा। साथ ही कहा—गरम रोटी मिलती है तो चुपचाप खा ! यदि फिर ऐसा किया तो मेरा काका (कानजी) अबकी बार तुझे मारे बिना न छोडेगा। और मैं सच कहता हूँ, उसका गुस्सा है बड़ा खराब। मुझे तो लगता है कि या तो तुझे और तेरी रांड को मार देगा या स्वयं मर जायगा और उसमें कोई खास फायदा न होगा।"

यद्यपि धूला को कानजी से बेहद डर लगता था तथापि उसे दूसरी ओर से मुखिया और राज्य के अमलदारों से सहारा भी था। हर समय जुग पर रखने वाला और मन की बात सुनने वाला रेशमा भी पड़ोस में ही था। फिर यदि कानजी की जगह कोई दूसरा होता तो उसे अमलदारों

का सहारा लेकर उससे ठण्डा भी कर दिया होता। लेकिन उसको पता था कि कानजी मुखिया तो क्या अमलदारो से भी दबने वाला नही है। गत वर्ष ही उसने एक पुलिस वाले का गला दबाकर उसकी जन्म से गाली देने की लत छुडा दी थी। इस विषय मे अफसरा ने भी थोडी-सी पूछ-ताछ करने के बाद काफी हिदायत देकर उसे छोड दिया था।

धूला यह जानता था कि यदि कानजी किसी कानून की पकड मे आ गया ता फिर राज्य के अमलदार उस पर चढ बैठेंगे। लेकिन ऐसे किसी कानून की पकड म आवे तब न? हीरा के समझाने से उसे चेत ता न हुआ उलटा उसका गुस्सा ही बढा—"मैं भी देखता हूँ कि वह कैसे मारता है? इतन दिनो से अमलदारो की जो बेगार की है वह कब काम आयगी?" और धूला की इस धौंस को कानजी भले ही कुछ न समझता हा पर हीरा तो उसके प्रभाव को अच्छी तरह जानता था। उसने रात का कानजी को खूब समझाया, पर कानजी भी व्यवहार मे कच्चा न था। विवशता के स्वर मे हीरा से कहा—"मैं सब जानता हूँ हीरा, लेकिन उस पर यो मार पडे, यह मुझसे नही देखा जाता।' कुछ देर रुककर "मुझे भी डर लगता है कि या ता मैं किसी को मार बैठूगा या " कहते हुए कानजी चुप हो गया। परन्तु हीरा समझ गया कि कानजी 'या मैं उसे अपने घर मे डाल लूगा' ही कहना चाहता था।

उस दिन भगतजी से बातचात करने के बाद से हीरा का स देह कुछ कम तो हो गया था, पर पत्थर दिल कानजी को इस बेबसी की हालत मे देखकर तो उसे विश्वास हो गया कि जीवी न इस पर कुछ कर दिया है। और फिर मन ही मन कहा—'फोडो सिर सब मिलकर, लड मरोगे तो भी मेरा क्या?'

बारहवाँ प्रकरण

●

स्पष्ट बात

हीरा और ककु के समझाने के बाद तो धूला का मिजाज और भी बिगड गया। उस दिनो से वह जीवी को फूटी आँखो भी न देखता, लेकिन सिर्फ दिन मे ही। परन्तु जीवी भी कोई स्वाभिमान रहित न थी। इसलिए धूला भाई की रात भी बिगडती। सच पूछा जाय नो वह जीवी पर दिन मे जितना रोब जमाता था, उतना रात मे नही जमा पाता था। जीवी ने उसकी छाती म एकाध बार लात जमाई या नही, यह तो वे दोनो जानें पर यह बात सही थी कि रात के वक्त धूला उससे घबराता था। एक रात को तो बाहर ओसारे मे सोती नानी बुढिया ने धूला को कान के कलीले झाडने वाली गालियाँ देते भी सुना और अन्दर कुछ धमाधम सुनकर तो उसने दरवाजा भी खोला। आबरू खोने बैठे हुए दोनो को उसन ऐसी धीमी आवाज से, जिसे केवल वे ही सुन सकें, गालियाँ देकर धूला को बाहर सुलाया और खुद घर मे गई।

जीवी को पास बिठाकर, 'जवानी तो हमारे भी थी बहना!' कहकर सीख देना आरम्भ किया।

बाद म धूला की भी बुराई की और एक लम्बे भाषण के साथ जीवी के मगज मे यह धँसाने का प्रयत्न किया कि दोनो कुलो की लाज उसी के हाथ है। सवेरे धूला को भी सीख के साथ धमकी देत हुए कहा—"यो मार-पीट करने से क्या कही काम चलता है? एक आँख से रुलावे और

एक से हँसावे, इसका नाम है आदमी।"

"यह तो ठीक है।" कहकर धूला चुप हो गया। परन्तु मन मे सोच रहा था—'यदि इस रांड को और उस छैला को मजा न चखाया तो मेरा नाम धूला नही।'

और धूला इस बात के पीछे इतना पडा था कि उसने गाव के दो चार जवान ठाकुरडाओ[1] से—गाँव के चौकीदार से ही—कहा कि यदि कानजी को इस तरह पकड लिया जाय कि वह कानून की लपेट मे आ जाय तो वह इनाम एक भैंस तक दे देगा।

परन्तु गाव मे कानजी के जितने दुश्मन थे उनसे कही ज्यादा दोस्त थे। जब उसके कान मे यह बात आई तो बहुत ही दुखी हुआ। एक दिन तो उसने हीरा के नाम से धूला को ही अपनी झोपडा पर बुलाया। यदि अपने नाम से बुलाता तो धूला आता होता तो भी न आता। और वह भी घर होता तो और बात थी, पर यो गाव के बाहर खेत पर तो कभी न जाता।

हीरा की जगह कानजी को देखते ही धूला के होश उड गए। हँसने की कोशिश करत हुए धीरे से बोला—"काना भाई! हीरा भाई कहाँ गया? मुझे बुलाया था सो क्या काम था?"

कानजी को विश्वास था कि यदि 'ना' कहूँगा तो तुरत मुह फेरकर चल दगा और उसके बाद बुलाऊँगा तो बहुत हुआ तो 'मार डाला रे' की चिल्ल-पुकार मचाता हुआ गाव की ओर भागने लगेगा। इसलिए हसकर बोला—"अभी आता होगा। उस ओर छेंडी भरने गया है। बैट न!" कहकर कानजी चिलम भरने लगा।

"छेडी तो मुझे भी भरनी थी।" कहता हुआ धूला झोपडी के द्वार पर ही बैठ गया।

एक दो बार चिलम का आदान प्रदान करने के बाद कानजी ने कहा—"देख धूला, आज जो तू आ गया है तो मैं तुझसे एक बात कह

१ ठाकुरो को एक नीची जाति।

दू !"

"तो कहो न काना भाई ? एक ही जगह बीस कहो। इसमे क

कानजी ने सीधा सवाल किया—"क्या यह सच है कि समझता है कि मैं तेरी बहू से लगा हूँ ?"

कानजी को बिल्कुल शात देखकर धूला की भी हिम्मत बोल—– 'मैं तो ऐसा कुछ नही समझता भाई, पर साली दुनिय कहती है। बाकी मेरे "

"दुनिया की ऐसी तैसी। मैं तो तेरी बात कहता हूँ—तू ऐसा झता है क्या ? और यदि तू ऐसा समझता है तो यह बता कि तूने कहाँ और क्या करते देखा।" कहकर धूला के मुँह को मुरझात वह आगे बोला—'देख, डरने या शरमाने की तनिक भी जरूरत जो हो, सो आज तू कह, और अपने मन की बात मैं कहूँ।"

परन्तु धूला ने कुछ ठीक से बात न की। अमुक औरत ने कहा, फला मद ने ऐसा कहा, कहकर वह उल्टी सीधी बातें ही रहा। कानजी कुछ तिरछी करवट लेट गया। कोहनी के सहारे सि ऊपर रखते हुए उसने पूछा—"और क्या यह ठीक है कि यदि पकड़ लिया गया तो तू गाँव के चौकीदारो को एक भैंस देगा ?" व को तो हँसी ही आ रही थी।

"यह बात तो सच है काना भाई। पर वह भी मुझे इसलिए

'तेरे मन मे चाहे जो हो, पर आज मैं तुझसे स्पष्ट बात क यह बात कहने के लिये ही मैंने तुझे बुलाया है।" कहकर कानज हो गया। बोला—"देख धूला, यदि मुझे बुरा काम करना होगा सात पहरे लगवा लेगा तब भी करूँगा। पर मेरे मन मे ऐसा कुछ है मुझे ऐसा करना ही नही। हाँ, जिस समय मैं उसे लाया उस समय मे मे कोई पाप था या नही यह भगवान् जाने। पर एक दिन जब भग जैसे आदमी ने मुझे चेता दिया तो मैंने गाँठ बाँध ली। मेरे और बीच अब तक न तो कोई अनुचित बात हुई है, और न भविष्य म ही ह

इतना तो तू विश्वास रखना धूला ! हाँ, मनुष्य है इसलिए हँस बोल भले ही लें पर मैंने तो उसके साथ यह भी नही किया। और मुझे यह करना भी नही। इसलिए तू निधडक होकर घूम ! रेशमा-जैसे लोगो के कहने मे आकर उसे यो चलते फिरते मारना पीटना छोड दे !" कहकर एक गहरी साँस लेकर बोला— 'मुझे इसकी कोई फिक्र नही कि मेरे बारे म बातें होती हैं, पर बिना लिये दिये उसके बारे म बातें होती हैं यह मुझसे नही सहा जाता। इसलिए आराम से रहना हो तो मेरा कहना मानकर सब वहम छोड दो ! मेरी ओर से कोई ऊँच नीच सुने ता तू मुझसे कहना। कसूर होगा तो दण्ड भोगने के लिए तैयार रहूँगा, पर उसे मारना पीटना तो तू छोड ही देना !"

"आज से छोड ही दिया है काना भाई !" कहकर उठने की तैयारी करते हुए धूला से कानजी ने फिर कहा— 'इतना ता खयाल कर धूला ! कि बेचारी आधी रात के समय हमारे पीछे पीछे आई है। उसे मारेंगे पीटेंगे तो उसकी आत्मा क्या कहेगा ?" कहकर कानजी न फिर एक सास ली और खीमे मे मे तमाखू निकालकर चिलम भरते हुए बोला— "इसलिए आज से तू सब छाड देना ! और यदि तू अपनी बहू के साथ मिलकर रहेगा तो ऐसी औरत तुझे सात जनम म भी न मिलेगी धूलिया ! नही तो रोज की इस दाता किलकिल से तो उस बेचारी को या तो कुए पोखर मे गिरना होगा या फिर ! मतलब यह कि भाई सवनाश हो जायगा। साथ ही मैं तुझसे यह भी कहे देता हूँ कि मुझसे भी यह सब ज्यादा दिन तक न देखा जायगा।" कहकर कानजी चिलम पीने झुका।

धूला अब तक जहाँ 'हाँ ठीक है !' 'सच है काना भाई !' यही कहता रहा था वहा दूसरी ओर यह भी सोचता रहा था कि कानजी की बात कब खत्म हो और कब उसे उठने का मौका मिले। कारण उसे भय था कि यदि कानजी को गुस्सा आ गया तो इस खोपडी पर उसका कोई धनीधोरी नही।"

चिलम पीने के बाद ही उसे छुटकारा मिला। विदा होते वक्त कानजी

ने फिर कहा, 'क्या कहा धूला ? मन में कुछ सन्देह हो तो अब भी कह डाल।"

"अरे नहीं काना भाई ! अब काहे का सन्देह ?" कहकर धूला गाँव की ओर चल दिया। खेत पार करते वक्त तक तो उसे डर था। पर जैसे ही उसने खेत पार किया वैसे ही एक चैन की साँस ली।

जैसे हृदय का समस्त भार हल्का हो गया हो ऐसे कानजी को भी एक प्रकार की शान्ति मिली।

कानजी को इस प्रकार नरम होता देखकर धूला तो और भी मूछों पर ताव देने लगा, पर यह बात सुनकर रेशमा ने फिर उसे ठण्डा कर दिया—"अरे जा, भले आदमी ! छिनरा आदमी की तुझे क्या पहचान है ? वह तो यदि प्रतिज्ञा भी करे तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। इसलिए देखना कहीं उसकी बातों में न आ जाना !"

"नहीं-नहीं रेशमा बात तो उसने सच्ची कही थी। उसने कबूल किया था—उन दोनों का जी एक दिन ।"

रेशमा बीच में ही हँस पड़ा। बोला—'धूलिया' तू औरत वाला तो हो गया, पर जैसा भोला था वैसा ही रहा, समझा ?" और धूला की बाँह को हिलाता हुआ कहने लगा—"कैसे सब बातें करनी चाहिए और कैसे हारी हुई बाजी जीतनी चाहिए, यह तो वही जान सकता है जो उसके-जैसा हो। तेरी समझ में यह नहीं आयगा।"

धूला रेशमा को अच्छी तरह जानता था। उसे विश्वास था कि इन बातों में रेशमा कानजी की अपेक्षा दो कदम आगे है। इसलिए तो वह रेशमा के कहने से सोच में पड़ गया था न।

जैसे अभी बात पूरी न हुई हो ऐसे अलग होते हुए कहता गया—"सच्ची बात सुनकर तो आए हो, पर यदि एक दिन बुरी बात न सुनो तो रेशमा को याद करना दोस्त !"

धूला को भी यह ठीक जँचा। और 'लाओ मुखिया से तो बात करूँ। कानजी ने यह तो कबूल किया ही है कि उसका दिल लगा हुआ है।' यों सोचता हुआ वह मुखिया के घर की ओर चल दिया।

तेरहवाँ प्रकरण

परीक्षा

मुखिया और गाँव मे रहने वाले पटवारी आदि ने धूला का पूरी पूरी मदद देने का वचन दिया। लेकिन साथ ही-साथ यह भी कह दिया कि इतन से ही कुछ नही हो सकता। और कहा—"कानजी तुझे मारने आवे तो आने देना। फिर हम हैं और वह है।"

और इस प्रकार जो बात अब तक युवक-युवतिया तक ही सीमित थी उसकी चर्चा अब वृद्धो मे भी होने लगी।

कानजी के कान मे भी यह बात आई। उसे क्षण मे हँसी आती, तो क्षण मे दु ख भी होता। क्षण मे 'देखता हूँ कि वे सब क्या करते हैं?' यह सोचकर उसकी आँखे लाल हो जाती, तो फिर कभी जीवन से विरक्ति भी होने लगती। कभी वह मन मे सोचता कि जीवी से कह दू—'चल, भाग चलें।'

और ऐसा करत करते एक महीना बीत गया।

जब कि जीवी? आदमी मार खाते खाते या तो पशु हो जाता है या हैवान बन जाता है, पर जीवी अभी इनमे से एक भी नही हुई थी। घर म होती तो कभी दिन मे पशु-जैसी लगती और कभी रात को धूला को हैवानियत का परिचय भी दे देती। परन्तु घर के बाहर तो वह अब भी हँसती रह सकती थी। सहानुभूति दिखाने वाले लोग से "होन दो, घर है तो रगडा झगडा चलेगा ही" यो कहकर उनके आगे गाँव के

उदाहरण रखती और कहती —'यह तो ऐसे ही चलता है—किसी के यहाँ कम, तो किसी के यहाँ ज्यादा।"

ऐसे ही करते-करते दोनों भी बात गई। गर्मी के बेकार दिन आ गए। गांव ही ठलुआ आदमी को ढाकती 'ममती माता' भी कठघड़ियों में दिखाई दी। पनघट पर गई एक युवती सिर पर जहर लते ही कौर गई। जेहर जमीन पर गिर पड़ी। औरतें घबरा गई। पानी भरने आते हुए दो तीन आदमियों ने उसे बांह पकड़कर उठाया और गांव में पहुंचाया। "क्षमा मेरी माँ! क्षमा माताजी की।" यों कहती हुई औरतें भी पीछे आ रही थीं।

गांव की चौपाल में भीड़ लग गई। माता और भक्ति के उपासक ठाकुरडा उपस्थित हो गए। धूप दीप करके माता के आगे साफा उतार कर सवाल किये—"बोलो मेरे स्वामी, आप कौन देव हैं? मुझ गरीब के घर में आपने सोने के पैर क्यों रखे हैं, माँ!"

बड़ी देर तक वह खेलने के बाद वह युवती बोली—"अरे हम तो मोती छन्ना देव हैं। मैं पहले ही से न्योता देने आई हूँ। मेरे दूसरे साथी पीछे आ रहे हैं। गांव में चौकी सजाओ, पखावज चढ़ाओ, हमें खेलना है। दो दिन खेलकर हम अपने रास्ते चले जायेंगे। गांव में कोई रोग फोग हो या और जो-कुछ हो सो सब उस समय कहना। अरे, हम दूर करदेंगे।"

"अच्छा अच्छा, मेरी माँ! हमारे ऐसे भाग कहाँ, जो बिना पुकार और बुलावे के आप पधारें।" जीवा भगत नाम के एक ठाकुरडा ने कहा। फिर नारियल फोड़कर वचन दिया—'कल गाँव की ओर से चौकी सजाकर पखावज मढ़ावेंगे। आप अपने साथियों सहित पधारना।"

"अच्छा रे, अच्छा!" कहती हुई वह औरत जमीन पर लुढ़क गई।

दूसरे दिन सुखड़ी पकाने और दिया जलाने के लिए गाँव में घी, आटे आदि की उघाई होने लगी। चौपाल में मंडप निर्मित हुआ। और पखावज गमकने के पहले तो लगभग बीस आदमी—विशेषकर युवक और किशोर खेलने भी लग गए।

तीन वर्ष पहले जब यह मोतीछडा देव आया था तब गाँव के लोगो को जितना डर लगा था उतना इस बार नही लग रहा था।

उस समय कानजी आदि युवको की जगह अधेड और वह भी विशेषकर ठाकुरडा ही इस चौकी का सूत्र सँभाल रहे थे। एक के बाद दूसरा या छ-सात ठाकुरडा आ पहुँचे। रोली, गुलाल और हल्दी के साथिये पूरे गए। चौकी पर लाल पीला कपडा बिछाकर चावल और गेहू की ढेरियाँ बनाई गईं। ऊपर लोटा रखा गया। लोटे के ऊपर नारियल रख कर कलावे का हार पहनाया गया। दोनो ओर दो नगी तलवारें रखी गइ। दीवट पर घी का दीपक रखा गया और इस सबके आगे अग्नि भरा कुण्ड रखा गया। जीवा भगत ने होठो की फडफडाहट के साथ धूप डालना शुरू किया।

दखने वाले को अन्दर इस चौकी के पास बठे पाँच सात व्यक्तियो का देखते ही कुछ भय सा लगता। इन सबकी पोशाक लगभग एक-सी थी—घुटनो तक धोती और लम्बे बालो पर दो तीन अँटे दिया साफा। एक-से ही थे। जब कि जीवा भगत तो खाली धोती ही पहने थे। उनकी कुछ-कुछ नशीली आँखें भय उत्पन्न करने वाली थी।

लेकिन असली चहल पहल तो इस मण्डप के बाहर—दरवाजे से लेकर बडे चौके तक—हो रही थी। दरवाजे के आगे दूसरे भगतो के साथ सच्चीसेक जवान पखावज और झाझ मँजीरे की झडी लगाते बैठे थे। एक ओर मुखिया और गाव के अन्य पन्द्रह बीस आदमियो का भी जमाव था। दूसरी ओर औरता तथा बच्चो का ठठ जमा था। सामने के मैदान मे बीस पच्चीस आदमी, जिनमे कुछ हाथ हिलाते तो कुछ पूरे अग को कँपाते थे, शराब पिये हुओ की भाति लडखडाते हुए 'हुस' 'हुस' करके खेल रहे थे। कोई खेलने वालो को पानी पिलाता था तो कोई जमीन पर पानी छिडक रहा था।

इतने मे ही एक जोर की किलकारी सुनाई दी। एक आदमी उछलता हुआ चार फुट दूर जा पडा। दूसरे ही क्षण एक भयकर हुँकारे के

साथ खडा होकर वह धरती हिलाता और उस टोल को घेरता हुआ चक्कर खाता घूमने लगा। यह रेशमा था। उन भक्तों में से एक ने कहा कि इसमें आया हुआ देव उस सारी फौज का कोतवाल है। ढाल को अपने घेरे में रखता और उद में दाना फेंकता हुआ रेशमा इतनी ज्यादा जोर से घूम रहा था कि यदि कोई उसकी चपेट में आ जाता तो धूल चाट जाता।

काफी देर तक खेल लेने के बाद रेशमा और दो बड़े भक्त[1] चौकी के आगे लाये गए। तीनों जने इतने जोर से खेल रहे थे कि कमजोर दिलवाले तो उनको देखने की हिम्मत ही नहीं कर सकते थे। काफ़ी देर तक खेलने के बाद रेशमा ने पखावज आदि बन्द करवा दिये। पूछा—अरे कुछ माँगना है?—कह डाल ना जो-कुछ हो सो! दुखिया के दुख निवारन कर दूँगा रे!"

"तुम नहीं करोगे तो और कौन करेगा मेरे मालिक!" जीवा भगत ने कुण्ड में धूप की चुटकी डालते हुए कहा। दरवाज़े के आगे लोगों का ठठ जमा था। कानजी आदि युवक भी भीतर आ गए थे।

तो रह कह डाल! कह डाल अपना दुख!" कहकर रेशमा फिर जोर से खेलने लगा। पीछे से उन दोनों ने भी अनुकरण किया—हाँ रे जो तेरा दुख हो सो गा डाल!"

'मेरे माँ बाप! हमारा दुख क्या तुमसे छिपा है? तुम तो "
परन्तु देव को कुछ बडबडाता हुआ सुनकर जीवा भगत चुप हो गए।

रेशमा बोलने लगा—'अरे मुझसे क्या छिपा रह सकता है? तू कहे तो तेरे गाँव की बुराई को सामने रख दूँ, तू कहे तो ऐसा कम करने वाले का घडी दो घडी में परचा[2] दे दूँ "

हाँ मां बाप! काले सिर का आदमी है, भूल तो करता ही है! भूल न करें तो हम आदमी ही काहे के!' एक दूसरे वृद्ध ठाकुरडा न

१ जिन पर देव प्रसन्न हुआ हो ऐसे आदमी।
२ 'परिचय' का अपभ्रंश। अभिप्राय है शक्ति का प्रदर्शन करना।

कहा।

'लेकिन अरे एक सबल दूसरे दुर्बल को खा जाय—उसकी इज्जत पर हाथ डाले, यह कहाँ का न्याय है?' कहकर रेशमा कटकटाकर अपने शरीर को डंडे की तरह घुमाने लगा।

यह सुनते ही कानजी के कान खड़े हो गए। वह दूसरी ओर एक खम्भे के सहारे खड़े भगत के पास गया और हँसता हुआ बोला—'यह देव तो जबरदस्त लगता है?"

इतने में ही देव का बोलना सुनकर भगत ने उसे चुप किया। देव कह रहा था—"अरे, जितनी मुझे खबर है उतनी तुम गाँव वालों को भी नहीं।" कहकर 'हा! हा! हा!' करके अंग के टुकड़े करता हुआ ऐसे खेलने लगा जैसे किसी महान् कष्ट से पीड़ित हो। कुछ देर बाद कहने लगा 'बोल रे भगत!" जीवा भगत से ही कह रहा था— कह डाल! ऐसे लुच्चों को दण्ड दूँ या क्षमा कर दूँ? कह दे!"

कानजी की आँखें तन गई। 'यह तो कोई अजीब देव लगता है।' बड़बड़ाता हुआ बोला— 'क्षमा क्यों करते हो मेरे मालिक! वह भी तो जाने! परचा तो दो ही।'

'अरे, अरे, लेकिन इसमें फायदा नहीं निकलेगा।" रेशमा फिर जोर से खेलने लगा। जैसे कोई पंप हवा खींचता है ऐसे उसके मुँह से 'सुड़र सुड़र' हो रही थी।

कानजी आगे आ गया था। बोला—"नहीं, क्यों निकलेगा? एक बार उस पापी को दण्ड मिलेगा तो साथ ही तुम्हारा परचा भी तो मिल जायगा। और ऐसे काम करने वाले दूसरों को भी अक्ल आयेगी।"

जीवा भगत और मुखिया आदि ने कानजी से चुप रहने के लिए कहा। लेकिन कानजी अब चुप रहने वाला न था। देव को खेलते हुए देखकर उसने फिर कहा—"यदि तू सच्चा देव है तो आज परचा दे दे। इस भरी सभा के देखते, इस चौकी के सामने ही।"

'भगत! कौन है यह? इससे कह दे कि मुझसे टक्कर लेना ठीक

नही है । आज मुझे न छेड ! देव से टक्कर लेने की बात छोड दे !" और इस वाक्य को पूरा करने के साथ ही रेशमा ने एक भयकर हुकार की । पीछे से उन दो जनो ने उसके स्वर-मे स्वर मिलाया । उसके पर तो इतने जोर से पड रहे थे कि दूर खडे आदमियो को भी अपने परो के नीचे झनझनाहट महसूस होती थी । जैसे किसी को खाने वाला हो एसे दाँत किटकिटाते हुए रेशमा ने गर्जना की —"कौन है यह देव का सामना करने वाला ! आ जाय मेरे सामने । हाय रे हाय ! कितनी देर है रे !"

लोगो के हृदय जैसे धडकने बन्द हो गए हो । बच्चे माताओ की गोद मे छिप गए । औरतें जहाँ खडी थी वहा से भागने की तैयारी करती हुई-सी आगे से पीछे जा जाकर खडी होने लगी । दृढ हृदय वाले भगत भी एक दूसरे को देखने लगे ।

कानजी को बहुत पकडा, बहुत बहुत समझाया, पर वह ऐसे जोश के साथ रेशमा के आगे जा खडा हुआ जैस उसे भी देव आ गया हो । शरीर भी कुछ-कुछ काँप रहा था । शान्त आँखें मानो अगारे बिखेर रही थी । बोला—"मैं यह रहा देव ! मुझे भी आज देखना है कि जीते आदमी को तुम कैसे खाते हो ?"

"अरे अब भी कहता हूँ । देव का सामना करने मे कोई लाभ नही है ! मुझे तुझ पर तरस आता है ।" रेशमा ने कुछ ठण्डा पडते हुए कहा ।

परन्तु कानजी ने तो आज जैसे मरने का ही निश्चय कर लिया हो ऐसे बोला—'यदि तरस खाना हो तो दुनिया म वहुत से ऐसे लोग पडे हैं जो तरस खाने मे विश्वास रखते है । मुझे तेरी दया की जरूरत नही । मैं तो यहाँ बैठा हूँ—मुझे तो आज तेरी परीक्षा लेनी है ।" और कानजी देव से कुछ कहे इसके पहले ही उसके बडे भाई आ गए । बाँह पकडकर उठाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए वे बोले—"ओ अभागे ! क्यो बाद म दूसरो को भी परेशान करने के लिए बैठा है ।" हीरा तथा अन्य युवक भी आ पहुचे थे ।

"छोड दो तुम सब मुझे ! आज मुझे सच्चे झूठे का फैसला करना है। इस ठाकुरडा मे कौन सा देव समाया है यह मुझे देखना है।" कान जी ने कहा। लेकिन इस वाक्य के पूरा होने के पहले ही उसे धकेलकर दरवाजे तक ले आया गया था।

'लेकिन तुझे परीक्षा लेनी हो तो ले लेना ! अब तो तू घर चल ! अभी तो यह दो दिन तक खेलेगा।' हीरा ने कहा।

कानजी शान्त होता हुआ बोला— लेकिन तुम मुझे यहा क्यो खीच लाए हो ? उस देव से मुझे यही कहना है कि यदि वह सच्चा देव होगा तो गले मे धधकती जजीरें पहन लेगा।"

"हाँ, हाँ, लेकिन अब यह सब शाम को करेंगे। अभी तो खाने के लिए घर चल !" अन्दर से बाहर निकलते हुए भगतजी ने कहा। मुखिया ने भी यही कहा। और यो एक के बाद एक सब बाहर निकले।

खेलते हुए व्यक्ति भी इस हो-हल्ले मे शान्त हो गए थे। और घडी-भर मे तो जीवा भगत के दो तीन चेलो के अलावा सब खाना खाने चले गय।

खाने के लिए तो सब गये, पर शायद ही किसी ने पेट भरकर खाया हो। जहा देखो वहा चर्चा हो रही थी। कोई कहता था—'आज या तो कुछ विचित्र घटना घटेगी या देव कानजी को पागल कर देगा।' तो इन सब बातो से अनजान लोग आख फाडकर पूछते— 'क्या कहते हो ? क्या काना ने देव का सामना करने की ठानी है ? बेवकूफ क्यो अपने आप आग मे कूदता है ?' और बहुता ने तो उसे समझाया भी—'काना क्या अपने-आप मृत्यु का ग्रास बनता है ?"

कानजी हँसकर जवाब देता— 'मृत्यु का ग्रास मैं बनता हूँ या यह देव, यह तो शाम को बताऊँगा ! या तो इस देव को इस गाँव से समूल निकाल दूँगा या मैं मर जाऊँगा। पर आज मैं छोड़ूगा नहीं।" और बड-बडाया—"साला ढोगी।"

'लेकिन अरे, ये जो छोटे बच्चे खेलते हैं इनमे ढोग काहे

जरा तो सोच ! यह मथुरा और लाला तो तेरे ही गुट्ट के हैं और उस धूलिया नाई को तो गाने के साथ घूमना भी नहीं आता। वह क्या कर रहा था ? किसी देव का प्रभाव होगा तभी न ?'

परन्तु इस सबका जवाब तो कानजी के पास तैयार था—'ये साले तो पखावज और मँजीरे की धुन में खेलते हैं। मैं ऐसे नंगे देव में विश्वास नहीं करता। हाँ यदि गरम जंजीर गले में डाल ले तो जानूं।"

फिर कानजी की भाभी तो रोई भी—'तुम्हारे-जैसे बाबाजी का क्या ? देव रूठ जाय और मेरे एक बैल या भैंस को मार दे तो भीख तो मुझे ही मांगनी पड़ेगी न ?'

"लेकिन तुम्हारी भैंस या बैल ने तो देव का कुछ बिगाड़ा नहीं है। बिगाड़ा भी है तो मैंने बिगाड़ा है। और मैं तो इसके लिए तैयार ही बैठा हूँ।'—इस प्रकार कहते कानजी को चुप कराते हुए बड़े भाई बोले—नहीं, भाई नहीं, अपने को ऐसा कुछ नहीं करना। ढोंग होगा तो भी अपना कपाल फोड़ेगा। हमें इससे क्या ? तू खाकर जा ! वे जो पूले हैं, उन्हें खलिहान में डाल देना ! मैं पीछे से बैल लेकर आता हूँ।'

'लेकिन तुम इतने ज्यादा क्यों घबड़ाते हो बड़े भाई ! यह साला कोई बाघ तो है नहीं, जो खा जाएगा। और सच्चा देव क्या ऐसे गुस्सा थोड़े ही होता है ! उसका हृदय तो बड़ा उदार होता है।'

हृदय उदार नहीं है यही तो खतरे की बात है। न हमें पखावज में जाना है और न परीक्षा लेनी है। तू अपने खलिहान पर जा !"

आज पहली बार कानजी ने बड़े भाई के सामने क्रोध किया—तुम कुछ भी कहोगे तो भी आज मैं पीछा नहीं छोड़ूंगा। या तो यह देव सच्चा निकलेगा या मैं ? मुझे इसका निश्चय करना है।'

और यों कानजी टस से मस न हुआ तो नहीं ही हुआ। घर से उठ कर भगतजी के यहाँ गया। गाँव के लोगों को जानने वाले भगतजी ने भी सलाह दी—मरने दे न कानजी ! आज के बाद गाँव में यदि कुछ होगा तो । और ये सब ठहरे बड़े परिवार वाले। आदमियों को नहीं

तो अत मे ढोरो को ही कुछ न कुछ होगा, यह तो तय है ही। लेकिन ये लोग तो इसे देव का ही कोप मानेंगे और नाहक अपने ऊपर बदनामी डालेंगे।"

"लेकिन भगतजी ! हम पर बदनामी कैसे डालेंगे ? गाव वालो के सामने ही इस देव बनने वाले के हाथ मे आग पकडा दूँगा। सच्चा होगा तो आग पकड लेगा। इस प्रकार परचा देने के बाद मुझ तने को छोडकर कोई डालो से ही थोडा जा चिपटेगा ? वह भी साला देव है या कोई मूरख ?"

"तो फिर अच्छी बात है ?" एक युवक ने कहा—"और उसके बाद तो अन्य दो चार युवक भी साथ दने को तैयार हो गए। लेकिन कानजी ने उनसे कहा—"नही भाई तुम तो जो कुछ हो सो देखा करना बीच मे बोलना मत ! मैं तो अकेला हूँ इसलिए चाहे जो कर सकता हूँ, पर तुम्हारे पीछे तो रोने वाले हैं।' कहकर हँसने लगा।

दूसरी ओर मुखिया के यहा भी इस बात की चर्चा थी। जीवा भगत मुखिया से कह रहे थे—"देव को छेडने से गाँव का कुछ भला नही होगा, मुखिया ! इसलिए छोकरो की बातो मे आये बिना चुपचाप दो घडी खिलाकर शाम को विदा कर दो !"

मुखिया और गाँव के दो चार जनो को भी यह ठीक लगा। कानजी को बुला लिया गया पर उसने जवाब दिया— मैं वहाँ चौपाल पर आता हू। जो कहना हो सो वहाँ कहना ! मुझे किसी की पचायत नही सुननी !"

मुखिया हारकर भगतजी के यहाँ आये। लेकिन वहाँ भी अत मे उन्हे निराश होना पडा। निराश इसलिए कि यदि कानजी अकेला होता तो कदाचित् बहुमत के आगे उसकी जिद न चलने पाती, पर यहाँ तो आठ-दस जने थे और उनमे भी फिर मिल गए थे भगतजी।

हारकर मुखिया ने भगतजी को एक ओर ले जाकर समझाया। और उसके बाद उन छोकरो के घर चक्कर लगाते हुए कहा—' देव का

सामना करने खडा हुआ है तुम्हारा लडका, पर यदि गाँव मे कुछ हो गया तो तुम जिम्मेदार होगे।" ऐसी धमकी देते और डर दिखाते वे चौपाल पर आ बैठे।

मुखिया की यह तरकीब खूब कारगर हुई। हर एक युवक के घर का आदमी, किसी किसी का तो पूरा कुटुम्ब ही—भगतजी के यहाँ आया। कोई डाँट फटकारकर तो कोई समझा बुझाकर अपन अपना को घर ले गया। और यदि चौपाल मे जाने भी दिया गया तो पक्की प्रतिज्ञा कराने के बाद।

रह गया कानजी। लेकिन उसम तो अब और भी हिम्मत आ गयी थी। समझाना आरम्भ करने वाले भगतजी से "तुम भी क्या हो भगत जी! जान बूझकर भी ऐसी बातें करते हो ?" कहकर अकेले जूझने की खुमारी मे वह उठा। भगतजी से कहा—"तुम जाकर सो रहो भगतजी। वहा आओगे तो या तो तुम्हे व्यथ मे बोलना पडेगा या न बोलने पर कलक सिर पर लेना पडेगा।' कहकर "हीरा गया या है ?" बडबडाता हुआ वह उसके घर की ओर मुडा।

'यह तो ठीक है मेरे भाई पर तू जा मैं पीछे से आता हूँ।" कह कर सोच मे पडे हुए भगतजी हुक्का पीने लगे।

कानजी को तो जैसे कुछ होना नही था, पर भगतजी को ज्यादा दह शत तो स्पश दोष को मान बैठने वाले गाँव वाला की थी। इसके अति रिक्त भगतजी को बडा भारी खतरा तो यह था कि या तो उन देव भक्तो के साथ मार पीट हो जायगी या आमने सामने तलवारें खिच जायगी। इतने मे ही उसकी नजर घर से बाहर जाती जीवी पर पडी। भगतजी एकदम खडे हुए। थूकने के बहाने ओलाती के नीचे आकर जीवी से पूछा—"क्या चौपाल पर जा रही है ?'

"हा!' कहकर जीवी ने घूघट जरा और नीचे कर लिया।

भगतजी भी आगे-आगे चलने लगे।

"फिर क्या हुआ भगत काका ?' जीवी ने पूछा।

'किसकी री ?'' भगत जरा धीमे पडे।

'देवो के गले मे कुछ जजीरें डालने की बात थी न ?''

'औरो को तो उनके सगे सम्बन्धी समझा बुझाकर ले गए, पर उस जिद्दी को कौन समझावे। उसे समझाने वाला है भी कौन ? नाहक पूरे गाव की आख का काटा हो जायगा। देख अभी तो हीरा के यहाँ माथा-पच्ची करता सुनाई दे रहा है। लेकिन वह ऐसा नही जो किसी की माने।'' कहकर भगतजी ने कह ही डाला— तू जा तो सही वहा। सुन तो सही, क्या कहता है ?'' कहकर चुप हो जाने वाले भगतजी ने कह ही तो डाला—''तू कहना तो सही, मान जाय तो अच्छा है। मुझे यकीन है कि वह तेरा कहना जरूर मान लेगा।

जीवी बेचारी देवो को मानती थी। इसीलिए कानजी से मिलने का अवसर खोज रही थी। किसी की परवाह किये बिना ही वह हीरा के घर की ओर मुडी। लेकिन सबके सामने वह कहेगी कैसे ? यह सोचकर वह हीरा के घर के कोने म ही—जैसे हृदय मे लगा दु ख का काँटा पैर के तलुए म आकर कसक रहा हो ऐसे काँटा निकालती—खडी हो गई।

इतने मे ही कानजी को कहते सुना—''तुझे न आना हो तो ठीक है हीरा, पर मैं तो जरूर आऊँगा।'' और दूसरे ही क्षण वह दरवाजे के बाहर निकला। जीवी को देखकर कुछ ठिठकता हुआ-सा आगे बढा। जीवी बोली—''कहाँ जाते हो ? ठहरो, मुझे तुमसे कुछ ' बात शुरू की।

'मिलना किसी दिन '' कहकर कानजी मस्ती से आगे बढा।

''यह तो ठीक है, पर आज यदि चौपाल मे जजीर फजीर की खटपट की तो तुम्हे मेरी सौगध है। मेरा लाहू पीना हो तो ऐसी खटपट करना। कहकर जीवी ने कानजी की ओर एक नजर डाली और हीरा क घर की ओर चल दी।

कहने की आवश्यकता नही कि कानजी मन मे झुझलाया तो खूब था, पर उसने जजीर की कोई बात नही चलाई। प्रत्युत इसके बाद उसने साथ मे पखावज ली। हथौडी से ठीक ठाक करके खुले हाथ से

बजाने लगा। आस पास बैठ युवको से कहा—"अरे, एक तान और
राग मे भजन गाना! फिर देखना कि माता के भक्त तीन-तीन दिन
खाट मे पडते हैं कि नही!" कहकर भजन उठाने से पहले खेलने वा
की ओर नजर डाली। सवेरे की अपेक्षा लगभग आधी संख्या देख
और उनमे रेशमा को न पाकर तो उससे यह कहे बिना न रहा गया-
'क्या बडा दव नही दिखाई देता यहाँ?"

'वह तो गया खलिहान पर। घर म काम हो तो यहाँ सारे दि
कैसे रह सकता है?" रेशमा के पट्टीदार (किसान का मालिक) मन
ने कहा।

लगभग आधे आदमी हँस पडे। कानजी ने पखावज को ठोकते
कहा—'आया होता तो भी अब जजीर तो डालनी नही थी।" औ
फिर स्पष्ट किया—' अरे भाई, किसी डर के कारण छिपे हो तो ऐ
न करना। जजीर फजीर कोई नही डालेगा। इसलिए चाहो तो म
करके दो घडी खेल लेना।' कहकर आस पास के युवको पर फिर ए
नजर डाल ली। मँजीरा लिये बैठे एक लडके से कहा—"रामा अब
मँजीरे इस मनारे को दे, तू फिर बजाना! और फिर पखावज की ए
गत बजाई। यह कहना कठिन था कि कानजी के हाथ बोल रहे थे य
पखावज। मीठी आवाज म भजन उठाया—

मेरे प्यारे रे! मुरली बाजी सांवरे स्वर से।
मेरे प्यारे ओ! मुरली ने मन मोहा, हमसे रहा नहीं जाता।
हमसे रहा नहीं जाता, हमसे कहा नही जाता। मेरे प्यारे रे!

कानजी की आवाज ऐसी थी कि मन को काबू म रखने वाले अच्छे
अच्छे भी झूम जाते। मृदंग का ठेका तो टड हृदय मे जाकर लगता था
नाचने के लिए पैर जैसे गुदगुदाते थे। जैसे-जैसे भजन जमता गया वैसे
वैसे ही गाने वाले भी रंग म आते गए। कोई-कोई तो नाचकर थमने
को लगा। घडी भर म तो रंग के बदले बीस आदमी गाने लगे।

भजन पूरा हुआ तो कानजी ने पादरी से कहा—' कहो तो फिर

यहाँ बैठे हैं उन सबको खिलाऊँ भगतजी ।''

'मरने दो ।'' भगतजी के पास बैठे मुखिया ने हँसकर कहा। उनको तो यही विश्वास हो गया था कि चाहे जो हो, पर भगतजी के इस शागिर्द के पास कोई पक्की विद्या है। इसके बिना वह देवो के सामने इतनी टक्कर लेने की हिम्मत नही कर सकता।

परन्तु मडप के अदर बैठे जीवा भगत और दूसरे सात आठ ठाकुरडा कुछ मत्रणा कर रहे थे। इन देवो के साथ उनकी माता की—और साथ-साथ अपने विश्वास की भी—पत जा रही थी। अरे, चली हो गई थी। इसीलिए तो एक जने को रेशमा को बुलाने दौडाया गया था। जीवा भगत भी धूप चढाते गभीर बन बैठे थे। बाहर होती बातचीत को सुन कर उनके कलेजे मे आग लग रही थी। इतने मे ही रेशमा आया। मडप के पीछे होकर अदर गया। जीवा भगत ने उसे आडे हाथो लिया—''बोल हरामी तुझमे जो खेल रहा था क्या वह देव था ?'

कुछ इधर उधर की बातें करने के बाद रेशमा ने कहा—' मेरी माता थी जीवा काका।''

'तो आने दे अपनी माता को। हम भी अपने देव का स्मरण करते हैं। गाव के इन लोगो को दिखा देगे कि देव के साथ टक्कर लेना कोई छोटे बच्चो का खेल नही।''

कानजी ने दूसरा एक ऐसा भजन उठाया जो मुर्दों को भी झुमा दे—

''राजा के शहर मे गायें काटी गईं वीर।
सहाय के लिए आओ राम दे।''

और जब दूसरी पक्ति उठायी—

''श्वेत घोडे पर चढे वीर राम दे
क्षमा करो राम दे!''

तब तम्बू मे शोर मच गया। धरती ऐसे हिल रही थी जैसे मानो स्वय भी खेल रही हो। कानजी के कान मे कुछ भनक तो पडी— आज कुछ न-कुछ झगडा जरूर होगा। पर उस पर विशेष ध्यान न देकर

भजन चालू रखा। दरवाजे मे लोगो के ठठ फिर जम गए। लगा, जैसे वाहर खेलते आदमियो मे भी नई चेतना आ गई हो।

तम्बू मे से आवाज आई—"कहा गया रे मुखिया ? वह परीक्षा लेने वाला कहाँ गया ? आ जाय मेरे सामने !" जीवा भगत गरज रहा था। मुखिया ने भगतजी को आगे करते हुए कानजी से कहा—"तू अपना भजन चालू रख न ?"

अन्दर जाकर देखता है तो साढे पाच हाथ लम्बा जीवा भगत और उसके पीछे रेशमा के साथ तीन और आदमी लम्बे बालो को खोलकर धमा-चौकडी मचा रहे थे। मुँह की 'हाउस हाउस' की आवाज से तो शात जलती हुई दीपक की लौ भी जैसे काँप रही थी।

वाहर भजन गाने वालो की आवाज काँप रही थी। कानजी भी कुछ कुछ काँप रहा था—डर के मारे नही, गुस्से के मारे। उसका चित्त भी भजन गाने से हटकर अन्दर आने वाली गजना पर लगा था। कोई काई वृद्ध कह रहा था—"भाई ! अब पखावज वजाना बन्द करो ! देव क्या कहना है यह सुनने दो जरा !

सुनना हो तो जाओ न अदर ! पखावज क्या बन्द करें ?" हीरा ने कहा।

लेकिन तभी कानजी के कान मे आवाज आई—"नही रे मुखिया ! मुझे कुछ नही सुनना ! ला, पहले मेरा भोग ला परीक्षा लेने वाले का बुला और मेरे आगे खडा कर दे ! दूसरो ने भी "हाँ रे, ला दे !" कहकर जीवा भगत के कथन का समथन किया।

मुखिया कह रहे थे—"होगा, मेरे माँ-वाप ! लडका था, भूल हो गई। इतना अपराध क्षमा करो देव ! तुम तो "

एक भयकर आवाज के साथ जीवा भगत गरजा—'हाँ रे, आज तेरा मान नही रहेगा मुखिया ! मेरा भोग ला—धर दे यहाँ ! मुझे उसके दाँत गिनने हैं।" कररररर कट-कट् करता हुआ दाँत भीचने लगा।

सारी भीड कभी देव वाले तम्बू की ओर, तो कभी कानजी की ओर

दब रही थी। माताओ को अपनी गोद मे छिपे बालको का ध्यान न था। सबकी आँखें और मुह फट गए थे, जैसे हृदय की गति रुक गई हो।

'मुझे उसके दाँत गिनने हैं,' की आवाज के कान मे आते ही कानजी ने मृदग को एक ओर रख दिया। उछलकर खडा होता हुआ बोला—'तेरे देव की ऐसी की तैसी! देखूँ कैसे मेरे दाँत गिनता है?" और लाल-ताती आखो से तम्बू की ओर चला। किसी किसी को तो कानजी पर देव चढा हुआ लगने लगा। चार-पाँच औरतें तो बोल उठी—"काना भाई! अरे कोई पकडो तो सही।" और देखते क्या हैं कि कानजी की एक बाँह से जीवी चिपटी है और दूसरी से हीरा और कानजी के बडे भाई। लेकिन कानजी को इसका भान ही न था। जैसे ही उसने यह सोचकर कि किसी मर्द का हाथ है, उसे छुडाने का प्रयत्न किया वैसे ही औरत दिखाई दी। जीवी को पहचानते देर न लगी। उसका (जीवी का) मुह फट गया था और उसकी फटी हुई आँखें देखकर तो ऐसा लगता था जैसे अभी इनमे होकर प्राण निकल जायेंगे।

"तू ही मेरे प्राणो की प्यासी है।' कानजी बोल उठा। "अच्छा चल, छोड दे।" कहकर देव की ओर एक कडी नजर डाली और पीछे को मुड गया। हीरा और बडे भाई उसके पीछे पीछ घर की ओर चल दिए।

जब जीवी को इसका ध्यान आया कि वह स्वय क्या कर बैठी है तो उसे धरती फटने पर उसमे समा जाना ज्यादा अच्छा लगता है। वह घर की ओर चली तो सही पर उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसा दुनिया मे शायद ही किसी को हुआ हो। पीछे से गाँव के लोगो की आँखें ऐसे चुभ रही थी जैसे भालो की नोकें।

बाहर खडी औरतें भी ऐसे तितर बितर होने लगी जैसे सब-कुछ समाप्त हो गया हो—होने वाली बात हो चुकी हो। पर मण्डप मे तो जितना शोर-गुल पहले था उससे भी ज्यादा बढ़ गया था। कानजी का स्थान भगतजी ने ले लिया था, पर ये शान्त भाव से ही देव मे कह रहे थे—'यहाँ बुलाने से क्या है? तू तो हवा है, चाहे जितनी दूर से मन

चीता काम कर सकता है ।'

'कौन है यह ?'' जीवा भगत गरजा —''ला रे मेरा खड्ग ला । जीवी ला इसकी खबर लू ।'

जिसे भय छू भी नही गया था ऐसे भगतजी ने धीरे से दो डग भरे। जीवा भगत के सामने जाकर उसका तिरस्कार-सा करता हुआ वह कहने लगा— 'जीवा भगत, देव को तो खड्ग की जरूरत होती नही समझे। खड्ग तो आदमी ही काम मे लाता है । इसलिए खेलने आये हो तो चुपचाप खेलकर हसी-खुशी अपना रास्ता लो ! कहकर मुँह फेरते हुए कहा— 'अच्छा उठो मुखिया ! दो घडी भजन गाने हो तो गाकर विदा करो। देख लिये देव और उनकी करामात ! ' कहकर तम्बू से बाहर हो गए।

भगतजी के कहने का ढग और मुख मुद्रा ऐसी थी कि न केवल मुखिया वरन् लगभग सारे गाँव को ही एक प्रकार की हिम्मत आ गई थी। बातें भी कर रहे थे— 'भगतजी को किसी के बाप की भी परवाह नही। वह किसी से लाग-लगाव रखने वाले थोडे ही हैं ?'

उन्होने तो पकडा है एक सतनाम—एक भगवान का सहारा। उसके स्वामी का ये देवी देवता क्या कर सकते हैं।'

तो फिर तीसरा कह रहा था— भाई किसी विद्या के बल के बिना किसी का मुकाबला नही किया जा सकता। भगतजी के बोलने ही वह देव कैसा ठडा पड गया ? उनकी जगह यदि कानजी होता तो देखते ही बनता।

तो एक ने निष्कर्ष निकाला— उन्हे जरूर उसकी नस मालूम होगी। यो लम्बी चौडी बात करने से क्या फायदा ?

कुछ देर मृदग कूटकर सबको खिलाने के बाद गाँव के लोग उठे और पाँच नारियल फोडकर गाँव की सीमा पर रख आए। सबको लगता था कि इस बार न तो देवा के आने मे कोई लाभ हुआ और न जाने मे ही कोई मजा आया।

सब सीधे सीधे उतर गया था, फिर भी बहुतो को लगता था कि कुछ न कुछ अनिष्ट जरूर हुआ है—किसी की परीक्षा अवश्य हुई है।

चौदहवाँ प्रकरण

•

भले ही चला जाय

चैत्र का बाल रवि अभी पालने मे झूलता ही कहा जा सकता था। लेकिन इतने मे ही उसने 'पूत के पाँव पालने मे' वाली कहावत के अनुसार अग्नि की चिनगारियाँ उडाना शुरू कर दिया। लोगो ने ढोरो को बाडे से बाहर निकालकर आगन के घास के छप्परो के नीचे बाध दिया था। ज्यादा आदमियो वाले घरो म पानी के जेहरे आने शुरू हो गये थे तो एक-दो आदमियो वाले घरो मे अभी झाड् ही लग रही थी। चाहे जब दूध देने की आदत वाली भैसो मे से कोई काइ दूसरी बार की सानी खाती छप्पर के नीचे खडी थी और उनकी मालकिने सानी के खत्म होने से पहले ही दोहनी भर लेने की जल्दी मे 'घर-मर' करती थन खीच रही थी।

जेहर भर कर आती हीरा की बहन नाथी ने घर म घुमत घुसते जीवी को देखा। जोर से आवाज लगाकर पूछा—"जीवी भाभी, पानी भरने चलती हो क्या?' जीवी की 'हाँ' आवाज तो न सुनाई दी, पर उसे सिर हिलाते देख सकी। "अच्छा तो चलो," कहकर नाथी घर मे गई और जेहर खाली करते ही फिर बाहर आई। काफी देर तक राह देखने के बाद फिर पुकारा—"जीवी भाभी, कितनी देर है ?"

जवाब देन के बदले स्वय जीवी ही जेहर लिये बाहर निकली। दोनो जनी कुए की ओर चलने लगी।

आँखें नीची करके चलने पर भी जीवी यह देख समझ सकती थी कि

गाँव का हर एक आदमी—कोई उसकी ओर देखकर तो कोई बिना देखे ही—घृणा भी क्या कर रहा है। आदमी तो दूर एक कुत्ते की ओर देखने की हिम्मत भी उसमें न थी। गाँव के बाहर निकली तो उसे कुछ शान्ति मिली। पर इतने में ही उसने सामने से आती एक पनिहारिन को ठिठकते देखा। जीवी ने समझ लिया कि उसने पीछे वाली पनिहारिन से उसी के बारे में कुछ कहा है। जलती-भुनती (सकुचाती) जीवी इन लोगों से बचकर सिर झुकाए ही चली गई।

खूबी की बात तो यह थी कि जो औरतें कल तक सिर पर भरी जेहर होने पर भी, जीवी से एक पाली मक्का पीसने के बराबर वक्त तक बातें करती खड़ी रहती थीं उनमें से आज एक भी उसकी ओर आँख तक न उठाती थी। काली तो उसकी खास सहेली जैसी थी, पर उसने भी आज दूर से ही टाल दिया। जीवी को इस समय बड़ी चोट लगी। मन में आया कि कह दे—'अरी, मैंने तेरे माँ बाप तो नहीं मारे जो यों बचकर जाती है।' पर वह बोल न सकी।

लेकिन यदि कोई साफ कहने वाला कह देता—'ओहो! इसमें हो गया? कानजी मृत्यु के मुख में जा रहा था, यह उससे न देखा गया हो और उसे बचाने चली गई हो तो इसमें क्या बुरा है? उसने कोई पाप तो नहीं किया जो सब उसके ऊपर मुँह बिचकाती फिरती हो'—तो निश्चय सारा वातावरण बदल गया होता। हालाँकि काली को ऐसी साफ कहने वाली कहा जा सकता था, पर वह भी क्यों कुछ नहीं बोली, यह एक प्रश्न अवश्य था।

आगे चलती हुई नाथी ज़रा धीमी पड़ी। एक बार आस-पास देख लेने के बाद हास्य से छलकती आँखों में जिज्ञासा लिए उसने पूछा—'क्यों जीवी भाभी! कल तुम्हें यह क्या सूझा? इतने आदमियों में काना भाई से लिपट गई।'

इतने दुःख में भी जीवी हँसी। तिरछी नज़र से नाथी की ओर देखते हुए उसने सिर्फ इतना ही कहा—'यह सब समझने में अभी तुझे देर

लगेगी बहन !"

"नही नही, पर तुमने तनिक सोचा तक नही ? यो बगल मे ही तो धूला भाई खडा था।' कहकर नाथी झिडकी भरी नजर से देखने लगी।

"सोचा होता तो फिर ऐसा होना ही क्यो ?' और नाथी की ओर देखते हुए कहा—"सच कहती हूँ नाथी बहन उस समय मुझे कुछ होश ही न था। यह सब हो जाने के बाद ही मुझे होश आया।"

कुछ ठहरकर नाथी ने फिर पूछा— 'धूला भाई ने, घर के कोने मे मार पीट तो की होगी, क्या ?"

'क्या तुमने नही सुना होगा ?" कहकर जीवी नीरस हँसी हँसने लगी।

"नही, मैं तो सो गई थी। मेरी भाभी देर तक जागती रही थी, पर उन्हाने भी कुछ नही सुना।"

"मार-पीट हुए बिना क्या सुनती ?"

"भाभी भी यही कहती थी। लेकिन धूला भाई अब तक बिना मारे रहा कैसे ?"

'यह तो मैं क्या बताऊँ बहन !" कहकर कुछ रुकी। "खरादी के यहाँ डण्डा उतरवाने मे देर तो लगेगी ही।" कहकर हँसने लगी। भारी साँस लेकर फिर बोली—"यह भी हो सकता है कि कुछ और सोच रहा हो।" नाथी की प्रश्नमयी आखो को देखकर फिर बडबडाई—"कुछ भी हो।"

"और क्या होगा उसका सिर ? तुम्हे जान से मार डालेगा, बस।" और जीवी को "यह भी हो सकता है।" कहती सुनकर नाथी बोली—"तो क्या धूला भाई तुम्हारी तरहो खाने को बच जायगा।"

'क्यो ?" नाथी का जवाब सुनने के लिए जैसे उसके हृदय की गति रुक गई हो।

'क्यो क्या ? कल मेरा भाई कह रहा था कि यदि अबकी बार

जीवी भाभी को मारा पीटा तो गुस्से मे भरा कानजा अब उसे न छोडेगा।"

जीवी को इससे ज्यादा अच्छी बात और क्या सुननी थी ? फिर भी एक भारी साँस लेकर बोली— हमारे लिए दूसरे मे इस प्रकार कौन लडाई मोल लेगा बहन !"

यदि नाथी नखरे के साथ "अच्छा अब रहन दो चुपचाप !" कहकर चुप न हो गई होती तो भी जीवी के गले की यह स्थिति न थी कि वह आगे बोल सकती। बोलन के बदले कदाचित् रो ही पडती।

जब दोनो पानी भरकर लौटी तो चुप थी। अलग होते समय नाथी ने मौन तोडा—"भाभी ! यदि वह कुछ मार पीट करे तो मुझसे कहना, अच्छा ! इस बार तो मेरा भाई ही उसे सीधा कर देगा। काना भाई की जरूरत ही न पडेगी।'

कृतज्ञता की दृष्टि डालकर जीवी अलग हुई।

धूला ने जीवी को क्यो नही मारा यह प्रश्न अवश्य था, पर वह नाडी की धडकन के साथ मन मे यही सोचता रहता था 'इस साली राँड ने तो मेरी नाक काट ली—और वह भी भरी सभा मे।' और कहीं कोई उस पर ताना न कसे, इस भय से वह आस पास के खलिहानों म तमाखू पीने भी नही जा पाता था।

दूसरा दिन भी उसने अपने खलिहान मे ही बिताया। तीसरी रात भी खलिहान मे ही सोया।

जब तक चैत्र की तेरस का चन्द्रमा कुछ कुछ ढला तब तक तो धूला को नीद नही आई। उसके व्यग्र मस्तिष्क मे बीच बीच मे यह विचार भी आता— मुझे उठने दो राँड का मारते मारते मारते अधमरी कर डालूगा !" परन्तु दूसरे ही क्षण दवो की परीक्षा लेने के लिए उद्यत लाल ताती आँखो वाला कानजी उसकी आँखो के आगे आ खडा होता। धूला अक्सर मन मे सोचता रहता— मेरी औरत है और मैं उसका चाहे जो कर सकता हूँ। उसके बीच मे बोलने वाला तू कौन है ?' पर जब

इसके परिणाम पर ध्यान जाता तो उसके पैर काँपने लगते। दूसरी ओ[r]
गुस्सा भी जोर पकड़ता। बहुत सारे विचारों के बाद (जीवी को दण्[ड]
देने को ही) धूला उठा। गुण्डी को लपेटकर झोपड़ी के कोने में रखा।
यद्यपि दबे पैरों जाने की कोई जरूरत नहीं थी फिर भी इधर उधर
देखते हुए और सावधानी के साथ दूसरी झोपड़ियों को पार करते हुए
वह दो-एक खेत की दूरी पर जलते अलाव की ओर चला।

चाहे तो पैरों की आहट सुनकर जाग गया हो अथवा फिर जागता
ही पड़ा हो पर तुरन्त 'कौन है रे?' कहता हुआ रेशमा बैठा हो गया।
धूला को देखते ही उसकी छाती धड़क उठी— साला कुछ उलटा सीधा
करके—राँड को मारकर—तो नहीं आया है।' और झट पूछा— 'क्या
इस समय घर से आ रहा है क्या?'

झोपड़ी के अन्दर घुसते हुए धूला ने कहा—'धीरे बोल!' और
यह सुनते ही रेशमा के शरीर से पसीना छूट गया। 'पर साले है क्या?
यहाँ मेरे पास क्यों आया है?''

धूला का मुँह फक हो गया। बोला—'क्या क्या तमाखू पीने भी
न आऊँ? खलिहान में आग बुझ गई''

'तो आज तू खलिहान में सोने आया है?'' और धूला को "हाँ"
कहते देखकर रेशमा दो चार गालियाँ देता हुआ बोला—'तो पहले से
ही बताने में क्या होता था?' धूला को तमाखू देकर शान्ति की साँस
लेने लगा। उसका धड़कता हुआ कलेजा अभी तक अपनी असली हालत
में नहीं आया था। कुछ देर बाद कहा— मुझे तो चिन्ता हुई कि साला
कुछ उलटा-सीधा तो नहीं कर बैठा।''

चिलम में अंगारा रखते हुए धूला ने पूछा— किसका?'

'किसका क्या? अपनी बहू का? मैंने कहा कि कहीं गला-वला दबा
कर आया है क्या?'

धूला ने मुँह से लगी चिलम हटाई। रेशमा की ओर देखकर क्रोध
मिश्रित विवशता से बोला—''यदि गला दबाने की हिम्मत होती तो•

चाहिए ही गया था ?'' और उसने बात करने को मिले अवसर को तुरत पकड़ लिया—' फिर हम आधी रात के समय तेरे पास आता ही क्या रेशमा भाई !''

'मैं जानता था कि नाई ठाकुर बिना मतलब नही आयगा। अच्छा, चिलम तो ला !'' कहकर ऊपर उठाये घुटनो पर कुहनियाँ रखकर रेशमा चिलम पीने लगा। धूला पर आँखें गड़ाते हुए सवाल किया, परन्तु धूला को चुप देखकर उसे होठो से चिलम हटानी पड़ी—''बता न, ऐसा क्या काम है ?''

धूला ने फिर बाहर नजर डाली। बोला—''कहता हूँ, पर एक बार तू वचन दे रेशमा भाई ! कि सगे भाई से भी यह बात न कहेगा।''

'अच्छा यह पत्थर की लकीर है।'' कहकर रेशमा ने धूला के दाएँ हाथ की अँगुली से अपनी अँगुली अड़ाई और चिलम मुह से लगाने के पहले कहा—''चाहे सिर चला जाय, पर तेरी बात को बाहर न जाने दूँगा।''

'इतना तो मुझे तेरा भरोसा है।'' कहकर धूला ने फिर इधर-उधर देखा। देखते ही देखते रेशमा के नजदीक आ गया और धीरे से कान मे कहने लगा—' उस राड के ऊपर तुझे मूठ चलानी है। बस !''

रेशमा चौंक उठा— 'लेकिन किस राँड के ऊपर ? क्या स्वय तेरी औरत के ऊपर ! यह तू क्या कहता है ? तेरा दिमाग तो नही खराब हो गया है ?''

धूला का चेहरा काले पत्थर जैसा लग रहा था। बोला—''दिमाग खराब होने जैसी बात है तभी तो रेशमा भाई !''

अरे लेकिन यदि बस कानिया के ऊपर चलाने को कहता तो भी कोई बात थी पर खुद अपनी औरत के ऊपर ''

'यह ठीक है, पर उसका तो देवो का देव भी आकर कुछ नहीं बिगाड सकता, यह मैंने कल देख लिया। इसलिए मुझे तो यह औरत ही मार डालनी है। मेरे घर मे ऐसी औरत की जरूरत नही।''

"अरे, लेकिन ऐसा है तो निकाल बाहर कर।'

धूला ने मुह के पास लाई हुई चिलम को फिर हटाया और कहा—"यदि निकाल बाहर करूँ तो भी यह रांड । लेकिन उसकी अपेक्षा यह क्या बुरा है? उसे भी पता चले कि कोई मिला था?"

एक बार तो रेशमा के मन मे ऐसा आया कि धूला को लात मार कर झोपड़ी के बाहर निकाल दे। लेकिन इसी बीच एक दूसरा विचार आया। पूछा—'लेकिन यह कैसे जाना कि मैं मूठ चलाना जानता हू।"

"यह क्या कोई छिपा रह सकता है? तूने ही तो उस दिन मुझसे कहा था। जब मैं उस कानिया के छू मतर से डर रहा था तब तूने कहा था कि नही कि ऐसे छू मतर तो कितने ही मेरे गोझें[1] मे पडे हैं?' कहकर हसता हुआ बोला—'और आज तू मुकर क्या रहा है?'

रेशमा की समझ मे यह नही आया कि इस आदमी को पागल कहे या चतुर? उस पर हँसे या गुस्सा करे? और नगे बदन बठे धूलिया के दाएँ हाथ के चाँदी के कड़े की ओर देखता हुआ वह किसी विचार मे डूब गया।

खेत मे फैली चांदनी ऐसी धुँधली धुँधली थी जैसे बिलकुल उदास हो। खलिहान मे पडे गेहूँ के भूसे के ढेर भी अपने अस्तित्व का ज्ञान कराने के लिए पूरी तरह चमक रहे थे। बगल का गाँव लम्बी चादर ताने सो रहा था। पश्चिम दिशा मे ढलता हुआ चाद इस प्रकार ठहरा दिखाई देता था जैसे वह रेशमा और धूला के बीच होने वाले कौल करार को सुनने मे दत्तचित्त हो।

रेशमा की झोपडी से कुछ ही दूर पर कानजी की झोपडी थी। आज भी वह रात की तरह जागता पडा था। उसे प्रतिक्षण ऐसा अनुभव होता रहता था जैसे जीवों की पीठ पर चक्की के पाट गिर रहे हो। आज

१ यह ब्रज के ठेठ ग्राम मे प्रचलित शब्द है, जिसका अर्थ 'जेब' होता है। गुजराती की लोक भाषा का सास्कृतिक ऐक्य की दृष्टि से ब्रज की लोक भाषा से घनिष्ट सम्बन्ध है।

दो दिन से उसके कान धूना के घर की ओर लगे थे। आज भी उधर लग रहा था— अभी धूलिया बैठा हो जाएगा, अभी जीवी की चीख सुनाई देगी। एक बार तो जीवी की चीख का सा भ्रम होने पर उसने लाठी भी सम्भाली। दूसरी चीख सुनने के लिए कान लगाये, पर पहले जैसी ही गहरी शान्ति देखी तो लाठी फेंककर हँस पड़ा। अपनी इस मूर्खता से वह ऊब गया— यदि मार भी डालेगा तो तुझे उससे क्या? तेरा और उसका क्या सम्बन्ध है जो तू इस प्रकार पक्ष लेने के लिए दौड़ने को तैयार हो जाता है? परन्तु दूसरी ओर उसका दिल पहाड़ पर चढ़कर पुकारता था— नहीं-नहीं वास्तविक सम्बन्ध तो मेरा और उसी का है। धूलिया का तो कुछ भी नहीं है। वह तो केवल उसके शरीर का ही मालिक है। पर उसके प्राण तो ' लेकिन इन विचारों से भी वह तंग आ गया। एक भारी साँस लेकर बोला— नहीं-नहीं काना, इस अपना-पराया करने में कोई सार नहीं। दुनिया तो तुझे ही मूरख कहेगी।' और उसकी व्यावहारिक बुद्धि ने उसे सुझाया—कि वह गाँव छोड़कर—अधिक नहीं तो कुछ दिनों के लिए ही—किसी दूसरी जगह चला जाय। उसने निश्चय भी कर डाला।

दूसरे दिन उसने अपना यह निश्चय हीरा को भी बता दिया— हीरा, मेरा विचार है कि मैं इन गर्मी के फुरसत के दिनों में दो महीने कहीं नौकरी कर आऊँ।'

बात तो ठीक है पर तुझे नौकरी मिलेगी कहाँ? क्या कहीं खोज ली है? हीरा ने पूछा।

'खोजी तो नहीं पर अपनी जात का वह कुबेर भाई है न? उसके पास जाऊँगा। चाहे जहाँ लगा देगा। और अपने गाँव का नाना कटारा भी तो वहीं है?' कहकर हँसता हुआ वह बोला—'अहा! अरे, इतने आदमी जाते हैं जब उनको नौकरी मिल जाती है तो क्या मुझे नहीं मिलेगी?'

हीरा ने सोचा कि भले ही नौकरी न मिले, पर इस प्रकार कुछ

समय के लिए कानजी दूर हो जाय तो अच्छा ही है और इस विछुड़ती जाडी के शोर में एक भारी साँस लेता हुआ बोला—'हाँ-हाँ, बहुत अच्छा है। दो महीने को चला जा !''

उसके बाद बड़े भाई के सामने भी यह सब बात रखते हुए वह बोला—''चार पैसे मिल जाय तो दिवाली तक उस बनिये का भुगतान हो जाय।''

पसे की बात आते ही भाभी तो झट राजी हो गई, पर बड़े भाई को यह ठीक नहीं लगता था। घर की मजदूरी से परदेश की मजदूरी कोई ज्यादा मुश्किल न थी, बल्कि छाया ही छाया में काम करना था फिर भी उन्होंने सोचा—'चाहे जो कुछ हो, है तो परदेश ही।

बड़े भाई जैसे शरीर से अशक्त थे, वैसे ही हृदय मे भी दुर्बल थे। कानजी से 'हाँ', तो कह दी, पर परन्तु डबडबाते आसू निकल पड़े। उस दिन जीवी वाली बात पर वे कानजी से नाराज हो गए थे। कानजी को धमकाया भी खूब था। परन्तु आज वे पछता रहे थे। उन्हे सन्देह हुआ कि उनके लड़ने के कारण ही कानजी नाराज होकर जा रहा है। पूछा—'तू मुझसे नाराज होकर तो नहीं जा रहा है, काना ?'

कानजी की आवाज भी धीमी पड़ गई। 'नही बड़े भाई, तुमसे क्यो नाराज हूँगा ? यह तो मैंने सोचा कि फुरसत के दिन हैं, सो यदि चार पसे मिल जायँ तो अच्छा ही है। और कुछ नहीं तो कम से-कम कपड़ा का काम तो चल ही जायगा, बड़े भाई !'' कहकर कानजी ने हँसने की कोशिश की।

उसके बाद भी बड़े भाई ने कुछ छोटी-मोटी शकाएँ उठाई। लेकिन ऐसा करते हुए उन्हे लगा कि इससे कानजी का दिल दुखता है। जब उसका जी विसे जाने का मन है तो भले ही चला जाय। यो सोचकर बोले—''लेकिन तू आज ही तो नहीं जा रहा है न ?''

'आज तो नही, पर कल कपड़े धोकर मैं परसो चला जाऊँगा। यो ही 'जाऊ-जाऊँ' करके दिन क्यों बिगाड़ू ?''

प्रकार का मोह अवश्य है। उस बेचारी का पीहर का रास्ता तो बन्द हो गया है, इसलिए अब पीहर या ननसाल, जो कुछ भी समझो, एक तुम्हारा या इधर हीरा का—ये दो घर ही है न ?"

"हाँ-हा, क्या नही ?" कहकर उस दिन जीवी को दी हुई गालियो की याद आते ही बडे भाई का मुँह कुछ उतर गया। पछताते हुए बोले —"न जाने उस दिन मुझे क्या सूझा ? बेचारी का बिना बात गालियां दी। तुम्ही उससे कहना भगतजी कि इस ओर आवे जावे।' फिर कहा—'ठीक तो है। उस बेचारी के है ही कौन ?"

भगतजी ऐसे मुग्ध भाव से हँसने लगे जैसे इस भोले भाले व्यक्ति पर हास्य का फुहारा छिडक रहे हो।

बडे भाइ ने खडे होते हुए फिर पूछा—"तो कानजी के जाने मे और कोई बात ता नही है भगतजी ? तो भले ही चला जाय। तुम्हारी वही बात भी ठीक है। और कुछ नही तो इस बहाने शहर तो घूम आयगा। घर रहकर भी इन फुरसत के दिनो मे कौन-सी दौलत कमाता ? भले ही चला जाय।"—और या बडबडाते हुए वे घर की ओर चल दिए।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

लाज भी रखी

पूनम के बाद की रात थी। भगतजी, हीरा तथा अन्य मित्रो के साथ अन्तिम बातें करके कानजी आज आधी रात को झोपडी पर आया था। खलिहान मे तो कुछ था नही। गेहूँ की राशि भी आज घर ले गया था। तो फिर घर न सोकर वह इस झोपडी पर किसलिए आया था? लेकिन इसकी तो खुद कानजी को भी खबर न थी। बडे भाई ने झापडी से गूदडियाँ लाकर ओसारे मे सो रहने को कहा था, पर उसने मना कर दिया। इसका कारण यही था कि इन आठ महीनो से खेत पर सोने वाले कानजी को घर सोने मे कुछ परेशानी सी लगती थी। कभी चारो ओर दूर-दूर तक पहाडो पर फैली चाँदनी देखना, तो कभी अँधेरे मे तारो भरा आकाश निरखना, कभी आकाश मे घूमती एकाकी बदली की ओर दृष्टि लगाना तो कभी गर्जना करके सीम[1] को गुजाने वाले काले बादलों के रग ढग का आनन्द लेना। इसके अलावा टूटते हुए तारे, तो फिर चमकते हुए जुगनू उल्लू की घू घू तो सामने वाले पहाड मे रहने वाले वनराज की दहाडें—और इसी प्रकार की कितनी ही विचित्रताओ के साथ आत्मीयता स्थापित कर चुकने वाले कानजी को घर के आगे नीद कैसे आ सकती

[1] गाँव मे किसान के खेत जिस दिशा मे होते हैं उसे 'सीम' कहते हैं। सीम वैसे सीमा से बना है, जिसका अर्थ है दूसरे गाँव की सीमा तक का वह प्रदेश जिसमें गाव वालों के खेत हों।

थी ? गाँव मे एक तो गाने का मन ही नही होता और यदि हो भी तो कोई गाया थोडे ही जाता है ? कानजी को चाहे कवि न कहो पर उसके हृदय को तो कवि हृदय कहना ही पडेगा । और जितना सबध शरीर के साथ रक्त का होना है उतना ही सम्बन्ध निजन वातावरण मे स्पन्दित प्रकृति के साथ कवि हृदय का होता हो तो इसमे आश्चय ही क्या है ?

लेकिन आज कानजी को न तो आकाश के शिखर के नीचे खडा चन्द्रमा बुलाता था और न चाँदनी से हँसते हुए खेत बुलाते थे । महल से भी कही अधिक रमणीय लगने वाली झापडी का मोह भी आज उसे न था । आज तो वह इन सबको अन्तिम नमस्कार करने आया था—कुछ देर अकेला रहने के लिए ।

झापडी मे आकर कानजी ने साफा उतारकर एक ओर रख दिया । बिछौना दरवाजे तक खिसकाया और गून्डी को झाडने के बाद साफे का तकिया लगाकर चिलम भरकर शाति से बैठा ।

कल तो जाना ही था ।

नौकरी को दूसरे की तावेदारी कहकर धिक्कारन वाला कानजी नौकरी करन वाले आदमियो से अक्सर कहता—"तुम शहर के रहने वाले आदमी गाँव गाँव की बातें क्या जानो ? यहाँ तो खुले म यह मजे से घूमना ।" आज उसे यह यह मजे से घूमना छोडना पड रहा था । लकिन उसे इसका इतना दु ख न था । इसकी अपेक्षा कई गुना दु ख तो जीवी का था । 'यह बेचारी एक मेरे ही हृदय के कारण यहा आई थी और आज मैं इसे ही छोडकर जा रहा हूँ । इसकी भामा क्या कहेगी ?' यह सोचने के साथ ही उसने चिलम को बगल मे फेंक दिया । मुह से एक भारी साँस ली । नाक से उस बाहर निकालता हुआ कहन लगा—"किसे खबर थी कि ऐसा होगा ।"

झापडी के अलाव मे पडे कण्डो से निकलते धुएँ के दो चार पतले डोरे एक होकर आकाश की ओर चढ रहे थे । चन्द्रमा भी ऐसा लगता था जैसे अभी वही का वहीं खडा है तो अभी बाँस बराबर ऊपर जान

खड़ा हुआ है। रोनी सूरत बनाकर लेटे हुए कानजी को जब अपनी दुर्बलता का ध्यान आया तो वह खड़ा हो गया। बगल में पड़ी चिलम उठाई। तमाखू भरते भरते मन मे कहने लगा—'सच बात है। यह सब माया ही है। परन्तु इस गीता वाले 'माया' शब्द का अर्थ तो इस प्रदेश में 'प्रेम' होता था।' और ग्राह्य अर्थ का विचार आते ही हँसी की ठनक के साथ कानजी कहने लगा— 'जो माया लगी है उसी का तो यह परिणाम है।"

तमाखू भी बेहोशी-सी मे पिया। फिर उसके हृदय मे बेचैनी की खलबली मचने लगी। जैसे उसके अग में भड़कन हो रही हो। ऐसे न तो आड़े लेटना ही अच्छा लगता था और न उठकर बैठे रहना ही। जब उसे यह लगा कि वह अभी-अभी रो पड़ेगा तो उसने अपने प्यारे चन्द्रमा की ओर देखा, परन्तु वह भी उसे रोता हुआ सा जान पड़ा। कानजी ने रोने के बदले गाना शुरू किया—

"क्यों रोवे रे पागल चन्द्रमा!
क्यो सोम भरे हैं नैन?
धरती माता क्यों डूबी शोक में—
तेरो हियो भयो क्यों बेचैन?"

परन्तु इस दोहे के बाद कानजी ने स्वयं अपना विरोध किया—

"नहिं रोवे रे कोई चन्द्रमा
वहाँ सोम मे नींद गहराय।
धरती माता तो पड़ी भर नींद मे
(यह तो) तेरो हियरो पछाड़ें खाय।"

इसके बाद कानजी कुछ रुका परन्तु तत्काल ही उसका घुटता हुआ हृदय ऐसे बहने लगा जैसे उसे अपने बहाव के लिए सीधा मार्ग मिल गया हो। ऐसे निर्बल हृदय के लिए उसने भगवान् की लाख-लाख विशेषताओं मे भी एक भूल खोज निकाली—

"खूब बनायो रे ऊँचो आसमान
दिन दिन को निरा[illegible] ।

घूमतु राख्यो रे गगन दीपक
अपनी धरती को मोंहि है अभिमान ॥
वामें सजायो पूब आदमी
अपनी कला को कलमी समान
(पर) धयो रे दियो कोमल करेजवा
भूल्यो भूल्यो अरे भगवान ।"

सिर हिलाते हुए और हाथ का इशारा करते हुए कानजी ने अंतिम पंक्ति का दूसरी बार दोहराया—

भूल्यो भूल्यो अरे भगवान ।

आज यदि भगवान् भी कानजी की लपेट मे आ गया होता तो अनेक बार भगनजी के साथ विचारा गया और उलझन पैदा करने वाला यह सवाल—'अरे भगवान् ! हम तो या धूप मे मजूरी करने पर भी भूखे मरें और यह बनिया छाया मे बैठा रहने पर भी मजा करे । इसका भी कोई कारण है ?' तो वह हरगिज न पूछता । वह तो जो भगवान् के अदृश्य होने पर पूछता आया था वही उसकी मौजूदगी मे भी पूछता—

"पैदा कियौ तौ प्रभु भलो कियौ
भलो राख्यौ खान अरु पान ।
पर कहा रे परयो हो बिना प्रीत के
(अरे मूरख) कच्चे धागे तें बाँध दिये प्रान ।"

एक भारी सास लेकर कानजी बोला—"एक जगह प्रेम से अलग रखता है ता दूसरी जगह प्रीत का कठिन पानी चढ़ा चढाकर हृदय को चूडी जैसा कर डालता है ।" और कुछ रुककर "होगा, तेरी गडबड तू ही जाने राम !" कहकर हँसा, लेकिन बिलकुल फीका । वह बडी देर तक चन्द्रमा की ओर ऐसे देखता रहा, जैसे उससे विदा ले रहा हो । बिछौने पर लम्बा होकर फिर सोचने लगा—'न जान इस प्रदेश मे इसे मैं फिर कब देखूगा ?'

एकाकी पथ काटने वाला चद्रमा पश्चिम की बजर भूमि मे पहुँच

चुरा थ । धरती ऐसी शा त थी जैसे वह अन्तिम नींद ले रही हो । नींद से चौंक उठने वाले मुर्गे भी 'अभी तो देर है' कहकर फिर शान्त हो जाते थे । कानजी की बन्द आँखो को देखकर ऐसा लगता था जैसे वह भी सो गया हो । लेकिन वस्तुत वह तन्द्रावस्था मे ही था । कभी उसे रहट दिखाई देता था तो कभी अपने को आम के नीचे बैठा पाता था । परन्तु जहा जाता था, जीवा उसके आगे आगे रहती थी ।

एकाएक पूव दिशा मे स्थित गाव से एक चीख सुनाई दी—"मार डाला रे ! वह जा ता है ! चोर र चार पकडना ।'

कानजी बिछौने से उछलकर बैठा हो गया । झोपडा मे लगी बल्ली को खींचकर, जिस ओर से चीख आई थी उसी ओर—धूला के घर की ओर—चारो ओर कान और आख रखता हुआ, तीतर की चाल से दौडा । धूला के घर के पास वाली इमली के नीच छिपकर माचा सँभालता तथा आस पास के बाडा मे आँखें गडाता हुआ खडा हो गया । इतने मे ही पीछे से परो की आहट सुनाई दी । मुखिया और एक दूसरा आदमी हाफते हुए आ रहे थे । कानजी पर नजर पडते ही पूछ बैठे—'कौन है रे ? और कहीं भाग न जाय इसकी सावधानी रखते हुए डरते डरते कानजी की ओर बढने लगे ।

यह तो मैं हूँ मुखिया ! मैंने कहा कि यहाँ खडा हो जाऊँ । यदि कोई आता होगा तो

'अच्छा !' कहकर मुखिया ने तिरछी नजर स साथ वाले आदमी की ओर देखा और फिर जैसे किसी विचार मे हो ऐसे मुहल्ले की ओर मुडते हुए बोला— 'लेकिन यह चीख किसने मारी ?

पीछे पीछे चलते हुए कानजी ने कहा—"आवाज तो ऐसी लगी, जैसे रेशमा की हो !"

धूला के घर मे शोर गुल होता सुनकर ही कानजी के पेट म आग लग गई । क्षण भर मे कितने ही विचार घूम गए । घर मे घुसते ही नानी बुढिया से पूछा— यह सब क्या है नानी काकी ?"

"देखो ना सही भाई ! बडी देर तक तो हम दोनो बैठक मे बातें करते रहे हैं। उसके बाद पता नही कौन आया और उसने किस जनम का वैर ''

कानजी का धीरज चुकने लगा। बीच मे ही पूछा— 'लेकिन इसे बैठक मे मारा या यही '

"हाय-हाय बैठक मे ही ! उसकी खटिया तो देख, खून मे सराबोर '

कानजी के गुस्से का ठिकाना न रहा—"तो तुम इसे घर मे क्यो लाई ?" कानजी की इस गुस्सा भरी आवाज ने गाव के दो चार लोगो का ध्यान खीचा। एक ने तो यह भी कहा – अरे भाई ! घर मे लाने से क्या बिगड गया। बैठक म किसी की भली-बुरी नजर पडती, इसलिए हमने इसे घर मे ले लिया। इसमे इतना ज्यादा तेज क्या हो रहा है।

'लाख मारने के लिए और क्या ? अब जब काका (सरकार) पूछे तो जवाब देना ! यहाँ लाये तो उसके घर मे ही '

यह पास था इसलिए जल्दी मे यहा ले आए।

दूसरे ने कहा— और यदि नानी काकी ने मना कर दिया होता तो किवाड खुलवाकर बूढे के पास ले जाते।" और व्यग्य म पूछा – ' लेकिन इसमे इतना ज्यादा गरम क्या हो रहा है ?"

कानजी की जीभ पर न जाने क्या क्या आ रहा था, पर यह आदमी अपने रिश्तेदारो म था और कुछ प्रतिष्ठा वाला भी था इसलिए इतना ही कहा— तो फिर यह सब थानेदार से कह देना ! '

बुढिया तो रोने जैसी हो गई— हा भाई ! मुझे क्या खबर थी कि ऐसा होगा ? दु ख तो यह है कि घूला भी घर नही है।" और यो कहती कहती वह मुखिया की खोज मे इधर से-उधर मारी मारी फिरने लगी। *मुखिया थानेदार को खबर करने की व्यवस्था के लिए बाहर गये थे।* लौटकर वह कानजी के पास आई। घबराई हुई आवाज मे बोली— "क्यो काना, मरा जो कुछ होना था सो तो हो गया, उसे तो मैं जरा

राख डालकर ठीक कर लूगी । लेकिन इसे अब मनारे के घर ले जाओ !"

"जो होना था सो तो हो गया, अब क्या है ?" कहते हुए कानजी बोला—"इसमे कोई बुराई नही । य सब गवाह हैं न ? भले ही यही रहने दो !" कहकर कानजी नीचे सुलाये हुए रेशमा की ओर चला।

रेशमा की नाक से बहते खून को देखकर कानजी बोल उठा—"अरे, लेकिन तुम सब देख क्या रहे हो ? जरा सी रुई लाओ न ! जलाकर घाव मे भर दो !" दो चार आदमी ऐसे ताक रहे थे जैसे वे कानजी के कथन पर विचार करने को उद्यत हो। कुछ कानजी के कथन को ही दुहरा रहे थे—"हाँ रे भाई ! कोई रुई तो लाओ !" लेकिन सच पूछो तो कुछ सूझ ही न पडता था। कानजी ने बगल मे खडी बुढिया से कहा—"नानी काकी ! जरा रुई लाओ न ?"

दूसरी ओर मुखिया थाने मे खबर करने की व्यवस्था मे लगे थे। उससे निबटकर लौट रह थे कि आँगन मे उनके काका के लडके भीमा ने धोती का छोर खीचा। मुखिया को कुछ शक हुआ। भाई के पीछे चलते चलते कहने लगे—'ये चौकीदार कहाँ मर गए। थाने मे खबर करने को कहा था, पर अभी तो ज्यादा से-ज्यादा तमाखू पीने मे ही चिपटे होगे।"

बाडे के खलिहान से निकलते हुए भगतजी ने इन दोनो भाइयो को अपने घर के पास खडा देखा। कुछ घुस पुस करने का शक होते ही एक बार तो पीछे लौट जाने की सोची—छिपकर सुनने की लालसा भी जगी। लेकिन दूसरे ही क्षण जैसे कुछ देखा ही न हो, ऐसे नीची नजर करके चलते हुए खाँसा।

मुखिया को जल्दी मे कहते हुए सुना—'तुम जाओ न भाई ! इन दोनो जनो को ही थाने भेज दो ! साली यह क्या गजब की बात है भगतजी ! इतनी उमर हो गई पर ऐसा तो कभी नही सुना। तुम जरा मरहम-पट्टी करो न ! मैं उन चौकीदारो को भेजकर आता हूँ।" कहकर गाँव की ओर जाते हुए बोले—'ऐसा गजब तो कभी नही देखा।"

मरहम-पट्टी से निवृत्त होकर बाहर आने पर भगतजी ने कानजी से

कहा—इस घर म जा लिया सो एक प्रकार से ठीक नही किया कानजी!'

भगतजी के घर की ओर जाते जाते कानजी ने भी यही रोना रोया। भारी सास लेकर कहा—"गवाह हैं इसलिए चिन्ता तो नही है, पर तो भी न जानने वाले के मन मे शक ता रह ही जायगा।"

थानेदार की राह देखता हुआ गाँव अपनी अपनी रुचि की टोली मे मिलकर नाना प्रकार के तर्क कर रहा था। भगतजी के ओसारे म भी भीड जमी थी। यदि भगतजी, कानजी और हारा ये तीनो ही होने ता अपने तर्क दौडाकर देखते? इन सबके देखते हुए, एक ओर जाकर घुस पुस करना ठीक न समझकर वे इस समय अपने मस्तिष्को मे ही इधर-उधर की *अटकलें भिडा रहे थे।*

दिन निकलते ही गाव मे घोडो की टापें सुनाई देने लगी। थानेदार, दीवान और दा तीन सिपाहियो को देखते ही गाँव वालो की छाती पर सिला सरक गई। औरतें तो रह भी रही थी—' जो नाशपीटा आया है, वह न जाने कितनो का कचूमर निकालेगा।" हर बार एक ही जुर्म करने वाले चार पाच जने तो निकलते ही थे। फिर भले ही बाद मे एक—और कभी कभी पूरा एक भी न निकलता।

खटिया मे पडे रेशमा के बयान लिये गए। रेशमा से पूछे गए भाँति भाँति क प्रश्नो के उत्तर का सार यह था—' मेरा पडोसी धूला दूसरे गाँव म अपने जिजमानो की हजामत करने गया था। उसने मुझसे कहा था कि वह रात को वही रहेगा। 'बुढिया की नीद का कोई ठिकाना नही' कहकर उसने मुझे ताकीद की थी कि मैं उसके छप्पर पर पडे मक्का के भुट्टो की देख भाल करता रहूँ। इसके लिए मैंने अपनी खाट दोनो बैठको के बीच मे बिछाई थी। मैं नीद मे था। किसी ने मेरे सिर पर चाट की। चोट किसकी थी, यह मुझे पता नही। चोट करने वाले को मैं तनिक भी नही पहचान सका। लम्बा था। शरीर भी गठा हुआ था। क्या-क्या पहने था, इसका मुझे ठीक पता नही। लेकिन सब कपडे पहने

था, इसकी मुझे कुछ कुछ याद है। छप्पर के नीचे होकर वह सीधा खेतो की ओर भागा था। उसके भागने के बाद ही मुझे चिल्लाने का होश आया। इसके बाद लोग आ गए।" आदि आदि।

यह बयान लेने के बाद थानेदार ने रेशमा की अच्छी तरह तलाशी ली। कुछ और भी सवाल उठे, पर इतने मे ही मुखिया न घायल की बिगड़ती हुई दशा का भान कराते हुए कुछ कहा। थानेदार ने खाट तैयार कराई।

आठ युवक भी चुन लिये गए। उनमे कानजी, हीरा मनारे आदि भी थे। इनम से चार युवका ने रेशमा की खाट को कधे पर रखा और प द्रह कोस की दूरी पर स्थित सरकारी अस्पताल को चल दिए।

मुखिया के यहा जल पान करने के बाद थानेदार चौपाल पर गये। सारा गाँव—घर पीछे एक एक आदमी—आकर बैठा था। खाट पर लेटे हुए थानेदार ने हुक्के की नली हाथ मे लेते हुए कहा—"वारदात गाँव मे हुई है इसलिए गाँव ही मुजरिम का पता लगाकर दे।"

यह तो है ही सा'ब[१]! गाव के मामले का पता गाँव ही तो लगा येगा।" कानजी के बडे भाई बोले।

"लेकिन सा'ब! गाँव के नुक्कड पर घर है—कोई बाहर का भी आकर" यो कहते हुए मनारे के बूढे को 'चुप साला सूअर! बाहर का काहे को आयगा। उसके पास क्या होरे-मोती थे? सूअर कहीं का?" कहकर थानेदार ने चुप करा दिया। साथ ही इस इल्मी जबान और चेहरे ने समूचे गाँव को गूगा बना दिया।

गाँव था इसलिए यदा कदा वारदातें तो होती ही रहती थी, परन्तु ऐसी वारदात कभी नही हुई थी। कौन किसको दोषी ठहरावे। अगर मुजरिम पकड़ा गया होता तो अ त मे दो चार आदमियो ने बीच मे पडकर थानेदार को अनुनय विनय करके ही पाँच पच्चीस रुपये मे समझा दिया होता। इसलिए सारा दिन सोच विचार मे चला गया।

१ 'साहब का देहाती बोल चाल का रूप।

अन्त मे मुखिया ने गाँव की ओर से प्रार्थना की— 'सा'ब, जो होना था सो हो गया। गाँव मे हुआ है तो गाँव दण्ड भोगेगा लेकिन जैसे भी हो वसे मामले को यहाँ का यहीं दबा दो।"

"यह नही हो सकता मुखिया! उस आदमी को अस्पताल न भेजा होता तो अलग बात थी पर अब तो उसका नाम सरकारी रजिस्टर मे चढ गया है। फिर भी मैं देखूगा। लेकिन एक बार मुझे मालूम तो करना ही होगा कि यह मामला क्या है? बचाव के लिए जो-कुछ होगा सो करूँगा।

"तब तो सा'ब यह मामला सरकार को ही अपने हाथ मे लेना पडेगा। हममे से तो किसी को कुछ सूझता ही नही। जिसे आप दोषी बतायें उसे ही सामने कर दें। और हम क्या कर सकते हैं?'

दूसरे दिन थानेदार ने मामला हाथ मे लिया। एक कोठरी म खाट बिछाई गइ। जाँच शुरू हुई। दूसरे गाँव से आये धूलिया को ही पहले बुलाया गया। 'औरत कैसे की और कब?' इस सवाल से लेकर ठेठ आज तक के उसके चाल चलन उसके लिए हुए झगडे आदि के बारे मे पूछा गया।

इसके पहले मुखिया ने एक वाक्य म कह दिया था—"धूलिया, मौका है—जिन्दगी भर का काँटा निकला जाता है इसलिए जो कुछ हो सो सब कह डाल!'

मूख धूलिया ने आरम्भ से लेकर अन्त तक सारी बातें कह डाली। उसके बाद रेशमा को घर मे घसीटने वाले लोगो के भी बयान—मौखिक ही लिये गए।

घायल को छोडकर आने वाले कानजी को सिपाही ने खाना खाते से उठाया। लगभग सारा ही गाव स्तब्ध हो गया था। लेकिन जब से उस रात का मुखिया ने कानजी को छिपा देखा था तभी से उसे भरोसा हो गया था कि यह मामला इधर ही—अपनी ओर ही ढलेगा।

"खैर, देखें क्या होता है? जैसा होगा देखा जायगा।" सोचता हुआ

कानजी थानेदार के पास पहुँचा ।

थानेदार की आखो से घबराय बिना ही कानजी ने यह सोचकर कि सच कहे बिना छुटकारा नही है इसलिए जो था सो सब—धूला को औरत कराने और अपने तथा जीवी के बोल चाल होने की बात तक को कबूल कर लिया । अन्त मे कहा— 'लेकिन सा'ब, मेरे और उसके बीच और कोई सम्बन्ध नही । कहो तो गगाजली उठाऊँ !"

गगाजली तो अपने गाँव के सामने उठाना, यहा तो कानून की पकड मे आ गया है । इसलिए बस ! सच हो या झूठ, पर अब तू बच नही सकता । इसलिए सोच समझकर जवाब देना ! बयान सब तेरे खिलाफ पडते हैं ।"

न जाने क्यो कानजी को देखते ही थानेदार के मन मे उसके लिए एक प्रकार का पक्षपात पैदा हो गया । इसीलिए तो बिना गाली क वाक्य बोले । नही तो जैसी प्रथा अग्रेजी मे नाम के आगे आर्टिकल लगाने की है वैसी ही प्रथा इस पुलिस विभाग म —वह भी रियासतो मे तो विशेष रूप से—गाली देने की होती है । गुस्सा तेज होने पर तो एक साथ चार पाच गालियाँ तक इस्तेमाल की जाती हैं । वैसे जब मिजाज ठण्डा हो तो गालिया का अनुपात खिचडी मे चावल और दाल के बराबर ही रहता है ।

उसमे भी कानजी जैसा साधारण आदमी—वह भी अपराधी—यदि बच जाय तो यह सौभाग्य ही समझो !

कानजी ने उस रात की सारी कहानी कह सुनाई । लेकिन जैसे ही उसने अपने चीख सुनने और अपने दौडकर आने की बात कही कि थानेदार की आँखें फटने लगी । थानेदार को यह तो यकीन हो गया था कि यदि रेशमा का घायल किया गया है तो केवल स्त्री के लिए ही । बिना इसके कोई नाक पर चोट नही करेगा । धूला के घर मे सुलाये हुए रेशमा को पीछे से लिया गया होगा यह बात वह मान ही नही पाता था । इस विषय मे मुखिया से पूछ देखा था और उसने भी कान पर हाथ रखकर कहा था— 'भगवान् जाने सा ब' पर जब मैं आया तब तो यह घर म ही

था।" इसके अलावा मुखिया ने गाव आई हुई माता के समय कानजी के साथ हुई अनबन, धूला और कानजी की खट पट । धूला और रेशमा की मैत्री आदि छोटी मोटी बातें भी बता दी थी।

थानेदार ने कानजी से कहा—"यदि तू धूलिया के घर मे घुसने न गया होगा तो कम से कम पहरा देने तो गया ही होगा। सच-सच बता दे ! यह मामला तेरे, धूलिया और रेशमा—इन तीन के बीच बना है। इनमे धूलिया तो दूसर गाँव गया था। सबूत मिलने पर वह तो छूट जायगा। लेकिन तेरा क्या होगा ? तू खलिहान से सीधा आ रहा था, इसका कोई सबूत है ?'

"हा सा ब, मुखिया और बाला भाई ने मुझे देखा था।'

मुखिया को बुलाया गया। उ होने कहा—'हमने तो सा ब, जो देखा है, वही कहेगे। कानजी की कही बात तो सच है, पर मैंने इसे इमली के तने से सटा खडा देखा था।"

"खलिहान से आते हुए नही देखा ?"

"नही सा ब !" कहकर मुखिया कानजी के मुँह की ओर देखकर बोला— 'जो देखा है सो ही कहा जायगा। तुझसे झूठ ता '

' लेकिन तुमसे झूठ बोलने को कहता कौन है ? ' कहकर कानजी हँसा। बाला ने भी मुखिया जैसा ही बयान दिया।

अब धूला की औरत को बुलाने की बारी आई। गाँव के लोग थानेदार के आगे गिडगिडा उठे—"सा ब, औरत को अदालत चढाने से तो गाव की नाक कट जायगी।"

"अच्छा अबी देखते है।" कहकर थानेदार कानजी की ओर हाथ करते हुए बोला—"इसकु पेरे[1] मे बिठाओ ! इस वक्त उसकी आँखें बदली हुई थी।

"पेरे मे बैठने से मैं इन्कार नही करता सा ब, पर मेरी एक अरज है।"

१ पहरे

"बोल क्या है ?"

"सा'ब, इसके अलावा और जाँच भी होनी चाहिए। यदि धूलिया के घर का मामला निकलेगा तो मैं सरकार के हर दण्ड को भुगतने के लिए तैयार हूँ। लेकिन इससे पहले "

"अच्छा, अभी तू जा इधर से।" थानेदार ने गुस्से से कहा। और घड़ी भर हुक्का पीने के बाद मुखिया को बुलाया। रेशमा और दूसरे किसी के बीच हुई तकरार के विषय मे प्रश्न किया।

मुखिया ने याद करते हुए कहा—"छ महीने पहले खेत मे ढोर घुसने के बारे म हुई थी सा ब। दाना कटारा तलवार लेकर उसे मारने आया था।"

'अच्छा, बुला दाना कटारा कु।'

बाद मे दाना कटारा की तलवार भी मँगाई। दुर्भाग्य से तलवार की नोक भी लोहू वाली निकली। दाना ने कहा— सा'ब, इससे मैंने गोह मारी थी।" उसके गवाह भी मिल गए। तो भी दाना को पहरे मे ही रखा गया।

रात को भी दोनो को पहरे मे ही रहना पडता, परन्तु गाँव के लोगो ने और उनमे भी खास तौर से भगतजी ने थानेदार को समझाया—"साहब, यदि भाग जायँगे तो हम—सारा गाव तो है ? इसमे तो सा'ब, गाँव की बुराई दिखाई देती है।"

दिन निकलने से पहले हाजिर होने की ताकीद के साथ थानेदार ने उन्हे छुट्टी दे दी।

कानजी को धूला के घर की ओर मुडते देखकर बडे भाई से बोले बिना न रहा गया—"क्या अभी तक पेट नही भरा जो फिर "

कानजी ने बीच मे ही कहा—"तुम जाओ न, मुझे कुछ पूछना है, वह पूछकर ही आऊँगा। और होठ चबाता हुआ वह धूला के घर की ओर चलने लगा। जीवी को जानता था इसीलिए उसे सन्देह हुआ— "हो सकता है कि रेशमा यहीं घुसा हो और बिगडी हुई जीवी ने ही

उसकी मरम्मत कर ली हो !"

दरवाजे के आगे खडी खडी हुलास सूघती हुई बुढिया की परवाह किये बिना ही उसने ओसारे मे मिट्टी लगाती जीवी को औतालो के पास खडे होकर बुलाया। कानजी को दखने ही जीवी उठी। बिना तनिक भी झिझके उसके पास जा खडी हुई। धीमी आवाज से कानजी ने कहा—"जो हो, सो मुझसे सच सच कह दे। जरा भी मत घबरा ! जब तक मैं बैठा हूँ तब तक तुझे जरा भी आच न आने दूगा। लेकिन जो हो सो !"

लेकिन है क्या ? मुझसे कुछ कहे बिना मैं क्या बता दूँ और तुमसे तो मैं कुछ छिपाऊँगी नही।' जीवी की आवाज कुछ ढीली पड गई।

"मैं कहता हूँ, यह वारदात तेरे घर मे तो नही हुई ?"

साधारण दिन होते तो जीवी को शायद यह बुरा लगता, पर आज के प्रसग की गम्भीरता वह समझती थी। इसलिए उलटे-सीधे प्रश्न न पूछकर उसने जवाब दिया—'नही इसके लिए तुम निश्चिन्त रहो, ऐसा कुछ भी नही है।"

"क्या उस समय तू जाग रही थी ?"

"जब तक तुम गाते रहे तब तक तो मैं जागती रही। उसके बाद घडी-भर के लिए आख लगी कि यह चीख सुनाई दी।"

"बाहर कोई मार-पीट सुनी ?"

'नही, ऐसी कुछ नही सुनी !"

ऐसा है ?" कहकर कानजी बोला—"तो कोई चिन्ता नही"

अब तक धडा धड जवाब देती जीवी की आँखो से फल फल करते आसू टपक पडे। कहा—"तुमको जेल मे "

जीवी को पीठ पर हाथ फेरने का, उसे हृदय से लगाने का मन तो बहुत हुआ, पर कानजी ने मन को वश मे कर लिया। बोला—नही रे, किसकी ताकत है जो मुझे बिना अपराध के जेल मे "

आनन्द और शोक मे गोता खाती जीवी बोल उठी—"मेरी सौगन्ध खाओ ! तुम्हारे हाथ से तो ऐसा कुछ नही हुआ न ?"

'अरे क्या पागल हुई है ? और यदि मेरे हाथ से हुआ होता तो मैं सीधा थानेदार के पास न जाता जो उलटा ''

लेकिन फिर तुमको ''

'तू देख तो सही ! अंत में सत ऊपर तर आयगा और यदि न तर आयगा तो जायगा कहां ? इस कानजी को तू ऐसा-वैसा न समझना ! दो दिन में ही मरने वाले और मार खाने वाले सबका हाथ पकड़-पकड़कर ' लेकिन झट उसने बात बदल दी—' तू अपने को संभालना, मेरी कोई चिंता न करना !'' कहकर घर की ओर चला। कुछ याद आते ही फिर ओसारे में गया, चौखट पकड़कर अब भी कोई कौतुक-सा देखती खड़ी नानी बुढ़िया से कुछ सवाल पूछे। जाते जाते कह गया— ''नानी काकी तुम्हारे लड़के ने बहुत अच्छा किया है। भलाई का ऐसा बदला देगा, इसकी तो मुझे स्वप्न में भी आशा न थी।''

' नहीं नहीं, काना भाई ! जरा सुन तो सही। मुझसे पूरी बात तो कह '' धूला ने क्या बयान दिया है इसका बुढ़िया को अभी तक पता न था।

'अपने लड़के से ही पूछ लेना !'' कहकर कानजी सीधा घर की ओर चल दिया।

भगतजी ने उसे बुलाया। पर उनको 'खाना खाकर आता हूँ' कहकर चुप कर दिया।

इस समय उसका मस्तिष्क कुछ और ही ढंग से काम कर रहा था।

बुढ़िया ने जीवी से पूछा—''क्या था बहू ? काना क्या कहता था !''

जीवी का मुंह फक था। सास की ओर कड़ी नजर डालते हुए वह बोली—''तुम्हारे लड़के के पराक्रम और क्या ? उन्हें जेल भेजकर अब तो सब खुश हो गए न ? —जीवी क्या कह रही थी, इसका पता स्वयं उसको भी न था। सास को भी ऐसा ही लगा—''यह क्या कहती है बहू ? किसको जेल भेज दिया और किस बात ?''

''जेल जाने में अब रहा ही क्या है ? दुनिया में ढिंढोरा तो पिट ही

गया कि फलाने को पेरे[1] मे रखा गया ।'

बुढिया से न सहा गया—"अरे, लेकिन इसमे तेरे बाप का क्या गया ? और फिर तुझे इतना ही प्रेम है तो जा, छुडाकर ले आ न ! अब भी क्या बिगड गया है !" कहकर बडबडाई—"जरा शरम कर ! ओढ़ लई लोई तो क्या करेगा कोई !' जैसा यह कहा करती है मरी बहना ! बालने मे कुछ तो लिहाज कर "

जीवी साच रही थी कि यदि यह बुढिया निट् निट् करना न छोडेगी ता वह उससे भी आगे बढकर कुछ कह डालेगी । खत्ती के पास वठती बाली— 'चुपचाप घर जाओ! तुम सब शरमदार हा, यह मुझे खबर है ।'

बुढिया का गुस्सा ता बहुत था पर किसी को पता चलेगा तो क्या कहेगा ?' इस डर से बोल बहना बोल ! आजकल तरे दिन हैं ! ' यो बडबडाती हुई घर म चली गई ।

सारा गाँव यह जान गया था कि धूला ने कानजी के खिलाफ बयान दिया है । दीये की धुधली राशनी मे खाना खाने बैठा हुआ गाँव लगभग एक ही बात कर रहा था— सच झूठ तो भगवान् जाने, पर धूलिया ने इतने दिना मे इकट्ठा किया हुआ गुस्सा आज कानजी पर उतार दिया है । ' परन्तु जीवी के गुस्से का तो आज पार ही नही था । यदि घर मे छाटा देवर और बुढिया न हाते ता इसमे कोई सदेह नही कि वह खाना माँगते धूला क सिर पर हँडिया ही फोड देती । आज उसे उसका मुह देखना भी अच्छा नही लग रहा था । वह मन ही मन कह रही थी— 'न जाने, ऐसा मूरख मरे भाग्य मे कहाँ से बदा था ।'

दूसरी ओर भगतजी के यहाँ भगतजी कानजी और हीरा तीनो मिलकर विचार विनिमय कर रहे थे । मामला औरत के बार मे बना है, इसमे तो किसी को सदेह न था, पर किसके यहाँ बना है, यह अनुमान करना बहुत कठिन था । तीना जने विचार मग्न हो गए । कानजी भी गाव की एक एक युवती के चाल चलन के साथ रशमा का हिसाब लगान

१ पहरे ।

बैठा। भूतकाल के पर्तों के नीचे दबी घटनाओं को एक के बाद एक बाहर निकालकर रख रहा था। यकायक उसका चेहरा खिल उठा। आँखें मानो कह रही थी—बन गया काम, बिलकुल यही है ?'

कानजी ने इधर उधर एक नजर डाल ली। धीरे से बोला—'देख हीरा, चाहे सिर कट जाय, पर बात न जाय, समझा !" कहकर भगत जी की ओर देखते हुए धीरे से कहा—"क्यो भगतजी, भीमा के घर तो गडबडी न हुई होगी ?"

भगतजी ने हँसकर पूछा—' कैसे जाना ?" लेकिन उनकी शक्ल कह रही थी—'ठीक है कानजी।

इसके बाद फिर भगतजी की बुद्धि ने थानेदारी सँभाली। कानजी ने तडातड जवाब दिये।

यह सब ठीक ठीक मिलते देखकर हीरा के आश्चय की तो सीमा ही न रही। आज उसे भगतजी और कानजी बहुत ही काबिल आदमी लग रहे थे।

दूसरे दिन थानेदार पचो के साथ धूला के यहाँ आए। बुढिया और जीवी से खूब घुमा फिराकर पूछा। लेकिन वह "मैं तो घर मे थी। चीख सुनी तब जागी और सास ने तब जाना जब किवाड खुलवाये।" यही जवाब देती रही। गाली देने पर भी परिणाम वही का वही था। अधिक पूछने पर जीवी रो पडी।

थानेदार ने चौपाल पर आकर मुखिया को बुलाया। कहा—"मुखिया, बना-बनाया काम बिगडा जाता है !—कानिया तो साला छूटा जाता है।"

' यह तो आप जानें सा'व ! लेकिन मैंने आपसे कहा न कि यदि आप इस औरत के टुकडे भी कर दें तो भी वह कानजी का नाम न लेगी।' कहकर मुखिया भी जमीन कुरेदते हुए कुछ सोच मे पड गए।

"मगर हमकु तो पक्का सबूत मांगता। ये मामला कोई दुसरा मालुम होता है।' थानेदार ऐसे बोले जैस स्वगत कथन कर रहे हो।

"दूसरा मामला तो क्या हो सकता है सा'ब ! जो है सो यह है।" कहकर मुखिया थानेदार की ओर सरके। हँसकर विवशता दिखाते हुए बोले— ऐं सा ब ! इस मामले को दबा दो तो। वह आदमी है तो आन गाव का इसलिए यदि आप कह तो उसे अस्पताल से सीधा बाहर कर द।" कहकर थानेदार का विचार मग्न देखकर कहा—"गरीब की बात मानो तो ऐसा ही करो सा'ब। गुन[1] नही भूलेंगे।

'गुण याद रखकर क्या करेगा ?' थानेदार न हँसकर मुखिया की ओर देखा।

'जो भेंट पूजा हो सकेगी सा'ब !' और ता बी' कहकर दखते रहन वाले थानेदार के हाथ की अँगुली दबाते हुए बाले—"इतना— हमारी हैसियत के अनुसार सा'ब !"

'इतना वितना कुछ नही मुखिया ! इसका डबल हो तो बात करा, नही तो सारे गाँव का कोट मे घसीटूगा।"

"ठीक है सा'ब ! आप मालिक ह।" कहकर मुखिया यह खुश-खबरी सुनाने के लिए बाहर आये।

गाव के लोगो ने हिसाब लगाया—' तो भरेंगे, घर पीछे रुपया ही आयगा न ? इसम भी यदि थानेदार साहब दो चार दिन और रहे होत तो खर्चे के भी चार चार आन तो आते ही।" तो किसी ने शका उठाई-- "गाव के लोग सारे-का-सारा पैसा क्या दें ? आधा द कानजी।"

"बात तो ठीक है। पूछ देखो उसक बडे भाई से।" कहकर मुखिया ने बडे भाई को एक ओर बुलाया। भगतजी समझ गए। व भी वहा जा खडे हुए। और बडे भाई को 'गाव एसा कहता है ता ऐसा ही सही, क्यो भगतजी ! अपने से कुछ " या कहते सुनकर ही भगतजी बाल उठे—' कुछ नही हो सकता मुखिया ! कानजी एक कौडी भी न देगा। यह तुमसे कह दिया।" बडे भाई की ओर देखकर उसी कडाई से कहा—"कहाँ से लाकर दोगे ? उसके परदेस जाने के लिए तो पूरा

१ गुण। अभिप्राय अहसान से है।

किराया तक नही जुटता । इसलिए कुछ न कहकर चुप रहो न !" और पीठ फेरने से पहले ही हतप्रभ हुए मुखिया से फिर कहा—"जाने दो मामले को आगे । परदेश जाने के बदले अगर जेल मे रह आयगा तो भी इन गर्मी के दिनो मे क्या सूखा जाता है ? लो चलो !" कहकर भगतजी ने बडे भाई को आगे किया और चौपाल म आ गए ।

बडे भाई तो बेचारे भगतजी के मुह की ओर ही देख रहे थे । उनके अतिम वाक्य ने ता भारी उलझन पैदा कर दी थी—"भगतजी यह क्या कह रह है ? कहते हैं कि जेल मे रह आएगा । कैसी बात करते है ?"

मुखिया ने उनके विरोधी आदमियो को फिर समझाया—"अरे भाई कानजी के ऊपर से तो केस हट गया है । एक चार चार आने के लिए क्यो गाँव की बेइज्जती कराने बठे हो ?"

अत म सब राजी हो गए ।

घर पीछे एक एक रुपया डालने पर भी पाँच रुपये कम पडते थे । एक जना बोल उठा— 'ये पाँच रुपये दें धूलिया और मनारे दाना ।'

तुरत मनारे का बूढा बोला—' हाँ, मनारे ल आएगा और डाल देगा । मनारे का बेटा क्वारा है न, जो लाकर डाल देगा ।"

तीसरा आदमी कहने लगा—"नही नही, ऐसी गलत बात कैसे कही जा सकती है । एक तो मनारे का किसान घायल हुआ और ऊपर मे वह दड दे । कहीं ऐसा होता होगा ? हाँ, धूलिया से कहो तो कोई बात भी है ।'

लेकिन उधर कानजी और भगतजी में कुछ और ही बातें हो रही थी । कानजी को अपने छूट जाने की जरा भी खुशी न थी, बल्कि वह तो भगतजी से विरोध ही कर रहा था— "नही भगतजी, थानेदार को जो रिश्वत दे रहे हो सो ठीक है, पर इस मामले की छान-बीन तो होनी ही चाहिए ।'

'अरे भले आदमी, लेकिन छान-बीन कराके अब तू करेगा क्या ?"

"करूँगा क्यो नही ?" कहकर भगतजी की ओर देखते हुए कानजी

ने आगे कहा—"इससे कलक तो हमारे ऊपर बना ही रहा न ?"

"अजीब आदमी है। थानेदार ने मुखिया को बुलाकर कहा तो है कानजी निर्दोष है। फिर कलक तुझ पर क्यो रहेगा ?'

"मेरे ऊपर न रहेगा तो उस औरत के ऊपर तो रहगा ही।" और *विचार मग्न भगतजी से कानजी ने फिर कहा—"मुखिया थानेदार सा'ब* से जो-कुछ कह रहे थे वह सब मैंने खिडकी के सहारे खडे खडे सुन लिया है। उनका विचार है कि उस रेशमा को भगा दो। इस प्रकार यह सारा केस ही खत्म हो जायगा। यह तो ठीक है पर उस औरत पर तो कलक रहेगा ही। लोग कैसे जानेंगे कि यह मामला घूलिया के यहा नही, बल्कि किसी तीसरे के यहा बना है। इस एक बार साफ तो होने ही दो। फिर तुम्ह कुछ न करना हो तो भले ही न करना।"

भगतजी कुछ बोले नही पर मन मे तो स्वीकार किया ही—"बात तो ठीक है। जीवी पर कलक रहा तो वह उसे कैसे सह सकेगा।"

इसके बाद मुखिया और गाव के लोगा की परवाह न करते हुए, थानेदार के सामने मामले की छान बीन के लिए अरज करते कानजी के साथ, भगतजी ने भी स्वर मे-स्वर मिलाया—"गाव के पच एक बार जाच कर आवें। बाद मे शक की जगह आप जाँच कर लें।" आदि सलाह देकर पचो को भी खडा कर दिया।

मुखिया और न समझने वाले गाव के लोग भी कचा रहे थे। पर कानून के मुताबिक थानेदार के हुक्म के सामने किसी की क्या चल सकती थी ? पचो मे भगतजी और मुखिया तो थे ही। इसके अलावा ठाकुरडाओ मे से घना बूढे को लिया और बाकी दो जनो की जगह के लिए गाव के लोगा ने कानजी तथा मनारे के बाप का आगे कर दिया।

दो घण्टे मे पच वापस आये। शक वाले तीन घर निकले थे। उनमे से एक मे दरवाजे पर पडे लोहू के दागा के बारे मे सवाल करने पर थानेदार को पता चला कि बैल के कीडे पडे थे।

पचो के साथ थानेदार और दूसरे सात आठ आदमी भीमा पटेल के

यहाँ आये। पचा की ओर से कानजी द्वारा दिखलाये गए पत्थर, खूटा, चौपट आदि का देखने के बाद के पच्चीस के लगभग आँखें (एक आदमी काना था) घर मे एक गड्ढे की ओर लग गईं।

सबके मस्तिष्क मे भीमा पटेल की जवान लड़की घूम गई।

"यह ता बिलकुल ढोरा वाला घर है इसलिए गड्ढे तो होगे ही।" मुखिया बोल उठा— घर मे कोई करने वाला नही है इसलिए "

"इसके घर मे कितने इन्सान हैं।" थानेदार ने भगतजी से पूछा।

"दो साहब! एक खुद भीमा पटेल—वह जो खडा है और दूसरी उसकी ब्याही-ब्याही लड़की।

"मेरे काका का लड़का है—भाई लगता है सा'ब!" मुखिया ने आगे बढकर ऐसे कहा जैसे थानेदार जानते न हो और फिर बोले—"और ऐसे गडड तो सा'ब, गाँव मे बहुत-से घरो मे होगे। आप पधारें तो दिखाऊँ।"

"किसी ढोर के कीडे कीडे पडे थे मुखिया?" थानेदार ने पूछा।

"हाँ हाँ सा'ब! पडे थे और हमने हाँ क्यो भाई!" और भीमा की ओर देखकर—"हमारी चँदुली भैंस के तो अभी-अभी भरे है न?"

थानेदार ने आस-पास देखकर गाँव के लोगा से पूछा—' क्यु रे सच बात है ये?"

लगभग सभी एक-दूसरे की ओर देख रहे थे।

घबराते हुए मुखिया के मुँह से निकल गया—"बोलो न भाई! कोई तो 'हाँ' कहो। क्यो सब मिलकर मेरी नाक कटाने बैठे हो?"

"हाँ हाँ सा ब! भैंस के कीडे पडे तो थे।" कानजी के बडे भाई ने शुरुआत की। इसके बाद तो दूसर दो चार जनो ने भी गरदन हिलाई।

कानजी को बडे भाई पर इतना ज्यादा गुस्सा आ रहा था कि जितना उसे कभी किसी दुश्मन पर भी न आया होगा।

"अच्छा तो बयान लेने की क्या जरूरत है?" कहकर थानेदार पीठ फेरने को हुए कि कानजी बोल उठा—"लेकिन सा'ब! यह कैसे माना

जा सकता है कि ये गडढे ढोरा के हैं। हागे भी तो भी सार के आगे होंगे। यहाँ ठेठ चौके के सामने कैसे होगे ?

थानेदार को विवश होकर खडा रह जाना पडा।

"हाँ साहब, यह कुछ विचार करने लायक तो है।" गड्ढो की ओर देखते हुए भगतजी ने कहा।

"अरे भाई, यह पणहरी है तो क्या ढोर यहा पानी पीने न आते होगे ? तू भी कानजी, ऐसी पागलपन की बात न करे तो ?" मुखिया का मुह तरस खाने लायक था।

"भाई कानजी ! यह माथापच्ची छोड !' दो चार जने बोल उठे और थानेदार की ओर देखकर कहा—"हाँ सा'ब ! हमारे यहाँ तो आधे ढोरो को घर पर ही पानी पिलाया जाता है। कोई पणहरी के सामने पिलाता है तो कोई "

"ठीक है" थानेदार ने कहा। और कानजी को कतराती आखो से देखते हुए पूछा—"अब तो ठीक है न ?"

कानजी को गुस्सा आ रहा था। 'उस जगा के घर तो गूदडियाँ और सब चोजे देखी पर यहा कैसा 'ठीक है' 'ठीक है हो रहा है।'

तो दूसरी ओर भगतजी भी सोच रहे थे— यह तो बिल्कुल किनारे आकर नाव डूब रही है और गाँव के लागो की ओर कुछ आख फेरते हुए बोले— 'तुम भी क्या हा-मे-हा मिलाते हो ! गडढे का आधार तो देखो। इतना बडा गडढा जब सार मे नहीं होता तो घर म कैसे हो जायगा।"

और कोई होना तो थानेदार ने उसे धमका दिया होता। फिर गाँव के लोगा ने भी "अब तो हम सभी समझ गए हैं भगतजी ! पर बुराई पर धूल डालनी चाहिए या उसे और उजागर करना चाहिए ?" यह कहकर जो थोडी-बहुत धूल थी वह भी हटा दी। और जैसे अभी कुछ कमी रह गई हो ऐसे कानजी ने पूरा किया— 'और सा'ब यह माना कि ! ढोर के खुर से गडढा होता है लेकिन उससे तसले की तरह ढाल वाला होगा या ऐसा—पतीली की तरह खडे किनारे वाला ?"

थानेदार को विवश होकर मामला दर्ज करना पड़ा। दूसरे किसी आदमी की तलाशी लेने की आवश्यकता न जान पड़ी पर भी चक्कर तो लगाना ही पड़ा। लेकिन गाँव में हल्ला हो गया कि यह मामला धूलिया के यहाँ नहीं बना बल्कि भीमा पटेल के यहाँ बना है। इसके बाद तो 'खुली बात दो कौड़ी की' के अनुसार सभी की आँखों के आगे से पट्टी हट गई—बुद्धि के ऊपर का आवरण हट गया—'सच है भीमा की लड़की दिवाली और रेशमा में कुछ खटर-पटर तो चल रही थी।'

और नानी बुढ़िया तो इतनी अधिक प्रसन्न हुई कि यदि कानजी नजर पड़ गया होता तो उसके पैर धोकर पीती। यदि न पीती तो कम से कम पीने-जैसी तत्परता तो अवश्य दिखाती। अकेली बड़बड़ा रही थी—'काना ने मेरे लड़के का घर बसाया सो तो बसाया ही, आज नाक भी रख ली।

सारे गाँव में कानजी की बुद्धि और साहस तथा धला के प्रति किए गए उसके इस उपकार की प्रशंसा हो रही थी, परन्तु धला कानजी के ऊपर खार खाये बैठा था। मन में सोच रहा था—'इससे किसने यह चतुराई दिखाने को कहा था जो मेरी आबरू बचाने दौड़ा। उस जनम का बैरी है इसलिए जहाँ देखो तहाँ बाधा डालता रहता है।'

जब कि जीवी के आनन्द का तो पार ही न था। और यह आनन्द जितना उसके स्वयं के कलंक से बचने के कारण था उससे कई गुना अधिक इस बात का था कि कानजी जेल जाने से बच गया। इसके लिए उसने कितनी ही मनौतियाँ मनाई थीं, दूध घी न खाने की प्रतिज्ञा की थी। यदि उसका वश चलता तो यह समाचार सुनते ही वह कानजी की बलैयाँ लेने—उसके गले से लिपटने के लिए दौड़ गई होती। घर में घुसते समय कानजी ने भी उसे आगे बढ़कर लिया होता। लेकिन वर्तमान स्थिति में तो वह कानजी की बलैयाँ उसके भगतजी के यहाँ आने पर दूर खड़ी होकर, केवल नजर से ही ले सकती थी और उसका स्वागत केवल आँखों के अमृत से ही कर सकती थी।

सोलहवाँ प्रकरण

विदा

मानव के मन का—उसकी भावनाओ का कोई भी ठिकाना नही। क्षण-भर पहले जिसके लिए घृणा की वर्षा करता रहता है उसी के लिए बाद मे वह आसू भी बहाने लगता है। क्षण भर पहले जो अनीति जान पडती है वही क्षण भर बाद आदश नीति हो जाती है।

कानजी के विषय मे भी यही बात थी। गाँव के लोग उसकी प्रशसा करने मे जुट गए थे—'यदि कानजी ने इतना साहस न किया होता तो बेचारे धूलिया का कौन वारिस होता ? यह तो अकेला कानजी ही ऐसा निकला कि मुखिया से जनम भर के लिए दुश्मनी मोल ले ली और बाघ जैसे हाकिम का सामना भी किया।'

लोगो की प्रशसा सुनकर कानजी को हँसी आती—'मार डालने के बाद छाँह मे रखने-जैसी बात करत हैं न ?' और परदेश जाने मे डगमगात जी से कहा—"चल मनुआ, अपने को तो जाना ही है। यही ठीक है।"

जब से जीवी ने भगतजी के यहाँ होती कानजी के जाने की चर्चा सुनी थी तब से उसके हृदय मे बेचैनी पैदा हो गई थी—'क्या मुझसे बिना मिले ही चले जायँगे ? कहा मिलू ? किससे कहलाऊँ ?' तो फिर यह भी सोचती—स्वय अपने से यह प्रश्न भी करती—तू उससे क्यो मिलना चाहती है ? मिलने पर क्या कहेगी ? क्या परदेस जाने से रोकना है ?' और गद्गद हृदय से मन को समझाती—'नही नही, क्यो बेचारे एक

दुखी प्राणी को और दुखी करनी है। यदि परदेस जान से वह सुखी हो सकता है तो उसका जाना ठीक ही है। तू मत बोलना जीवी! मना करके असगुन न करना। उसका जाना ही ठीक है।'

परन्तु इस मिलन के विषय में कानजी के मन में जो उथल-पुथल मच रही थी उसे जीवी क्या जाने? इस उथल पुथल के कारण ही तो उसने दो दिन की देर कर दी थी। मैं उससे क्यों मिलूं और मिलूं तो कौन सा मुह लेकर? मेरे एक बार के कहने से ही आने के लिए तैयार होने वाली इस जवान छोकरी ने कैसे कैसे हवाई किले न बनाये होंगे? लेकिन मैंने यहाँ आने के बाद से एक दिन भी उससे जी भरकर बातें नहीं की। उस पर ऐसी ऐसी मार पड़ती है, पर मैंने उसे बुलाकर कभी सांत्वना के दो शब्द भी नहीं कहे। तो अब मैं उसे किस मुह से मिलने के लिए बुलाऊँ? यहाँ रहते हुए ही मैंने उसे कौन-सा लाभ पहुँचाया है? उलटी उसने मेरे कारण मार खाई है और पति-पत्नी में झगड़ा हुआ है सो अलग। यही क्या कम है जो उसे बुलाकर और कुछ होने का अवसर दूं।' और इस प्रकार सोचते सोचते कानजी ने जीवी से मिलने का विचार ही छोड दिया।

परन्तु चलते समय जीवी को देखे बिना उससे न रहा गया। 'न जाने फिर कब आना हो? तब तक न जाने कौन जिया और कौन मरा? जाने से पहले उसे एक बार देखता तो चलूं। साथ ही भगतजी से भी उनके घर मिल लूंगा। और यह सोचकर कानजी बड़े भाई को समझाने के बाद भगतजी से मिलने चला।

कुछ ही देर पहले जीवी छाछ लेने के बहाने गाँव में घूम आई थी। कानजी घड़ी-भर बाद चला जायगा, इस बात का पता भी वह लगा आई थी और उसके घर के आगे से निकलती हुई उसे साफा बाँधते हुए देख भी आई थी। घर आने पर भी उसकी आँखें तो भगतजी के यहाँ ही लगी थीं। ओसारे में ही कभी तो वह कूड़े के टोकरे भरती तो कभी बाहर के खूंटे से रस्सा खोलकर गही करती। और इस प्रकार वह इधर से उधर

चक्कर लगाने लगी। हाथ मुंह धो चुकने पर भी पानी का लोटा भरकर फिर ओसारी के आगे बैठ गई। हाथ मुंह धोने के बाद उसकी दृष्टि छप्पर के नीचे पड़े गोबर पर पड़ी। वह टोकरा और दो चार गोबर के चोथ भरकर उन्हें घूरे पर डाल गई। भगतजी के ओसारे पर नजर डाली तो देखा कि वे अकेले बैठे हुक्का पी रहे हैं। जाते वक्त तो कुछ न कहा गया, पर लौटते वक्त पूछ बैठी – तुम्हारे भाई बन्द से भेंट करने भी न आया-गया भगत काका। और जरा ज्यादा घूंघट खींचकर भगतजी के आंगन में पड़े हुए गोबर के चोथ को उठाने लगी।

'क्या कानजी की बाबत पूछ रही है? मुझे लगता है कि अभी वह गया न होगा। जहाँ तक हो सकेगा वह जरूर तुमसे मिलने आयगा।'

'तब तो ठीक है।' कहकर जीवी घर आई और फिर पानी का लोटा लेकर हाथ और चूड़ी धोने में काफी समय लगाया। जैसे ही वह उठकर पीठ फेरने को हुई कि मुहल्ले के उस छोर पर लगी उसकी नजर हँस उठी—कानजी के साफे की लाल कलगी फड़क रही थी।

भगतजी से बातें करते कानजी और घर में प्रश्न करती बुढ़िया को उत्तर देती जीवी—दोनों की मनोदशा इस समय विचित्र थी। कौन क्या पूछ रहा है और स्वयं क्या उत्तर दे रहा है इसका दोनों में से एक को भी पता न था। भगतजी कानजी से पूछ रहे थे 'कब वापस आओगे?'

'जब मालिक लायगा तब!' कहकर कानजी ने जीवी की ओर देखा।

साफा बाँधते हुए भगतजी ने फिर पूछा— 'चिट्ठी विट्ठी लिखोगे कि हम भूल जाओगे?'

कानजी ने भारी साँस लेते हुए कहा—"यदि भुलाया जा सकता होता तो फिर और चाहिए ही क्या था भगतजी।" और फीकी हँसी हँसते हुए आगे बोला—मुझसे तो तुम्ह न भुलाया जायगा, पर मुझे भूल ही जाओगे!" कहते हुए जीवी की ओर फिर डाली। भगतजी की ओर मन्द मन्द मुस्कराते हुए बोला—

भगत आदमी का अपने मोह मे डालकर बेकार क्यो परेशान करूँ ?"

यह सब सुनती हुई और चुपचाप असमजस मे पडी जीवी कानजी को ऐसे टकटकी लगाये देख रही थी जैसे दूसरी बार ही देख रही हो। और सच पूछा जाय तो उस वेश मे ता कानजी का वह दूसरी बार ही देख रही थी। पहली बार जब मेले म मिले थे और दूसरी बार अब। उस दिन की तरह आज भी वह उस छोडकर जा रहा था।

जीवी ने भगतजी के पीछे चलते कानजी को अपनी ओर देखते और कहते सुना—"जोगीपुरा के रास्ते जाऊँ ता ठीक रहेगा भगतजी ! क्यो ?"

बैठक म खडी खडी जीवी कानजी की पीठ को देखती रही। पहली बार मिलने पर भी वह उसके मन को न जाने इसका गाँव किस दिशा म है ? न जाने अब कब मिलेंगे ? शायद इस जनम म फिर न भी मिल पायें। फिर परदेसी की प्रीत भी क्या कोई प्रीत है ?' ऐसी ही उधेड-बुन मे छोडकर चल दिया था। इन छह महीना के उत्पीडन के बाद आज भी जीवी को ऐसा ही लग रहा था—'न जाने किस देस जा रहा है, शायद फिर वापस ही न आय। और उस दिन की ही भाँति उसकी आँखो से छल छल करने आसू निकल पडे।

यकायक जीवी को कानजी का अन्तिम वाक्य 'जोगीपुरा के रास्ते' याद आया। उस समय कानजी ने उसे आँख से इशारा किया हो, ऐसा सन्देह भी हुआ। मुह धोकर वह झट घर मे गई और बोली—"जब तक रोटी बनती है तब तक मैं जो दा चार कपडे हैं सो धो लाऊँ। लाओ अपनी धोती भी दे दा। लेता जाऊँ !" कहकर जो हाथ पडे वे कपडे और मौंगरा[1] लेकर नदी की ओर चल दी।

धूला इस ठण्डे समय मे अपने जिजमानो की हजामत करने निकल गया था। यदि वह घर होता तो भी सास उसे आना तो दिलाती ही क्योकि आजकल वह बहू पर सब प्रकार स प्रसन्न थी।

१ कपडा कूटने का लकडी का हत्थेदार और आगे कुछ चौडा अथवा मोटा डडा।

कानजी को विदा देने के लिए बहुत से लोग इकट्ठे हुए थे। उनमे भी उसकी भाभी, बडा भाई, हीरा और भगतजी तो उसे ठेठ गाव के बजर तक पहुँचाने आये थे। रतन तो काका के कधे से उतरने से ही इकार कर रही थी। और बडे भाई अब भी यही कह रहे थे—"मान जा न काना! बरसात आने मे अब महीना भर ही तो रह गया है न? क्यो बेकार इतने दिनो के लिए । और यदि चौमासे म आया तो मेरा पूरा फजीता होगा। आधे शरीर से मैं अकेला "

"अरे, पर आयगा क्यो नही भले आदमी! यह एक महीना भले ही घूम आय।" कहकर भगतजी बडे भाई को शात करने का प्रयत्न करने लगे।

'तुम्हारा कहना तो ठीक है भगतजी! पर उस परदम मे इसका क्या पता चलेगा कि इसने खाया है या नही, इसे नौकरी मिली है या नही? और यह तो शहर की बात है भगतजी!" कहते हुए बडे भाई का गला भर आया। बडी कठिनाई स कह सके—"भले ही घर के लिए तू एक पैसा न लाना, पर अपने शरीर को दुख न देना भाई! गाय का सगुन हो रहा है, इसलिए चिंता की कोई बात नही।" कहकर बडे भाई ने बगल से जाती हुई गाय से हाथ छुआकर माथे से लगा लिया।

भाभी की जीभ भले ही लम्बी हो, पर फिर भी कानजी उनके लिए एक कमाऊ पूत जैसा था। फिर यदि उनकी आँखो से आँसुओ की धारा बहने लगी तो क्या आश्चय है?

"अच्छा तो अब भेंट लो! फिर धूप तेज हो जायगी।" कहकर भगतजी खडे हो गए।

भाई भौजाई से भेंटते समय कानजी ऐसे धाड मारकर रो पडा। जैसे कोई लडकी पहली बार ससुराल जा रही हो।

अभी तक साहस दिखाने वाले भगतजी भी कानजी से भेंटते हुए रो पडे। और यह भी इतने कि कानजी को रोते रोते ही कहना पडा—'यह क्या है भगतजी! तुम तो साधु-जैसे हो। तुम्हारी आखो मे

आँसू क्या शाभा देत है ?"

'शरीर का सँभालना चिट्ठी लिखना, वापस जल्दी आना भाई !" आदि वाक्या से तीना जना न कानजी का विदाई दी।

भेंटत समय बडी कठिनाई से नीचे उतारी हुई रतन कानजी क हाथ स ऐस जार स चिपट गई थी कि जब उसकी माँ मारन दौडी तभी वह अलग हुई। कानजी न उस इतना अधिक प्यार किया कि वह घबरा उठी। कठिनाइ स वह पाया—"फिर मिलेंगे रतन !" और बिना उचितानुचित की चिन्ता किय वह बाला—"इस अपनी नई काका (जोवी) के पास जाने देना भाभी ! वहाँ इसका मन खूब लगेगा।' और हिचकी भरकर रोती रतन का फिर दो-तीन बार प्यार करक पीठ फर ली। हीरा अभी साथ ही था।

भाभी का शक हुआ—"हीरा भाई भी जा रहा है क्या '

' नही ता, वह ता वहाँ तक पहुँचान । वह बेचारा ता गृहस्थ आदमी है, वहाँ कैसे जा सकता है ? भगतजी न कहा और तीना जने चल दिए।

कानजी और हीरा दाना चुपचाप चल रह थ। हीरा के हाथ म चिलम थी, पर उसे कानजी को देने का होश ही न था। दानो को बहुत-कुछ कहना था। बहुत कुछ ता इससे पहले कहा हो जा चुका था, पर फिर भी अभी जैस बहुत-कुछ शेष था। आखिर गाँव की नदी भी नजदीक आने लगी। कानजी एक बरगद के नीच रुककर ले तमाखू रख, हो ता' कहता हुआ बैठ गया। कन्धे की पोटली उतारकर गोदा म रख ली। हीरा चिलम भरने मे लग गया।

कानजी कहन लगा—' हीरा, तू मरे भाई क समान है, तुझसे क्या कहूँ ? और चाहे जा कुछ हो, पर बडे भाई की खबर-सुध लेत रहना। चौमासे मे आया आया न आया ।

'यह तू क्या कह रहा है कानजी ? चौमासे म तू न आवे, यह कहीं हा सकता है ? फिर हीरा चाह जितनी मदद करे वह अपना सँभालेगा

या तेरा ?" कहकर दम लगाकर आगे कहा— 'देख ऐसा पागलपन न करना ! नही तो एक तो तेरे बडे भाई की वैसी ही हड्डी टूटी है, इससे उनकी हिम्मत और भी टूट जायगी और मर पचकर गांव के थोक मे, जो घर जमाया है सो सब खड-बड हो जायगा ।"

"नही नही मैं आऊँगा तो सही लेकिन फिर भी "

"यह लेकिन फेकिन कुछ नही । मुझसे पूछे तो अगर तू घर से इस प्रकार जा रहा है तो दस पद्रह दिन नात रिश्तेदारो म घूम घाम आ ! मैं तो अब भी सच कहता हूँ कि यह नौकरी फौकरी की खट पट जाने दे।"

कानजी फीकी हँसी हँसा— अरे भले आदमी ! लेकिन मैं नौकरी करन ही कहा जा रहा हूँ। हाँ यह बात जरूर है कि इस प्रकार महीना दो महीने निकल जायेंगे । इस हाय हाय से जितना दूर रह सकू उतना ही अच्छा है।" मुह से चिलम लगाते हुए कानजी को एक भारी-साँस लेनी पडी। उसके बाद दोनो फिर चुप हो गए। अत मे कानजी उठा। भेंटत वक्त दोना रो पडे।

कानजी क्यो गाँव छोड रहा है यह हीरा को अच्छी तरह मालूम था, इसीलिए आज उसे जीवी पर गुस्सा आ रहा था। इतने मे आखें पोछता हुआ कानजी बोला— 'हीरा, जरा जीवी का खयाल रखना, समझा ! उस बेचारी का अब तेरे सिवा और कोई नही।" और आँखो से *तलातल बहती धारा को साफे के छोर से पोछने लगा।*

इन शब्दो ने हीरा के हृदय को फिर रुआसा कर दिया—"कोई परवाह नही, तू स्वय निश्चिन्त रहना ! अच्छा अब जा, दिन अभी से सिर पर चढ आया है।"

दोनो जने अलग हुए। हीरा ने गाव की ओर कदम बढाये, कानजी ने नदी को ओर। परन्तु नदी के किनारे से उतरते-उतरते तो कानजी ने कोई दसेक बार पीछे और इधर उधर दूर तक नजर दौडाई। एक लाल कपडे को देखकर कुछ देर रुका भी। लेकिन उसे उलटी दिशा मे जाते देख वह हताश ही हुआ। स्वगत कहने लगा—'वह मूर्खा अब

मिले तो क्या और न मिले तो क्या ? और या भारी हृदय से नदी का ढाल उतरने लगा।

लेकिन नदी म पैर रखते ही उसकी नजर जीवी पर पडी। आनद के मारे उसका कलेजा उछलने-सा लगा। ढोरो को पानी पिलाने आने वाले लडको की चिंता किये बिना ही वह उसकी ओर बढा। कपडा निचोडती हुई जीवी झट खडी हो गई। बाली—"उस कणजी[1] के नीचे—मैं आती हूँ।"

कानजी वहाँ जाकर कणजी की डाल पकडकर खडा हो गया। उसकी धारणा थी कि जीवी आँसुओ की धारा के साथ रोती हुई आयेगी। उसके अनुसार सात्वना दने के लिए वह शब्द भी सोच रहा था।

परन्तु जीवी ने कुछ और ही निणय कर रखा था—'जाते समय रोकर असगुन कभी नहीं करूँगी।' और जितना वह रो सकती थी उतना इस निणय को करते-करते रो चुकी थी।

पास आते-आते हँसमुख जीवी ने पूछा—"जाना था तो जरा जल्दी ही निकलते। सिर पर धूप क्या कर ली ?"

कानजी ने मन मे सोचा तो सही कि कह दे—'हृदय की ज्वाला के समक्ष सिर की धूप किसी गिनती मे नही जीवी !' पर यह न कहते हुए व्यावहारिक बात ही कही—"निकला तो जल्दी ही था, पर सबसे मिलत मिलाते देर हो गई।'

जीवी अब भी हँस रही थी। उसने भी कणजी की डाल पकडी। पत्ते तोडते हुए पूछा—"वापस कब आओगे ?'

"क्या बताऊँ ?'

'तो भी, बरसात लगते तो आ जाओगे न ?"

'देखूगा।" कहकर जीवी की ओर देखता हुआ बोला—'यह कोई मेरे हाथ की बात नही !" और निष्ठुर प्रतीत होते प्रियजन के हृदय को चोट पहुँचाने की मनोवृत्ति से प्रेरित होकर ही आगे कहा—'यदि इतने

१ करज, एक वृक्ष विशेष।

दिन मे ही वापस आने की बात होती तो घर और गाव ही क्यो छोडता ?" और यह कहकर जूतो की नोक से नदी की रेती मे लकीरें खीचने लगा ।

"सच ।" उसके होठ कॉप रहे थे दृष्टि धुधली हो रही थी ।

जीवी की मुख-मुद्रा पर दृष्टि डालकर कानजी ने फिर सँभाली—"नही-नही, कही ऐसा होता है ? आदमी सब कुछ छोड सकता है पर उससे अपना वतन कैसे छोडा जा सकता है ।'

"और किसी से चाहे छोडा जा सके या न छोडा जा सके पर तुमसे तो छोडा ही जा सकता है ।" और कणजी की टहनी चीरती हुई आँसू-भरी आखो से कानजी की ओर देखती जीवी आगे बोली—"तुम्हारा कलेजा कोई आदमी का थोडे ही है ।"

कानजी ने फिर एक लम्बी सास ली और नीची नज़र किये हुए ही बोला—"यह तो अकेला मं जानता हूँ या मेरा दिल जानता है ! आदमी का कलेजा न होता तो आज घर-बार छोडकर जाने की जरूरत न पडती।" कहकर नीचे के होठ को दाँतो के बीच मे लेकर ऐसे जोर से दबाया जैसे आखो से निकलने वाले आसू मुह के रास्ते निकलने वाले हो ।

दोनो जने चुप रहे । इन दो जनो के आस पास का वातावरण ऐसा शात और भयकर लगता था मानो उसकी शाति दूर-दूर तक नदी मे नहाते बालको की आवाज और पक्षियो की चहचहाट को निगल रही हो ।

अत मे जीवी बोली—"क्यो देर करते हो ?"

कानजी अपनी धुन मे कहता जा रहा था—' हाँ, मैं जाऊँ, इसीमे भला है । इसके बिना तेरा या मेरा किसी का भी हित नही हो सकता ।"

जीवी मन-ही-मन सोच रही थी या बोल रही थी, इसका पता तो स्वय उसको भी न था—"न जाने यह भला हो रहा है या बुरा ?"

सहसा कानजी चैतन्य हुआ । उसकी आँखो मे कुछ और ही प्रकार की चमक थी । जीवी की ओर एकदम बढकर उसने पूछा—"मेरी एक बात मानेगी ? चल हम दोनो ही भाग चले । है हिम्मत ?"

क्षण भर के लिए जीवी खिल उठी। फटी आँखो से कानजी पर जमाई हुई उसकी दृष्टि मानो पूछ रही थी—'क्या सच कहते हो?' उसे कानजी के गले से लिपटने जैसी उमग आई, पर दूसरे ही क्षण वह ढीली पड गई। भारी पलको को नीचे गिराती हुई बडी कठिनाई से कह पाई—"नही नही, तुम अकेले ही जाओ। मुझसे " धोती के पल्ले[1] मे मुह छिपाकर तुरन्त पीठ फेर गई। पत्थरो से ठोकर खाते उसके पैरो को देखकर ऐसा लगता था जैसे कोई उसे पीठ पर लादकर लिये जा रहा हो।

जब जीवी की ओर देखते हुए कानजी को होश आया तो उसने पैर बढाये। जीवी की ओर एक नजर डालकर मुँह फेर लिया। परन्तु उसकी भी वही दशा थी। जैसे कोई अस्तबल म जाने के लिए मचलते तागे के घाडे को दूसरी दिशा मे जाने के लिए मजबूर करता है, वैसे ही वह अपने जी को फटकारता हुआ सीधे रास्ते पर ला रहा था।

नदी के किनारे पर चढा और उसके बाद दो खेत के बराबर रास्ता पार भी किया, परन्तु अब भी उसको सारी नदी यो विलाप-सा करती सुनाई दे रही थी— ऐसा ही करना था तो तू मुझे यहा क्या लाया? मुझे बेवकूफ के पल्ले बाँध दिया?'

कानजी की आँखो से छल छल करके बहते हुए आसुओ मे से यदि एक दो जूता की ठोकरो के शिकार हुए तो कुछ धूल मे मिल गए। होश आते ही उसने झट आखें पोछ ली। पीछे एक अतिम दृष्टि डाली और दूसरे किनारे पर खेतो मे होकर जाती एक लाल आकृति को देखने लगा। नि श्वास की अजलि दी और गरदन को सामने वाले रास्ते की ओर मोडता हुआ स्वगत कहने लगा—'मुट्ठी भर जनम मे ही क्या-क्या स्वाँग भरने पडते है?

[1] आँचल या अचल।

सत्रहवाँ प्रकरण

●

व्यर्थ प्रतीक्षा

थानदार ने घर पीछे एक एक रुपया भेंट-पूजा के रूप म लिया था तो उसने का काम भी किया था। लगभग ठीक होने को आये रेशमा को अस्पताल से भगा देने म मुखिया न भी पूरी-पूरी मदद की थी और उसके बाद तो केस अपने आप ही दब गया था।

लेकिन इस घटना ने गाँव के लोगो को इन फुरसत के दिनो मे बातें करने का मामला भी काफी दे दिया था। कोई कहता था—"मैंने रेशमा को देखा था। उसकी शक्ल तो ऐसी बदल गई है कि यदि कही जगल म अकेला मिला होता तो देखते ही डर लगता। नाक तो ऐसी दिखाई देती है जैसे गारे का गादा[1] ही रख दिया हो। एक आँख की तो पुतली भी निकल गई थी।

परन्तु धूला को तो रेशमा की आँख-नाक की अपेक्षा अपने उस चाँदी के कड़े की अधिक चिन्ता थी। एक दिन वक्त निकालकर वह रेशमा से मिला भी। लेकिन रेशमा न उसे हरी झण्डी दिखाई—'अरे,

१ जब मिट्टी को पानी से सानकर उससे दीवार चिनने का काम लिया जाता है तो वह 'गारा' कहलाता है। उसका थोडा-सा हिस्सा हाथ मे लेकर कहीं लगाया जाय तो वह 'गोदा' कहलायगा। वह जहाँ लगेगा चपटा होगा। रेशमा की नाक चोट पडने से या कटने से चपटी हो गई थी।

क्या पागल हुआ है ? कडा तो गया उस विधि म ।"

यह सुनकर धूला की मुश्किल और भी बढ गई । विवशता के स्वर म कहा—"ससुर कडा गया तो जान दो रेशमा भाई, पर यदि यह मूठ न मारी हो तो मत मारना । और यदि मार ही दी हो तो वापस लौटा लेना भाई सा'ब !"

धूला की मूखता पर हँसते हुए रेशमा ने सक्षेप मे कहा—"अच्छा!"

धूला ने चलते-चलते—"यह तो अब चला गया है इसलिए उसे लौटा लेना भाई सा'ब ! इस रॉड को तो मैं अब सीधा कर लूगा !" यह कहकर उसने वचन भी ले लिया ।

न जाने कडे को गँवाने के कारण या यह सोचकर कि यदि रेशमा ने मूठ नही लौटाई तो दूसरे कडे के हाथ से जाने मे भी देर न लगेगी—इनमे से कोई भी कारण हो, पर वह मन म बुरी तरह झुझला उठा था । इस सबके मूल मे उसे जीवी का ही दोष दिखाई देता था । उसे ऐसा भी लगने लगा था कि उसके आने के बाद से वह प्रतिष्ठा और पैसे-टके की दृष्टि से भी कमजोर होता जाता है । मन मे सोचता था—'जब से यह रॉड आई है तभी से सकट आए हैं ।'

घर पहुँचने-पहुँचते तो उसका क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया था और यदि जीवी क ऊपर उसने जी भरकर हाथ उठाया था तो आज ही । कसूर इतना ही था कि जीवी न उसके लिए पानी गम नही किया था ।

जावी को छुडान आई बुढिया ने कहा भी था—'लेकिन भाई ! इसे क्या खबर थी कि तू अभी आ जायगा ? और फिर मारता क्यों है धूलिया ? तू हुक्का पी ! इतने मे ही "

लेकिन धूला ने तो—"मारना तो मैं कभी से चाहता था लेकिन मैंने कहा जाने दो इसीलिए ।" की हुकार के साथ मारना जारी रखा ।

एक लाठी बुढिया को भी लग गई । वह बिलबिला उठी—तेरा नाश जाय ! जरा देख तो सही !"

"तुम्हीने रॉड को यह कर-करके बिगाडा है ।" कहकर फिर जीवी

की ओर मुडा—"उस दिन कौन-सा खसम परदेस जा रहा था जो नदी तक पहुँचाने गई थी ?' धूला गरजा।

यह सुनकर ता बुढ़िया भी ता मरो दोनों जने इकट्ठे हाकर।' यो बडबडाती हुई वाहर चली गई। मन म सोचती थी— ठीक है, ऐसे पीटी जायगी तभी राड सीधी होगी। मैंने तो कहा कि यह सीधी हो गई है पर रानी जी के तो लच्छन ही ऐमे हैं।'

जीवी की आखें अब बदल गई थी। माना जगदम्वा हा। एक ही झटके में धूला के हाथ से लकडी छुडाकर कोन मे फेंकती हुई बोली—"दम तो कुछ है नहीं और नाशपीटा यहा आया है मुझे मारने।'

और धूला के इस भयकर मकट में (भयकर इसलिए कि एक ओर उसे क्रोधित जीवी का डर लग रहा था तो दूसरी आर जीवी को दबा न पाने पर अपने पौरुष के लज्जित होने की सम्भावना भी थी) सामने से भगतजी आ पहुँचे। उन्हाने धूला को आडे हाथो लिया, बुढिया को बुरा भला कहा और गुस्से मे जीवी से भी कह दिया—"रोज का फजीता है तो क्या कही जहर भी नहीं मिलता।"

कानजी के चले जाने के बाद भगतजी की जान को ही तो यह सब झगट था न ? मानें तो चिन्ता तो हीरा को भी थी परन्तु उसे तो 'जीवी डाकिन है—कानजी पर जादू कर दिया है' ऐसा शक भी था, इसलिए वह तो एक प्रकार से 'इसी के लायक है ऐसा भी समझता था, फिर उसका घर भी कुछ दूर था इसलिए आधा झगडा तो सुनाई ही नहीं देता था।

भगतजी का कहा—'कहीं जहर भी नहीं मिलता। वाक्य जीवी के मस्तिष्क मे काफी दिना तक घुमडता रहा। उसके पीहर मे ही एक लडकी और रोटी मे रखकर खा गई थी। दा क्षण मे ही दु ख के पहाड भस्म हो गए थे। जीवी को यह सब याद आया। यह न था कि ऐसा करते उसे देर लगती, पर वह सोचती थी—'क्या न ठहरूँ ? एक बार उसे (कानजी को) देख लू—आखिरी

लू, फिर करना तो है ही।

कानजी के दुःख के कारण (हो सकता है कि उड़ता उड़ती बात परदेस पहुँचे और उसका जी जले। इस दुःख के कारण) वह गाँव में मार-पीट के बारे में ज्यादा बात तक नहीं करती थी। उसमें भी अब तो उसे मरना था। सिर्फ एक महीने की—कानजी के आने भर की देर थी।

एक तो गर्मी के दिन वैसे ही बड़े थे। उसमें भी जीवी के दिन तो और भी भयंकर थे। ठीक सवेरे के मुर्गा बोलने के वक्त उठती, पाली दो पाली मक्का पीसती, फिर भी राज दरबार के ठाट से आता सूरज उगने का नाम ही नहीं लेता था। आसानी से स्वयं ऊँचा[1] जा सके इतना गोबर कूड़ा भरकर डाल आती, पानी की चार पाँच जेहर लाती—वह भी ऐसी चाल से, जैसे गिन गिनकर कदम रख रही हो। तो भी सूरज तो जैसे अब भी मुश्किल से दो बाँसों ही चढ पाता था। पेट की मजूरी देने के बाद पीसना[2] बनाने बैठती, पर सूरज छिपने के पहले तो वह भी बन जाता। रतन भी कुछ दिन तक आने के बाद बन्द हो गई थी, नहीं तो उसी के साथ बातें करके समय काटती। और इस गर्मी मे काटना-बोना तो था ही नहीं इसलिए अन्त मे कण्डे बीनने निकलती। एक एक कण्डा करके टोकरा पूरा हो जाता, पर सूरज तो अब भी पश्चिम के मैदान मे चहल कदमी करता दिखाई देता था। इसके बाद बाड़ी के सेम की बेल आदि मे पानी देकर जैसे तैसे करके दो जेहरों की जुगत करती। बछड़े खोजने के बहाने गाँव के भी दो चक्कर लगा आती। यों राम राम करके एक दिन पूरा करती। लेकिन कम्बख्त रात भी उसकी वैरन बन जाती। दिन म तो छोटे मोटे कामो मे जी को हिलगाये रखती पर रात मे क्या करे? अक्सर अष्टमी के मेले वाली छैल छबीली मूर्ति (कानजी)—घुटनों पर से

१ सिर पर रखना।

२ पीसा जाने वाला वह अनाज, जिसे कूट फटककर पीसने योग्य बनाते हैं।

टूटी हुई-सी—विवश बनी-सी दिखाई देती। जीवी कहती—'मैंने ही तेरी यह दशा की है।' जबकि वह बावरी और पागल का-सा प्रलाप करती मूर्ति बड़बड़ाती—'तू मुझे भूल जा पगली! मुझे क्षमा कर।' और इस 'कहकर एक ठिगने कद और चौड़े मुँह वाले आदमी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहती—'इसमें मन लगा! जो यह कहे वही तुझे करना है। उसकी जिवाई ही तू जियेगी। तुझे मुझसे कुछ नहीं। अपना मन का मुझसे हटा ले!' ऐसी व्यथ की बातें सोचते सोचते आधी रात निकल जाती। घड़ी भर के लिए आँखें मींचती कि रोज़ का [illegible] वाले छप्पर से लँगड़ा मुर्गा पिछले जनम के बैरी की भाँति जीवी के कान में बाँग देता। उसके बाद जीवी की आँखें लगतीं तो भी न लगने जैसी या दूसरा दिन फिर चक्की में घुस जाता।

जेठ का महीना आधा बीत चुका था। लोगों के [illegible] के ढेर के ढेर लग गए थे। लेकिन कानजी के यहाँ का ना जीवी [illegible] ही [illegible] थी। गाँव के पूरे भी खेतों में पहुँच गए थे, परन्तु उनका [illegible] अभी अन छुआ ही था। बड़े भाई की अपना [illegible] की [illegible] अधिक थी—"क्या नहीं आयगा?"

और एक दिन ऐसी ही चिट्ठी आई। सारे गाँव में पढ़े [illegible] बिना पढ़े एक भगतजी ही थे। [illegible] और [illegible] ऐसी 'बेकार' की चिट्ठी पढ़ने का शौक भी नहीं था। चिट्ठी [illegible] ही लगभग चौथाई के करीब गाँव भगतजी के यहाँ जमा [illegible] की आबादी बढ़ने पर यदि कोई [illegible] गया था तो [illegible] में एक ठाकुर भी गया था, पर उसकी [illegible] शायद ही [illegible] हो। और यदि आती भी तो [illegible] उस गाँव [illegible] एक गाँव में आता और [illegible] चला जाता। [illegible] किसी के न पूछने पर भी 'काना की चिट्ठी [illegible] पढ़वाने आता हूँ। न जाने इसमें क्या लिखा है' [illegible] थोड़े ही जाना था।

भले ही सारा गाव सुन ले, लेकिन यदि जीवी ने सुन लिया तो, ता बस हा चुका। अपने ओसारे की औलाती के आगे खडी-खडी भगतजी के घर की ओर वह इस प्रकार देखती थी जैसे चिट्ठी का दशन भी दुलभ हो। उसके कान भी जैसे ठीक भगनजी के ओसारे की औलाती तक पहुँच गए थे और यदि आदमियो की आड न होती तो निस्तब्धता तो इतनी अधिक थी कि वह अवश्य सुन लेती। भगतजी के ध्यान मे वह नही होगा अथवा ऐसा न था कि उनसे जल्दी पढने के लिए कहा जाता।

बडे भाई को बडबडाते सुनकर वह इतना ता समझ गई थी (बाकी तो उसके काम का भी क्या था)—कि कानजी नही आने का।

गाव के लाग भी या तो कानजी की निन्दा करते हुए या 'अच्छी नौकरी मिल गई होगी तभी न ? यहा खेती मे कौन-से लाल रखे थे।' या अटकलें लगाते हुए बिखरने लगे।

बडे भाई की आवाज सुनकर जीवी भी होश मे आई। घबराये हुए बडे भाई कह रहे थे—"भगतजी ! आज ही चिट्ठी लिख दो कि न तो मुझे मजूर रखना है और न तेरा रुपया चाहिए। इसलिए जैसे बैठा हो वैसे ही सीधा उठकर घर चला आ !"

जीवी ने सोचा—'क्या मैं भी लिख दूँ कि जीवी भरासू रखी है इसलिए मुह देखना हो तो देख जाय।' और उसका कलेजा ऐसे धडक उठा जैसे वह कानजी के पैरों की आहट सुन रही हो। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे होश आया कि न तो वह स्वय लिखा सकती है और न वह आ ही सकता है। उसकी आँखा से बेर-जैसे आँसू निकल पडे। वह तुरत घर मे चली गई। उसका रोता हुआ हृदय मानो कह रहा था—'इतना ज्यादा निष्ठुर !'

परतु बडे भाई की भाँति जीवी का अब भी विश्वास था कि कानजी आयगा। दूसरी ओर समय भी अपना काम किये जा रहा था।

बादल जवानी के नशे मे इठलाती पनिहारिन की भाँति पश्चिम से आते और इसी चाल से पूव क्षितिज के ढाल पर उतर जाते। कभी दो

चार के टोल में इकट्ठे हो जाते और कभी आकाश को ढक लेने की बातें करते-करते गो के चार होकर अलग हो जाते। कभी साथ-साथ किसी अन्य प्रदेश म चले जाते। कभी कभी तो रात और दिन ऐसा ही होता रहता, तो कभी नभमण्डल दपण-जैसा स्वच्छ दिखाई देता। यदि कहीं कोई छुट-पुट बदली आ जाती तो आकाश की ओर ताकने वाले का सौभाग्य ही समझा जाता।

परन्तु जीवी को आकाश से कोई सरोकार न था। उसे तो उसी रास्ते से काम था। उसका विवर्ण शरीर और गड्ढे में धँसी हुई आँखें देखकर ऐसा लगता था जैसे मानो उसके यौवन की दीप्ति और चकाचौंध करने वाली आँखों की चमक सब उस रास्ते पर ही खर्च हो गए हैं।

अष्टमी की सध्या को ईशानकोण से एक रुपहला बादल निकला। बढता-बढता आकाश मे पहुँचा। बगल में फूलने लगा और उसके बाद तो बादल म से बादल और उसमें से एक बदली फूटी। दोनों दिशाएँ घेर लीं। लोगों का उल्लास भी बढ गया। आज उसके घर से चढाई हुई है, जरूर बरसेगा। ऐसे उद्गार भी निकलने लगे। और यही हुआ। जैसे कोई मायावी राक्षस सिर हिला हिलाकर भय उपजा रहा हो ऐसी गहरी गहरी गर्जना के साथ आकाश घिरने लगा। रुपहला रग मटमैला हुआ और देखते-देखते ही सारा-का-सारा आकाश काले रग म बदल गया। नीचे उतरा हुआ अँधेरा धरती से लिपट गया। गर्जना करते मेघ ने हुँकार दी। बिजली ने ताण्डव शुरू किया और इस चढाई ने परेशान धरती की उमस आदमियों को भी पसीने से तर-ब-तर करने लगी।

लोग नींद की गोद मे जा ही रहे थे कि आकाश में हल्की हल्की बूँदें गिरने लगीं। दूसरे ही क्षण दिशाओं को दीप्त करती एक विद्युत रेखा सीधी धरती पर उतर आई और ऐसे कड़ाके के साथ ऊपर चढ गई जैसे आकाश फट गया हो। बादल जैसे टूट पड़े हों और वह भी तक कि ओसारे म बैठे-बैठे आनदानुभव करने वाले किसी किसी ने तो अपने पड़ोसी से पुकारकर कहा भी— 'कनाते भाई!

मे ही धान बुवा देगा ।"

और यह रात सारे गाँव के लिए आनन्दमयी थी । लेकिन बडे भाई के लिए तो यह शोक और परेशानी से भरी थी । जब से कानजी हल जोतने लगा था तब से न तो उन्होने कभी हल जोता था और न कभी थोडा था । इसीसे तो वे आज घबरा रहे थे । और इसीलिए कानजी को लक्ष्य करके कह रहे थे— 'किसका भाई और किसका क्या ? शहर की सडको पर घूमना छोडकर यहा कीचड खूदने कौन आता है ?"

पिछली रात की वर्षा बद हो गई थी । आकाश मे मचे धमासान से भागे हुए तारे शाति छाई हुई देखकर 'जरा देखें तो सही कि धरती पर क्या क्या बीती है ?' के विचार से डरते डरत-से झाकने लगे थे । सबेरा होते होते तो सिर के ऊपर का यह सारा ही नाटक खत्म हो गया था ।

धरती के रग आज बदल गये थे । पक्षियो ने भी जल्दी उठकर प्रभाती गाना आरम्भ कर दिया था । शाति भग होने के डर से पवन भी थम गया था ।

फिर आज की प्रकृति को देखकर तो ऐसा लगता था जैसे झटपट स्नान निवृत्त होकर खुले केशो से पानी टपकाती कोई ललना, भक्ति भाव से नीचे झुकने की मुद्रा मे, मूक प्रार्थना करती खडी हो । पूर्व दिशा के झरोखे पर आकर खडा हुआ सूर्य भी छाती पर भरे हुए पानी मे ऊभ चूभ कर रहा था जब कि धरती के हृदय की तो बात क्या पूछना ? सारा वातावरण ही किसी अद्भुत सुगन्ध से भर दिया था ।

बडे सवेरे गाँव के लोग मुखिया के यहाँ इकट्ठ हुए । कुमुकुम लेकर नए वर्ष की उद्घाटन क्रिया करने के बाद सब अपने अपने घर आये और हल तैयार किये । कुमारियो के शकुन ले, गर्दन मे बँधे घलारे[1] और घटिया की गहरी तथा मधुर झकार करते बैलो को आगे कर, खेतो की ओर चले ।

१ ये बड़े घुँघरू, जो बलों के गले मे बाँधे जाते हैं ।

पीछे रह गए बडे भाई ने भी नरसिंह महता की लढिया[1] की भाँति —हालाँकि बैलो के तगडे होने पर भी उनकी गरदनें घलारा से खाली थी—हल तैयार किया। रतन के नाजुक हाथो से तिलक कराके कलावा वँधवाया और उसी का सगुन लेकर पत्थरो से टकराते हल की 'घर्रर खडीग' की आवाज के साथ खेतो की ओर चलने लगे। असगुन होने के डर से रोके हुए आँसू खेत मे हल जोतते समय फल-फल करके निकल पडे।

पहला मुहूर्त पनघट वाले खेत मे ही किया था इसलिए यह स्वाभाविक था कि पानी भरने आने वाली जीवी की नजर उनके ऊपर पडे। क्षण भर उसने सोचा भी—'कहा तो उसके (कानजी के) हाथो धरती धसकाते चलते बैलो की चाल और कहाँ यह बडे भाई के हाथो गिन गिनकर डग धरते बैलो का चलना। दो दिन मे भी इतना खेत पूरा कर दें तो ग़नीमत है।' बडी देर तक देखते रहने के बाद जीवी को होश आया। एक भारी साँस लेकर अपने जलते हृदय से कह रही थी—'मद हुई होती तो भी एकाध दिन हल लेकर मदद करने जाती पर तू तो औरत है? यो भी जलाने से क्या होगा?' जेहर भरकर चलते हुए फिर बडे भाई की ओर देखा और दबी हुई निश्वास छोडती हुई मन मे कहने लगी— और किसी की तो कोई बात नही मूरख पर अपने बडे भाई पर तो तरस खाया होता।'

इतना होने पर भी जीवी ने आशा नही छोडी थी—'अगर यह बरसात वहाँ भी हुई होगी तो वह कल जरूर आ जायगा।'

और कल के आने मे क्या कुछ देर थी? परन्तु मनुष्य अपने आशा तन्तु को अगली कल से जोडना भी जानता है। इसी प्रकार तो वह जीता है। इसके अलावा जीवन बिताने का दूसरा रास्ता भी क्या है?

लेकिन जब जुताई का वास्तविक समय निकल गया और धानो की बुवाई भी शुरू हो गई तब तो जीवी को कानजी के आने की आशा ही छोडनी पडी।

[1] छोटी बलगाडी।

कभी कभी तो उसे ऐसा लगने लगता—'अभी हृदय की गति रुक जायगी अभी वह बाहर निकल पडेगा।' लेकिन जब इसम से कुछ भी न होता तो वह अपने ऊपर खीभती—'मरी! यदि तू ही मर जाती तो सारा क्लेस मिट जाता।'

और यद्यपि वह मरी नही थी परन्तु उसके बाद तो वह जैसे मौत के ही रास्ते पर चल रही थी। न किसी से बोलना, न चालना। कभी यदि हँसती भी थी तो मजबूर होकर ही।

यह देखकर धूला तो यही समझता था कि उस पर मूठ का असर है। इसलिए वह भी अन्यमनस्क होकर 'क्या करना चाहिए?' के विचार मे ही रहता था।

जब कि इन दोनो के आजकल के बर्ताव को देखकर बुढिया तीसरी ही चिन्ता मे पडी थी। उसके मन मे यह बात जम गई थी कि अब इन दोनो के मन आपस मे बिलकुल फट गए हैं। पास पडोस मे बातें भी करती—'मरे भले ही लडें झगडें पर तो भी आपस मे बोलें चालें तो सही। लेकिन वे दोनो तो मुह फुलाये ही घूमते रहते हैं।'

कोई बुढिया अपने अनुभव की बात कहती—"परन्तु भी तो सारे दिन घर की कुतिया की तरह घर मे ही घुसी रहती है। दो घडी बाहर रहे तो और कुछ नही तो कम से कम उसे खाना तो माँगना पडे। और तब क्या वह बिना किये रह सकती है?"

बुढिया ने यह भी कर देखा। परन्तु बात वह की वही रही। न धूला ने खाना माँगा, न जीवी ने बिना कहे परसा।

बुढिया ने पूछा तो पता लगा कि उसने अपने हाथ से लेकर ही खा लिया है। बुढिया ने जीवी पर अपना गुस्सा उतारा—"यह तो अच्छा है कि मैं जीती हूँ पर कल अगर मैं मर गई तो तुम्हारा घर-बार कैसे चलेगा?"

फूले हुए मुह मे ही जीवी ने जवाब दिया—'चलेगा, चलना होगा तो।'

सब-कुछ सोचकर उसे रोक दिया और कहा—"नहीं भाई नहीं, तेरे जाने की कोई जरूरत नहीं। वह तो मैं जाऊँगी। सो सब हो गया।" यों कहकर जीवी को शांत करने के लिए आगे कहा—'एक बार मुझे वहाँ हो आने दे। तेरी माँ को भी कुछ समझा-बुझा आऊँगी। फिर तू जाना और महीने-पन्द्रह दिन रह आना।"

जीवी को विवश होकर (क्योंकि न मानती तो भी घर से बाहर पैर कौन रखने देता इसलिए) मानना ही पड़ा।

बुढ़िया के लिए तो यह एक पंथ दो काज वाली बात थी। भाई का घर भी उधर ही था। 'कुछ दिन वहाँ भी बिता आयगी। और इस प्रकार बहू-बेटे अकेले रहेंगे तो हार झख मारकर एक दूसरे से बोलेंगे ही।' यह सोचते ही बुढ़िया का पोपला मुँह कुछ खिल उठा। मन में कहा भी— फिर तो बुढ़िया को किसी भाव नहीं पूछेगा। अब तो धूला माँ के बिना खाता ही नहीं, लेकिन बाद में तो उसे माँ के हाथ का भावेगा ही नहीं।'

साथ जाने के लिए जिद करते छोटे लड़के को भी बुढ़िया ने 'इसका चलना भी ठीक है। इसका यहाँ काम भी क्या है?' यह सोचकर साथ ले जाने की हामी भर ली। बहू-बेटा को अलग अलग सीख—दोनों में मेल कराने वाली—देकर एक दिन सबेरे बुढ़िया चल दी।

रास्ते में पड़ने वाले खेतों पर जाने के लिए सास के साथ आने वाली जीवी का अपनी सखियाँ, सौतेली होने पर भी जो माँ थी ऐसी अपनी सौतेली माँ, भाई बहनों आदि सबको बहुत-कुछ कहलवाना था, पर वह कुछ भी न कह सकी। खेत के पास आने पर ठिठकती हुई केवल इतना ही बोल सकी—'मेरी माँ, और मेरे भाई-बहन सबसे कहना कि जीवी तुम्हें बहुत बहुत" और रोने से बचने का अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी 'याद करती है' तो वह कह ही न सकी।

सास के जाने के बाद तो जीवी को घर बीहड़ वन से अधिक भयकर लगने लगेगा। यह अवश्य एक अच्छी बात थी कि रतन फिर आने-जाने लगी थी। लेकिन एक दिन धूला ने उसे भी बन्द कर दिया। रतन को हाथ

पकड़कर घर से बाहर धकेलते हुए भट्टा सी आँखें निकालकर वह बोला था—"खबरदार, जो फिर इस घर मे आई तो !"

जावी से बिना बोले न रहा गया—"इस बच्ची से क्या बदला लेते हो ?"

धूला को यह वाक्य भाले की नोक-जैसा लगा, परन्तु न जाने क्या अब उसे जीवी को मारने का साहस ही नही होता था। आये हुए गुस्से को दबाकर उसने इतना ही कहा—'बदला तो अभी लिया ही कहाँ है ? अब लिया जायगा।" और जीवी के दिन दिन क्षीण होते शरीर पर एक कड़ी नजर डालते हुए बोला—'उतावली क्यो हुई है ?'

उसे यकीन था कि जीवी को मूठ लगी है। जीवी का शरीर भी बिलकुल बदल गया था। धूला को तो उसकी चाल-ढाल भी भूत की छाया जैसी लगती थी। मन म सोचता था—घर मे से रांड का मन ही उचट गया है।' और बहुधा मूठ के भूतो को लक्ष्य करके कहता भी था—"सानो खानी हो तो खा जाओ, जिससे नजर के समाने तो न हो।'

अठारहवाँ प्रकरण

•

जीते जी जहर पीना

श्रावण मास की सजल बदलियाँ आती और सिर के ऊपर से बरसती हुई चली जाती। घडी मे सूरज दिखता और फिर बदलियो मे छिप जाता। पानी से तर-ब तर गाव की गलियो मे कीचड के ढेर जम गए थे। दूसरी ओर हरे भरे खेत पवन के झोका के साथ इधर से उधर लहरा रहे थे। बनते हुए दाने पर झपट्टा मारने के इरादे से दूर दूर से आये हुए तोते और कौए भी खेता के ऊपर घात लगाते उडने लगे थे।

यही महीना था। जीवी के जीवन का वह स्मरणीय दिन भी आज उसके सामने आ खडा हुआ था। लेकिन आज के और गत वर्ष के उस दिन मे जमीन आसमान का अंतर था। गत वर्ष आज के दिन उसकी आशा का उदय हुआ था। लेकिन आज सारा का-सारा दिन उसने पागल आदमी की तरह घडी भर मे रहट की मीठी मीठी हवा खाते तो घडी भर आँसू टपकाते, घडी भर मे कानजी से बातें करते तो घडी भर मे मूक बनते—ही व्यतीत किया। काफी रात बीतने पर मेले से वापस आती हुई युवतियो के गीत सुनकर तो वह बाहर भी निकल आई। पर तु कानजी आया होता तभी दिखाई देता न? उसकी सारी रात रोने मे ही बीत गई।

सवेरे वह गोबर कूडा डालने जा रही थी कि कोई शहर का आदमी सामने से आता हुआ दिखाई दिया। गुलाबी साफा बाँधे था। रगीन

कर्मोंउ के ऊपर निगारी कोट डाट था और ट जाने मे भी बगुले की पाख के समान दिखाई दन वाली धोती एसी थी जैसे माना फूक मारते ही उड जायगी। चौमासे के दिना मे भी उसन बूट पहन रखे थे। हाथ की छतरी भी कम बानी थी। और मुँह म लगी बीडी तो पैस की एक वाली (सिगरट) ही थी। यदि शरीर की ऐठन म फर्क न हाना तो जीवी का हृदय आनन्द के मारे छलाँगें मारने लग गया हाता लेकिन इस समय ता उसस एक नि श्वास ही निकल पडा।

बूटा की 'चर-मर' आवाज करत हुए चले जाने वाले युवक ने जीवी की ओर एक नशीली नजर डाली और सपाट से आगे बढ गया। जो कोई भी उसे देखता वही उमस हाल चाल पूछने लगता। जीवी कान लगाकर सुन रही थी—'नाना ! आ गया क्या भाई ! राजी-खुशी तो है न ? कान्जी और तुम एक ही जाह हा या अलग ?' वह युवक हँसकर जवाब देना हुआ और बीच बीच म सिगरेट का कश खीचता हुआ दूसरे मुहल्ले की ओर मुड गया।

परन्तु जीवी का मन अधीर हा उठा—'उससे कब मिलूँ ? कहाँ मिलू ? मेरे लिए कोई-न-कोई खबर जरूर लाया होगा !'' न भेजी होगी ता भी कोई बात नहीं, मुझे उनके हाल चाल ता मालूम हो जायँगे।'' विचार-तरगा मे खोई जीवी किमी समय घर मे घुसती है और कितनी देर म गोबर का टोकरा भरकर बाहर निकलता है, इसे देखने वाला यदि कोई होता तो वह स्वय देखे बिना कभी यह विश्वास न करता कि जीवी अपने हाथा स ही भरकर निकलती है।

परन्तु ऐसी निगरानी वह कब तक रख सकती थी ? चूल्हे पर दाल चढी थी। पानी की जेहर खाली बज रही थी। उलझन मे पडी जीवी ने जब विचार किया तो वह स्वय को ही मूख लगी— परदेस स आया है ता कोई या ही थाडे ही चला जायगा ? महीने पन्द्रह दिन तो रहेगा ही।' फिर भी पानी भरते समय वह इधर-उधर नजर दौडाती ८

दूसरे दिन तो नाना खुद भगतजी के यहाँ आकर बैठा

कानजी को मिली बीस रुपए की नौकरी की, अपनी पच्चीस की और उसके बाद शहरी जीवन की बातें बडे जार शोर से कर रहा था। बेचारी जीवी ! कलेजे क टुकडे के—आखो की पुतली के समाचार भी नही पूछ सकती थी। एक बार आँगन मे बछडा बाँध रही थी कि नाना को कहते सुना—'यही वह धूलिया की नई औरत है क्या ? जीवी या ऐसा ही कुछ नाम है न ?' और अपनी नजर मिलते ही उससे पूछा भी—' क्या जीवी भाभी, क्या धूला घर नही है ?'

' नही'', कहकर जीवी मुस्कराई। भगतजी को बैठा देखत ही वह सँभली। धोती का पल्ला खीचकर घूघट काढती हुई घर मे घुस गई।

कोई चौथे दिन जाकर नाना स मिलने का अवसर मिला। उसे भगतजी के यहा से उठते देखते ही जीवी भी उसके पीछे पीछे खेतो की आर चलने लगी। आधे रास्ते पहुचते ही उसे पकड लिया। परन्तु वास्तव मे नाना ही धीमा पड गया था। जीवी ने ही बात शुरू की— 'शहर से आए हो ता वहाँ के कुछ समाचार तो बताओ, नाना भाई !''

तुम्ह न बताऊँगा तो किसे बताऊँगा जीवी भाभी ! इसीलिए तो मैं तुमसे मिलने का मौका ढूढ रहा था।'' कहकर जीवी की ओर देखकर ऐसे हँसा जैसे बहुत पुरानी जान पहचान हो।

आश्चय करती हुई जीवी बोल उठी—''मुझसे मिलने को ? हम लोग जीवन म मिल तो आज पहली ही बार रहे हैं न ?''

' यह ठीक है, परन्तु तुम्हारा परिचय यहा आन से पहले ही हो चुका है।' कहकर जैस किस प्रकार ?' का प्रश्न पूछती जीवी को ही सुना रहा हो ऐसे नरम आवाज म बोला—' जीवी भाभी, कानजी तुम्हे बहुत याद करता है। जिस दिन यहा क लिए रवाना हुआ उसकी पहली रात का ही उसने मुझस तुम्हारी बात कही थी।

क्या ?'' पूछती हुई जीवी का हृदय जैसे रुक गया हो। फटी हुई आँखो और हृदय म जिज्ञासा उभर आई थी।

' शुरू म आखिर तक सभी, जीवी भाभी ! कानजी-जैसे की आँखें

सजल हो गई थी, यह कहूँ तो भी कोई न मानेगा, पर उस रात वह पेट भर कर रोया था।" कहकर अन्दर की जेब में हाथ डाला और एक पुड़िया निकालकर जीवी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"उसने तुम्हारे लिए ये दो चूड़ियाँ भेजी हैं। प्रेम की निशानी के रूप में ही।"

'ले, कि न ले' सोचती हुई जीवी ने हाथ बढाया। पूछा—"कुछ और कहते थे क्या? वे हैं तो मजे में? कब तक आयेंगे, कुछ बताया है?' अलग होने वाले रास्ते पर आते ही जीवी ने इकट्ठे सवाल पूछ डाले।

परन्तु नाना ने अन्तिम सवाल का ही जवाब दिया—"आने का कुछ पक्का तो नहीं है, पर आयगा दिवाली तक। फिर छुट्टी मिलने पर निर्भर है।"

जीवी को अभी बहुत-से सवाल पूछने थे परन्तु इतने में ही रास्ते में धूला को जाते देखा। पग उठाते हुए पूछा—' अभी तो रहोगे न?' कहकर धीरे से बोली—' जाने से पहले मुझसे मिलना।" और चल दी।

धूला की आँखें फट गई थी, पर इतने में ही नाना बोल उठा—' ओहो! क्यों धूला भाई, अब तुम हमसे काहे को बोलोगे? अभी अभी जीवी भाभी से भी मैं यही पूछ रहा था कि हमारे धूला भाई को कहीं बासा कूसा तो नहीं खिलाती?"

धूला ने हँसने की कोशिश करते हुए कहा—"होता है भाई! घर में बासी भी खाना पड़ता है।" और फिर कब आया, क्या हाल चाल हैं आदि ऊपरी सवाल पूछकर घर की ओर चल दिया। नाना का घर भी पास—रास्ते पर ही—था। घर की ओर मुड़ने से पहले जिधर जीवी गई थी उधर देखा, पर वह तो रास्ते में ही मुड़ गई थी।

घर आकर देखा तो पणहरी पर की जेहर खाली थी। चूल्हे में आग का पता नहीं था। हुक्का लेकर पड़ोस में आग लेने गया। चिलम में अंगारा रखते हुए कह रहा था—"इस घर के ढंग तो देखो। ता पानी की बूंद नहीं है और इस समय निकली है चारा लेने वह क्या सोचकर गई है?" या बड़बड़ाता-बड़बड़ाता ...

"कौन है ?" कहते हुए नाना ने खिडकी से झाँका। जीवी को देखते ही रास्ते पर आया। मुह नीचा किये ही बोला—' मेरे कारण तुमको, मार "

"तुम्हारे कारण कुछ नही भाई !" कहती हुई जीवी ने बडी मुश्किल से आँसू रोके। उस पुडिया को उसे देते हुए बोली—"यह अपने साथी को दे देना !" और बडी कठिनाई से मुह पर हँसी लाते हुए बोली—"और कहना कि जीवी ने यह अपनी ओर से भेजी है।" खखारकर मुह के ऊपर हास्य लाती हुई फिर बोली—"कहना, जब बहू लाओ तब मेरी ओर से यह पहना देना !"

"लेकिन ये तो वे है, जिन्हे मैं लाया था।"

"तुम कहना कि मैंने अपनी ओर से ऐसा कहकर वापस कर दी है।" कहकर आखो को जल्दी जल्दी खोलती और मूदती जीवी हँस रही थी या रो रही थी, यह नाना भी न जान सका। जीवी ने फिर गला साफ किया। बोली—और कहना कि जीवी तुम्हे याद करते करते ही " लेकिन खुद क्या कह रही है, इसका ध्यान आते ही उसने 'गई है' शब्द का बाहर नही आने दिया और वाक्य बदलकर आगे कहा—"कदाचित् हम मिलें न मिलें, इसलिए इतना तो अवश्य ही कह देना। और ' बगल मे निकलने वाले दो आदमियो को देखकर या शायद किसी और वजह से, उसने तुरत पीठ फेर ली। आखो मे छलक आने वाले आसुओ के कारण एक बार ठोकर भी खाई। नाना तो उसकी पीठ को ही देख रहा था।

पीछे आने वाली औरतें तो जीवी को नाना से बातें करते देखकर दातो-तले अगुली दबा गई 'हाय हाय बहना ! कैसी औरत है ? घडी भर पहले हड्डिया तोडी गई है लेकिन फिर भी नाना से बातो मे लगी है। नाशपीटा धलिया भी गया बीता है, नही तो यदि ठीक से मरम्मत कर दे तो जनम भर की कुटेव भूल जाय। बेचारे को लोग यो ही दोष देते हैं।

सवेरे मार पीट करने के बाद धूला कहा गया और उसने क्या खाया, इसका कोई पता न था। लेकिन जब जीवी रोटी बना रही थी तब वह न जाने कहा से गुस्से मे भरा हुआ आ धमका। किसी ने उससे कहा होगा तभी न ? सीधा रसोई मे गया। जीवी ने एक रोटी उतारकर चूल्हे के आये[1] मे रखी थी और कठौती मे दूसरी दो रोटिया का आटा लेकर मसलन की तैयारी कर रही थी कि धला ने उसकी कलाई पकडकर खीचा। कठौतो उलट गई है, इसका भी किसी को ध्यान न था। 'निकल राड ! तू मेरे घर म एक घडी भी रहने के लायक नही। मैं तेरा मुह भी नही देखना चाहता !'' कहकर आसारे मे ले जाकर डाल दिया। जैसे गडिया बैल को क्रोध मे लाते लगा रहा हो ऐसे जीवी की कमर मे लातें मारते हुए कहा— 'चली जा, नही ता आज रात को तेरा गला काट डालूगा समझी !' जैसे बिजली चमकती है ऐसे ही जीवी की आखो मे क्रोध झलकने लगा—''इससे पहने तो मैं ही तुझे मजा चखा दूँगी, तू आ तो सही !'' धूला की गजना और हाथ दोनो अभी चालू थे— 'आज दरते मरते तेरा दम ही निकाल देगा है। तू भी क्या समझेगी कि कोई मिला था।''

पीछे से मुहल्ले के आदमी दौडे आये। भगतजी धूला को मारने लगे— 'इसके हाथ की गरम गरम रोटियाँ खाना ! तू अकेला ही औरत वाला है क्या ? इतनी ज्यादा मारी है ! अगर कुछ हो गया तो कल तेरी दुर्गति करा दूँगा। अगर तुझे जेल न भिजवा दूँ तो मेरा नाम भगत नही !''

''ले चल, उठ छोरी !'' कहकर जीवी को उठाकर घर ले गए।

यदि और कोई होता ता धूला ने मुहतोड जवाब दिया होता— 'अरे चल चल ! मेरे घर के मामले मे दखल देने वाला तू है कौन ?' परतु भगतजी से वह डरता था। उसकी धारणा थी कि यदि भगतजी चाहे तो सामने वाले आदमी का खडा खडा सुखा डालें। इस कारण

[1] चूल्हे ा ऊपर का खुला भाग।

धूला चुप ही रहा।

गाव की औरत ने भी उसकी सुध खबर ली। बडी देर के बाद एक-एक दो दो करके कोई घर गई तो कोई भगतजी के ओसारे मे बैठी बैठी रोने वाली जीवी को दिलासा देने लगी।

आदमियो की भीड कम होने पर हीरा की बहू ने धूला को सीख देकर शात करते हुए कहा—'लो चलो उठो! सवेरे भी चूल्हा नही जला। फिर खाया क्या होगा? उठो मेरे घर चलो! खाने को देती हूँ। खाकर खेत पर सोने चले जाना। नाहक फजीहत कराये बिना" कहकर धूला को हाथ पकडकर खीचने लगी। बोली—"उठो न।"

"नही नही, ककु भाभी! क्यो जबरदस्ती करती हो। खाने को तो यहाँ भी बनाया है। तुम जाओ मैं खा लूगा!"

परन्तु ककु को आज धूला का विश्वास न था। हो सकता है कि वह घर रहे और रात मे गुस्से मे कुछ ऊँच नीच कर बैठे। इसलिए उसे खिलाकर खेत पर भेजने मे ही खैर थी। ककु ने घर मे जाकर देखा तो एक रोटी तैयार थी। सब हँडियाँ देख मारी, पर सभी खाली थी।

बाहर आकर ओसारे के थून[1] के सहारे खडी ननद से कहा—"नाथी बहन, अपने यहाँ से कटोरी मे थोडी-सी दाल ले आओ! जाओ जाओ खिलाकर निकालू यहाँ से।" कहकर फिर धूला के पास आई—"अच्छा उठो, नही तो फिर खीचना पडेगा।"

धूला खडा हुआ। नाक सिनकी। ऊब के साथ बोला—'लेकिन मुझे भूख-जैसी तो कुछ भी नही ककु भाभी! बेकार क्यो पीछे पडी हो?"

"तो यहाँ ज्यादा है ही क्या? यह एक ही तो रोटी है। लो, यह दाल भी आ गई। दाल मे मीडकर खाओ और यहाँ से लम्बे पडो! तुम्हारे लडाई झगडे सुनकर तो अब सारे मुहल्ले वालो की नाक मे दम आ गया है।'

विवश होकर धूला खाने बैठा। कटोरी की दाल बेले मे डाली और

१ खम्भा।

उसम रोटी मीड ली। चरा रहा है कि नहीं इसका ध्यान किये बिना ही पौना हिस्सा निगल गया। हाथ धोते हुए बड़बड़ाया—"पता नहीं साले आटे मे बिल्ली मूत गई है या कोई और बात है? कोई आटा ढके तब न? फिर कहती हो कि मारता है।"

'होगा, होगा! तुम्हें तो सभी लगेगा। अब बिछोरा, तमाखू आदि जो कुछ लेना हो सो लो और घर के बाहर निकलो।"

"घर खुला है बकु भाभी!" कहकर घूला खेत की ओर रवाना हुआ।

उधर भगतजी के यहाँ एक तीसरा ही कौतुक हो गया था। महीन आवाज में रोती जीवी के कान में घूला को आने के लिए बुलाती बकु की आवाज पडी। सहसा उसका रोना बन्द हो गया। वह ऐसी बावली आँखो से देखने लगी जैसे स्वय ही धला की थाली मे रोटी परस रही हो। बेले का खीचने के लिए हाथ बढाती है तो देखती है कि सामने भगतजी आदि खडे हैं। उसे भगतजी से घूघट काढने का भी होश न था। भगतजी की ओर देखते ही उनके नाम की चीख और रुदन एक साथ निकल पडे—"काका!" दूसरे ही क्षण मुह घुटनो के बीच म छिपा लिया।

भगतजी के पास खडे दो चार युवकों को विचित्र सा लगा। भगतजी ने तो पूछा भी—'यह क्या है?" पर उसे चुप देखकर कहने लगे—'रो अपने माँ बाप को। इसम भगत काका क्या करे?' जीवी ने फिर सिर उठाया, घर की ओर देखा और फिर मुह छिपा लिया। चाहे दबे हुए रुदन के कारण हो या अन्तर ही घुटन के कारण पर उसका सारा शरीर काँप रहा था। तीसरी बार ऊपर देखा तो उसकी आँखे इधर-से उधर घूम रही थी। चीख जैसी एक जोर की आवाज लगाई— भगत काका! रोटी मे तो गज " परन्तु 'ब' कहने के पहले ही वह मूर्च्छित हो गई। भगतजी क्षण भर के लिए सोच मे पड गए परन्तु सोचने की अपेक्षा बेहोश पडी जीवी की देखभाल करनी ज्यादा जरूरी थी। अरे, देख क्या रहे हो? तमारा (मूर्च्छा) आ गया है। देखते नहीं। ले चलो घर मे

'अब मैं ठीक हूँ। मैं घर ही जाऊँगी।' कहती हुई जीवी ऐसी तेजी से घर की ओर चली जैसे बिलकुल स्वस्थ हो गई हो।

"अब कोई बात नही।' कहकर हीरा ने भी छुट्टी ली—"अच्छा तो भगतजी, मैं चलू। न जाने सूजरा ने खेतो मे क्या किया होगा ?"

परन्तु भगतजी को अब भी कुछ अन्देशा था। अच्छा।" कहकर हीरा को तो जाने के लिए कह दिया, पर उसके चले जाने के बाद सोचा — हीरा से कहा नही, नही तो यदि उसकी बहू जीवी के साथ सोने चली जाती तो बहुत अच्छा होता।'

चाहे कैसे ही हा पर भगतजी स्वय खेत पर सोने न जा सके। ओसारे मे बैठे बैठे धूला के घर मे दिखाई देने वाले मन्द प्रकाश की ओर देखते रहे। कभी हिम्मत न हारने वाला दिल आज बैठा जा रहा था।

परन्तु घर मे जाकर चूल्हे के आगे मे हाथ पैर मारने वाली जीवी का जी ता जैसे शरीर मे ही न था। एक बार दरवाजे तक गई और वापस लौट आई। बेले पर नजर पडी। प्राण जैसे आँखो मे आ गए। फिर दरवाजे की ओर मुडी। झटपट ओसारे मे बाहर आई और यकायक ठिठक गई। पीछे मुडने को ही थी कि भगतजी की खासी सुनाई दी। जल्दी-जल्दी उधर चली, पर भगतजी के ओसारे की औलाती[1] तक पहुँचते पहुँचते ता उसके पैर जैसे टूट गए थे।

'क्या है जीवी बहू ? ऐस क्यो ' यह पूछते हुए भगतजी की आवाज न उसे हिम्मत दी। ओसारे मे चढकर भगतजी के पास पहुँचते ही बोल पडी— 'भगत काका, जल्दी करो ! आज मुझे उनके बचने की आशा नही। जरा जल्दी ।'

भगतजी की आँखो के आगे से जैसे सारा पर्दा हट गया हो। बैठे होते हुए बोले— 'तू अपने घर जा ! मैं जाता हूँ। महुआ वाले खेत मे ही है न ?"

१ ओसारे या छप्पर का वह किनारा, जहाँ से ऊपर पडा पानी बहकर नीचे गिरता है।

और खूटी से लाठी उतारते हुए 'तू बिना घबराये जा और घर जाकर सो जा।' कहकर घर खोला। अंधेरे में ही कुठीला खोला। लोटे में घी का बरतन औंधा किया और लाठा लेकर बाहर निकले।

ओसारे से उतरते हुए बोले—उसकी ज़िन्दगी होगी तो कुछ न बिगड़ेगा। तू चुपचाप घर जा।

किन्तु मचान के ऊपर पहुँचकर भगतजी ने घूला की जो हालत देखी तो घी पिलाने का विचार स्थगित कर दिया। अंधेरी रात के भयानक वातावरण की अपेक्षा मचान की हवा कई गुनी अधिक भयानक थी। वहाँ शव के साथ बैठने का साहस या तो भगतजी कर सकते थे या वह जिसकी घ्राणेन्द्रिय पूर्णतया नष्ट हो गई हो। भगतजी ने घूला के हाथ को अपने हाथ में लिया। नाड़ी देखी तो ठेठ बगल में जाकर पकड़ में आई। देखते-देखते वहाँ से भी गायब हो गई। और एक आखिरी पछाड़ खाकर घूला का शरीर बिलकुल लकड़ी हो गया।

ज़ोर से साँस लेकर भगतजी खड़े हुए। लोटे के साथ मचान से उतरे और घर की ओर चलने लगे। सिर के ऊपर काले बादल चूक रहे थे। नज़र पड़ते हुए इक्के दुक्के तारे ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे किसी अत्यन्त गहरे प्रदेश में जाकर खड़े हो गए हों। आसपास की दिशाएँ अँधेरे की चादर ओढ़े सो रही थीं। मुर्दों के ऊपर कदम रखते किसी अघोरी की भाँति भगतजी गाँव की ओर चले जा रहे थे।

गाँव के कुत्ते ने उनकी विचार शृंखला तोड़ी। विचारों की गठरी बाँधते हुए स्वगत कहने लगे— इतनी अधिक बुद्धि होने पर भी मनुष्य अन्त में अशक्त ही ठहरता है।

सीधे दरवाजे की ओर जाते हुए भगतजी बगल में कुछ खटका होने से चौंके— कौन है? और जीवी को देखकर बोले—'यहाँ बाहर क्या बैठी है? घर में से '

'क्या हुआ भगत काका?' जीवी ने घूंघट भी नहीं काढ़ा था।

जो होना था वही तो ' बड़बड़ाते हुए भगतजी ने कहा—

"अच्छा, मुझे उसके एक जोडी कपड लाकर दे।

"लेकिन मुझे बताओ तो सही।" किवाड खोलने के बाद फिर जीवी ने पूछा और भगनजी के मुह की ओर देखने लगी।

"अच्छा तू मुझे कपडे दे पहले।" कहकर भगनजी बोले—"जो होना था, सो हो गया। अब जानकर भी तू क्या करेगी? अच्छा चल, ला देर होती है। यह लोटा घर म रख देना?" कहकर भगतजी ने लाटा किवाडा के पास रख दिया। चलने को तत्पर जीवी स फिर कहा—देख, होने वाली बात हो गई। अब तो हृदय को कडा करने मे ही भलाई ह। जैसे कुछ पता जानती ही न हो। यदि तूने इतना कर लिया तो बाकी सब मैं सँभाल लूगा।'

सारा मुहल्ला सुनसान था। अन्य सब के ऊपर शासन करता भूरा कुत्ता यह तो भगत काका हैं' कहकर सबको चुप करता हुआ ओसारे के बीचो बीच आकर ऐसे खडा हो गया मानो वह यह सोचकर आया हो कि 'देखू तो सही क्या मामला है?' और कपडा को बगल मे दबाए खेता के रास्ते जाने वाले भगनजी के पीछे-पीछे कुछ फासला रखकर, चलने लगा।

खेत के मचान से उतरने हुए भगतजी के हाथ म गन्द कपडा और गुदडी की एक पोटली थी। नीचे रखे हुए कण्डे को लेकर झरने की ओर चल दिए। अब तक मस्ती मे बैठा हुआ भूरा कुत्ता फिर पीछे हो लिया।

अधेरे म झरने का पानी निधडक बह रहा था। पानी की गहराई की अपेक्षा भगतजी के मस्तिष्क की गहराई कही अधिक थी। सोच विचार के बाद नहान का काम भी पूरा हुआ। धोती निचोडकर कधे पर डाली। चलते चलते उन जलते हुए कपडो की ओर फिर एक नजर डाली और कुछ याद आन पर वापस लौटे। किनारे से एक लकडी लाकर अधजले कपडा को नदी की धारा के हवाले किया और चल दिए गाँव की ओर।

अब तक किनारे पर बैठा हुआ भूरा भी साथ ही चल दिया। भगतजी न पीछे देखा। भूरा को देखते ही कुछ चौंके और मन ही मन हसने लगे।

'भूरा, देखा यह तमाशा ?' कहकर बगल मे चलते हुए भूरा को ही जैसे समझा रहे हो ऐसे बडबडाये—हम मनुष्यो को कुछ-कुछ ऐसा भी करना पडता है भाई ।'

भीगी हुई धोती को खूटी पर फैलाकर भगतजी जब खाट मे लेटे तब आने वाले अरुण का स्वागत करते मुर्गों ने बांग देनी शुरू कर दी थी। चक्कियो की 'घरर् घरर' आवाज भी सुनाई देने लगी थी। गीदड भी 'हू वा हू वा' करते सीमा छोड रहे थे ।

मचान के नीचे रखे हुए धूला के शव के पास बैठे सब लोगो के मुह मे भगतजी के ये शब्द थे—"हाँ भाई, हाँ जानवर ही खा गया है।" पर आँखो मे यही भाव था—'आखिर राड बेचारे के प्राण लेकर ही मानी।'

इसी दृष्टि से देखने वाली गाव की औरतो के बीच जीवी के हृदय की क्या दशा थी, यह कहना कठिन है। चूडियाँ फोडती एक देवी ने तो कह भी डाला कि "अगर ऐसा ही करना था तो मूरख, ये पहनी ही क्यो थी?"

लेकिन जीवी की दशा ही ऐसी नही रह गई थी कि यह सब सुनती समझती। और यदि सुनती-समझती भी तो उसम ऐसा नया भी क्या था ? धूला को उसी ने जहर दिया है, यह तो वह स्वय ही मान मानकर बैठी थी। औरतो के कहने के बावजूद न तो वह रोती थी और न विलाप करती थी। कहने वाले की ओर टुकुर-टुकुर देखती रह जाती थी।

एक प्रकार से यह अच्छा भी था। नही तो शाम के वक्त आ पहुँचने वाली बुढिया का विलाप—उसकी वे गालियाँ—सुनना बडा कठिन होता। बुढिया को शात करने के लिए आने वाली स्त्रियाँ अपनी अभागिनी जात के लिए क्या क्या कह रही थी, यह सुनने की भी उसे रत्ती भर चिन्ता न थी। वह तो आगन के खम्भे के पास बैठी दबी नजरो से क्षितिज की ओर देख रही थी। उन आखो म विचारो की एक तरग तक नही उठती थी।

'महेरी'[1] खिलाने के लिए आने वाले लोगो ने जब उसे उठाया तब उसे इस बात का भी पता न था कि उसे किसलिए उठाया जा रहा है।

१ ज्वार के आटे को छाछ के साथ पकाकर बनाया गया खाद्य पदार्थ।

कुठाले के पास बिठाकर उसके आगे थाली रखी पर वह खाने के बदले थाली की ओर देखने लगी। बेचारी औरतें जीवी को समझाते समझाते थक गइ, पर वह समझने की दशा मे हो तभी समझ न ?

लेकिन दूसरे दिन तो उसने खाया भी और घर का काम काज भी ठीक किया। परन्तु यह सब किया यन्त्र चालित पुतली की ही भाति। न कुछ बोलना न चालना। जब तक सिर हिलाकर 'हा' 'ना' मे जवाब दिया जा सकता था तब तक वह जीभ भी नही हिलाती थी।

उसकी सौतेली माँ रोने आई थी, पर उससे भी वह कुछ न बोली। भाई-बहनो के हाल चाल तक न पूछे। मा न छ महीने तक शोक मनाने के बाद बुलाने की जो बात कही थी उसके बारे म भी उसने कुछ नही कहा।

कपडे पहनने का भी कोई ठिकाना न था। जैसे-तैसे खास भर लेती। सिर के अधखुले बाल भी हवा म उडते रहते।

परन्तु जीवी की दशा को समझने वाले भगतजी तो यही कहते—'मौत का जहर तो देर-सवेरे सबको पीना है, पर यह जीते-जी जहर पीना कठिन है समझे भाई!'

किसी किसी को उस पर तरस आता और वह कहता—'बेचारी की दशा तो देखो! दिमाग खराब हो गया दीखता है।''

तो अधिकाश की राय थी—'काई दिमाग नही खराब हुआ। तुम्हारे और मेरे का खराब कर दे, ऐसी है यह। सब जान-बूझकर पागल बनना है।' और ऐसे ही अनक बातें होती। कई बार थाडे बहुत शब्द जीवी के कानो से भी टकराते पर वे टकराकर लौट जाते, बस। दिन भर कलेस करते और बात-बात म गाली देते सास और देवर को भी वह कभी थू करके जवाब न देती।

यह सब होन पर भी जब वह पानी भरने जाती तो ढाल उतारने के वक्त रोज ऐसे देखती जैसे मानो खेता के परे—सामन दिखने वाले बादलो के उस पार देख रही हो जैस सुदूर क्षितिज से कोई आने वाला हो।

उन्नीसवाँ प्रकरण

•

अधूरा गीत

विजय-दुदुभी बजाता हुआ भादो का बादल धरती से विदा ले चुका था। छैला की तरह झूमने चलने वाले बादलो के अतिरिक्त आकाश लगभग स्वच्छ था। आने वाली शरद् ऋतु के स्वागत मे गुलाल उडाती सध्या भी अस्त हो चुकी थी। शुक्ल पक्ष की दूज का चन्द्रमा क्षितिज के पास खडा मन्द मन्द हँस रहा था।

पृथ्वी पर भी शरदागम के गीत गाये जाने शुरू हो गए थे। ऊधडिया के लोगो ने भी हर साल की भाँति गाव के बीच म 'गरबा' की व्यवस्था की थी। बालिकाओ ने टूटे फूटे गीतो से शुरुआत भी कर दी। लेकिन शाम होने पर भी न तो गाँव के युवक ही गीत गाने को इकट्ठे हुए और न कोई युवती ही आई।

हालाँकि पहले एक दो दिन तो ऐसा ही होता है कि कोई दो जने आते हैं और बराबर वालो को न पाकर लौट जाते है, लेकिन आज वहाँ तीन चार जने आते और वे उस लौंडियायी पचायत को देखकर निराश हो जाते। हा यदि कोई बुलाने वाला—आग्रह करके रोकने वाला होता तो पहले ही दिन से—भले ही देर से सही—शुरुआत तो हो ही जाती। और शुरुआत होने के बाद किसी को बुलाने या आग्रह करने की तनिक भी आवश्यकता नही रहती। हर गाँव मे कोई न कोई ऐसा माई का लाल होता ही है जो इस प्रकार के हर एक मामले मे घर के ब्याह की तरह

शुरू की—

"समय नाम का एक आदमी था। एक दिन वह पास के बड़े गाँव मे सौदा-सुलफ लेने गया। तेल है, मिर्च है अट्ट है सट्ट है, यो लेते लिवाते देर हो गई। समय ने जल्दी की। उन मिर्च नमक की पोटलियो को एक मे लपेटकर पीठ पर डाला और तेल की बोतल हाथ मे लेकर लम्बे लम्बे डग भरते हुए चला।

चलते चलते समय मन मे कह रहा था—'आज घर जाकर ऐसा बिना पानी का साग बनाऊँगा कि बस! सरसा का तेल तो ले ही लिया है। कढाई मे दो परी[1] डालकर, ऊपर मे राइ मेथी छोडकर ऐसा जोर का बघार दूगा!' लेकिन समय बघारता क्या अपना सिर? उसके घर मे ऐसा कुछ था ही नहीं जिससे कि बिना पानी का साग होता। लेकिन समय भाई को इसकी कोई खबर ही न थी। उसे तो बहुत दिन बाद मिलने वाले सरसो के तेल का जोरदार बघार देना था। जैसे दिमाग मे दिये जाने वाले बघार का धुआ नाक म घुस गया हो ऐसे समय को इस समय तो खाँसी भी आ गई। फिर भले ही घर जाकर वह रोज की तरह कढाई खटकाव।"

इतनी बात होते-होते तो दूर बैठी औरत भी न जाने कब पास सरक आई थी। गरबा गान वाली लडकिया भी मौका पाकर वहाँ बैठ गई थी। मुहल्ले के वृद्ध पुरुषो को जब कहानी की गध आई तो वे भी चुपचाप आकर खाट की पाटी पर टिक गए। गरबा का दीपक[2] भी ऐसे शात और निश्चल भाव से जल रहा था, जैसे वह भी कहानी सुनने म तल्लीन हो। सबकी आखें भगतजी की ओर लगी थी। और यदि एक बुढिया की नजर न पडी होती तो किसी को इस बात का पता भी चलता कि गरबा के दीपक का घी कुत्ते के पट मे कब चला गया।

हुक्के के दो घूट लेकर भगतजी ने कहानी को फिर आगे बढाया। इसी बीच हीरा जैसा हुकारा भरने वाला भी आ गया। फिर क्या

[1] एक नाप।

[2] 'गरबा' के समय जलाया गया दीपक।

कहना था ?

"इसके बाद तो समय भाई 'गेहूँ की रोटी बनाऊँगा, कछू भाभी के यहाँ से थोड़ा सा घी भी लाऊँगा। और ' या सूब मन के लड्डू खा रहा था। इस प्रकार रास्ते म खाना भी तैयार कर लिया। ऐसा करके जैसे ही खाना खाने बैठने की सोची कि उसके कान म औरत की-सी आवाज आई। समय ने मन म कहा—'घर मे साली औरत तो है नहीं, फिर यह बोल कौन रहा है।' अगल-बगल नजर डालकर देखा तो पता चला कि एक तो वह खुद ही रास्ते मे जानमारी करके चल रहा है और दूसरे दाइ आर एक औरत भी चली आ रही है। समय भाई ने सोचा कि चाल धीमी कर दे, पर रौब ही रौब मे तेज चलना जारी रखा।

औरत न दुबारा पूछा—'किस गाँव के रहने वाले हो ?'

'ऊधडिया।' कहकर समय भाई आगे बढ।"

अपने ही गाँव का नाम सुना तो लोग खिलखिलाकर हँस पडे। होगा कोई हीरा भाई जैसा।" तो दूसरे ने किसी और का नाम लिया।

भगतजी ने आगे कहा—'वह औरत अपनी इस वाली के जैसी मुहफट होगी। पूछा—'लेकिन अपना नाम तो बताओ!'

'मेरा नाम है समय।' कहकर ढीले पडते समय भाई ने मन की लगाम खीची। और फिर तेजी से चलने लगे। उस औरत ने जरा नखरे से कहा—'ओहो,ऐसे गज गज भर के डग भरकर चल रहे हो! जरा साथ तो दो।'

समय भाई के पैरो मे जैसे किसी ने लाठी मार दी हो। मन में सोचा—'एक से दो भले।' और धीमे पडते हुए पूछा—'लेकिन अपना नाम तो मुझे बताया ही नहीं।

मेरा नाम है बखत—'कहकर उस औरत ने अपनी तारे-जैसी आँखें समय के ऊपर जमा दी।

समय भाई कुछ खिले! बोले—'नाम तो अच्छा रखा है।'

लेकिन बखत भी उसका ऊपल्ला पाट थी। होठो मे हँसती हुई बोली— ता तुम्हारा ही नाम कौन-सा बुरा है ? समय कैसा सुदर नाम है।' कहकर वह समय भाइ की आर मोहक दृष्टि से देखने लगी।''

कहानी कहते हुए भगतजी अभिनय भी कर रहे थे। यह देखकर औरतें पेट फाडकर हँस रही थी।

भगतजी ने आगे कहा—''ऐसे करते करते दानो जने शाम का ऊघडिया आ पहुँचे। समय न सोचा— बेटा ! तूने औरत का साथ दिया सो ता ठीक किया, पर अब यह जायगी कहाँ ? समय भाई मुहल्ले के नाके पर ही रुक गए। बखत स पूछा— लेकिन अब तुम जाओगी कहाँ ?

औरत को आश्चय हुआ। समय के मुह की ओर देखने हुए बोली—'क्या, तुम तो कहत थे कि ऊघडिया म रहता हू। तुम्हारा घर ता हागा न ?

सिर खुजाते हुए समय भाई बोले—'घर तो है ! प र तु घर मे मैं अकेला ही हू।

ता मैं भी ता अकेली ही हू।' कहत हुए बखत उसके आगे आगे हो ली। बेचार समय भाई भी डरते डरते और यह सोचते हुए कि कही कोई दख न रहा हा, परेशान-से पीछे पीछे चले।

समय कमर की करधनी मे लगी चाबी खोलने को हुए कि उसस पहले ही बखत ने उस खोल लिया और दरवाजा खालकर ऐसे घर मे घुस गई जैसे घर की ही औरत हो। समय भाई यो खुद भी शौकीन तबियत थे। जेब मे दियासलाई भी थी और शहर से पैस का पान बीडी भी लेते आये थे। बखत ने दियासलाई लेकर दिया जलाया। मुह फाडकर खडे समय के हाथ से बातल लेकर— बैठो न खाट पर' कहा और बोतल को पनहरी के ऊपर लगी कील से लटका दिया। समय मुह देखता रह गया—बेटा ! कील हाने हुए भी तू बोतल को चूल्हे के ऊपर क्यो रखता था ? इतना भी न सूझा ?' इसके बाद बखत पोटली लेकर आराम से घर मे बैठी। छाटी छाटी पाटलिया दखी। इसमे क्या है ? इसमे क्या

है ? या पृछनी हुई एक क बाद एक खालने लगी।

खाट पर बैठे समय ने मन मे कहा—'चाह जा कुछ करा, पर घर तो औरत का ही है समय' !"

हीरा ने समथन किया— 'हाँ भाई !" और लोगो की आर देखकर बोला—' एक तो सड-मुसड आदमी और उस पर मिल गई तितली जैसी औरत, फिर क्यो नही होगा ?"

भगतजी ने आगे कहा—"इसक बाद ता भाई समय के नहाने के लिए गम पानी भी किया और बिना पानी के मूग रांधकर तीन रोटियाँ भी बना डाली। खाने के लिए बैठे समय को लगा—'मान चाह न मान समय! पर है यह अपने पिछने जनम की सम्बधिन हा'।'

तुम्ह तो लगेगी ही।" काली धीमे से बडबडाई।

भगतजी कहन लगे— 'बखत बाट दखती बैठी थी कि कब समय की थाली की रोटी खत्म हो और कब दूसरी रखे। लेकिन राटी तो तब न खत्म हो जब कि खावे। खाने वाला आज हप स फूला नही समाता था। एक गुस्सा मृह मे रखता था और झुक झुककर बखत के मह की ओर देखता था। बखत से कहे बिना न रहा गया— छोडो न, यो व्यथ की बाते क्यो करत रहते हो ?

समय हँसकर बोला— ऐसी बखत इस जनम म फिर कब 'परतु 'आयगी' कहने से पहले ही बखत बोल उठी— बखत तो आ ही गई है न ? जी ठिकान करके खा लो चुपचाप'।"

हीरा बाल उठा—' देखो लुच्ची की बात! कैमी चालाक औरत है ?'

"चालाक ता है ही।" कहकर गाव के लोग हँसने लगे।

'फिर भगत काका ?"

जरा हुक्का तो पीने दो!" कहकर दो चार कश खीचे और फिर हुक्के को चलता किया। बोले—"फिर तो खा पीकर दानो जने सो गए ?'

भगतजी के पास वाली खाट से किसी युवक ने प्रश्न किया—''एक साथ या अलग अलग ?'' और इस प्रश्न ने तो न केवल समस्त मण्डली को वरन् भगतजी को भी हँसा दिया। भगतजी ने जवाब भी दे दिया—''यह तो सब समझ लेने की बात है भाई ! समय जैसे सड मुसड आदमी के यहाँ ऐसे कौन-से मेहमान आते थे, जो दो चार खाटें रखता ?'' और यह सुनकर तो लोग और भी ज्यादा जोर से हँस पड़े।

''दिन निकलते ही लोगो को इस वखत के आने की खबर पड़ी। कुछ दिन तक तो लोगो ने सोचा कि होगी कोई नाते रिश्तेदार, लेकिन बाद मे सन्देह हुआ कि चाहे जैसी नाते रिश्तेदार हो दो चार दिन ही रहेगी न ? कहीं इस प्रकार दस-पन्द्रह दिन थोड़े ही रहेगी।

और अब तो समय भाई का नक्शा ही बिलकुल बदल गया। न पानी भरने जाना और न पीसना-कूटना। न्हारे का पानी भी वखत ही भर लाती।

पनिहारिन से पूछे बिना न रहा गया 'ऐ वखत ! समय तेरा क्या लगता है ?'

वखत भी उनकी गुरु थी। बोली—यह तो समय से ही पूछना !

लोगो ने फिर समय से पूछा—'ऐ समय ! तेरे घर यह कौन आई है ?'

खाट मे आड़े बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने वाले समय ने जवाब दिया—'वखत है, दूसरा कौन आने वाला था।'

'अरे, यह तो हम जानते हैं कि वखत है। लेकिन तेरा और उसका सम्बन्ध क्या है ?' हीरा जैसे घुटे हुए आदमी ने पूछा।

और समय ने भी वही जवाब दिया—यह तो तुम वखत से ही पूछना !'

और जो भगतजी का कहना था उसे गाव की औरतो ने कह दिया—''मेरा समय भी खूब था।''

बोलने के लिए तैयार बैठे हुए मनारे ने उछलकर कहा—' इसमे

बेचारा समय क्या करे ? यह तो रॉड बखत ही ऐसी थी ।"

तभी बगल से मुखिया बोला—"भैया, किसी को दोष देने की जरूरत नहीं है । समय और बखत दोनो ही एक से हैं ।"

और भगतजी ने कहानी को समाप्त करते हुए निर्णय निकाला—'उस दिन से समय और बखत एक हो गए हैं ।"

जैसे अभी होश मे आये हो, ऐसे लोग बोले—"हाँ भाई हाँ ! समय कहो या बखत, दोनो एक के एक हैं ।" और "अरे बाप रे ! मेरे तो पैर टी सा गए ।" कहते हुए खडे हुए । पर इतने मे ही भगतजी कहने लगे—' ऐसे कोई नही जाने पायगा । इकट्ठे हुए हो तो गाना गाकर ही अलग अलग होंगे । कहानी कोई यो ही नही कही है, समझे ! '

जब साधारण दिनो म ही भगतजी को नाराज करने की किसी की हिम्मत न थी तो आज तो होती ही कैसे ? फिर आज सबको गीत गाने का जोश भी था । देखने-देखते घेरा बना डाला ।

आडे लेटकर हुक्का गुडगुडाते हुए भगतजी न इन युवक युवतियो को गरबा मे घूमते देखकर मन मे कहा—'और क्या ? जवानी के ये पाँच वष ही तो नाचने गाने के है ।' और एक भारी साँस लेकर आगे बोले—"फिर तो कोई कहेगा ही नही कि उठ और गा !"

माता के छोटे छोटे पाच गीत गाने के बाद तो युवको को काइ टोकने वाला था ही नही । पैर भी अभी-अभी खुले थे । आवाज भी तीखी हुई थी । चार युवक गवा रहे थे । बाकी के युवक और युवतियाँ सुर पूर रहे थे—

> ' भेमा, सगवाडा की गली तो होति है साँकरी री !
> भेमा, जो मैं चल लऊँ तो अकेली री !
> तेरो हूँकवया है परदेश मे री !
> भेमा आधो जीवन गयो यो ही बीत !'

न जाने कैसे भगतजी को यकायक कानजी की याद आई । जैसे ही वे एक भारी सास लेकर उसे निकालने को हुए कि एक लडका खबर

लाया—

"कानजी भाई आये हैं।" वहाँ बैठे हर एक के कान में यह बात पहुँच गई। गाना गाते हुए होरा ने भी सुनी। झट बाहर निकल गया। लेकिन भगतजी ने उसे रोका—"तू बैठ, हम उसे यहीं बुलाते हैं।" और जब तक भगतजी कहें, तब तक तो तीन लड़के दौड़ भी गये।

गाँव की स्त्रियों के पीछे कोई ऐसे गुड़ मुड़ हुए बैठा था जैसे पूस की ठण्ड में सिकुड़ गया हो। कानजी की खबर सुनते ही उसने सिर ऊपर किया। उठने की तैयारी की पर उठ न सकी। इतने में ही कानजी दिखाई दिया। उन सबमें शायद उसी ने सबसे पहले देखा होगा। वही लाल साफा और वही कमीज कोट। चाल भी पहले जैसी ही तेज थी। मुह अवश्य कुछ सूखा हुआ लगता था। हो सकता है कि अँधेरे के कारण लगता हो? लेकिन यह सब उसने एक ही नज़र में देख लिया था। दूसरी नज़र डालकर तो वह उठी और हाथ बगल में दबाए तथा नीचा सिर किये दबे पैरों चली गई।

एक औरत ने तो पीछे से कहा भी—'मालिक को मरे अभी पूरा महीना भी नहीं हुआ और गाना सुनने के लिए आने में रांड को शरम भी नहीं आती।"

तभी बीबी के मुहल्ले में रहने वाली एक औरत बोल उठी—'तुम तो कहती हो, पर वह बेचारी क्या करे? रात दिन कान के कलीले झाड़ने वाली गालियाँ कैसे सुने बहन! इससे तो यहाँ आकर कुछ देर बैठ जाय तो जी तो बहले। उसे कौन-सा गीत गाना था जो शरम आती। बुढ़िया की काँय काँय से तो अब सारा मुहल्ला ही तंग आ गया है।"

जबकि उधर भगतजी कानजी को देखते ही कह रहे थे—"आ हो, इतनी रात गये कहाँ से भाई!" भगतजी से भेंट कर के 'राम-राम' कहते हुए कानजी बोला—"दिन छिपे तो मोटर ने बाजार में उतारा। फिर देर तो होती ही।"

सबसे भेंटने के बाद कानजी भगतजी के पास बैठा। लेकिन

काली भी जहाँ-तहाँ से सोच आती थी। और जैसे अपने इसी आत्म विश्वास की दृढता का प्रमाण दे रही हो ऐसे काली ने एक पक्ति गाई–

"गीत अधूरो न छोड रे, बालम
गीत अधूरो न छोड।"

तीन तालियो पर घूमती काली की छटा ही अलौकिक थी। चैतन्य होकर बल खाती उसकी देह लता, पैर के तलुओ और तालियो की ताल तथा इन सबके साथ कठ का सुमेल तो एक मात्र काला ही साध सकती थी।

कानजी ने हुक्का छोडकर गीत पर कान दिये—

"हियरा मे आई न ठेल रे बालम
होठ प आई न ठेल। गीत०'

और जैसे यह कम हो ऐसे काली ने कानजी की ओर जरा गदन मोडकर तीसरी पक्ति गाई—

"हियरा ते पगले न खेल रे बालम
भोली ते ऐसे न खेल। गीत०"

कानजी ने एक भारी साँस ली और पीछे की कडी सुनकर तो साँस लेना भी भूल गया—

पास बुलाय न धकेल रे बालम
छाती से दूर न धकेल। गीत०"

और अन्तिम कडी सुनकर तो कानजी की शक्ल ऐसी हो गई, जिसे देखकर यह कहना मुश्किल था कि वह हँस रहा है या रो रहा है—

"छाती से दूर न धकेल रे बालम
हियरा ते पगले न खेल।"

इसके बाद तो काली के साथ कानजी का हृदय भी गा—रो रहा था—

"गीत अधूरो न छोड रे बालम
होठ पे आई न ठेल।"

कानजी की आँखों में पानी था जब कि काली की ओर लगी अन्य आँखों में आश्चर्य और आनन्द दोनों थे। औरतें तो दांतों तले अँगुली दबाकर रह गईं। कोई कहती थी— 'न जाने रांड कहाँ से सीख आती है। एक से-एक बढ़कर निकालती है।" तो कोई कानजी को इक्कीस ठहरा रही थी—"तो काना भाई कौन कम है? मरा, न जाने अपने *आप बनाता है या किसी किताब से निकालता है।"*

और इस प्रकार बातें करते करते औरतें उठने लगीं।

भगतजी और हीरा के साथ उठने वाला कानजी भी घर की ओर चला पर दिमाग में तो 'गीत अधूरो न छोड' ही घूम रहा था।

बड़ी रात तक जागते पड़े रहने वाले कानजी को तो यह भी लगा— *'कहीं ऐसा तो नहीं कि इसे जोषी ने बनाया हो।'* और एक भारी साँस लेकर करवट बदलता हुआ बोला—"गीत अधूरा छोड़न-जैसा ही हुआ है न।"

१ श्री उमाशंकर जोशी।

बीसवाँ प्रकरण

आया क्यो था ?

दिन निकल आया था। भगतजी के ओसारे के अलाव मे दो पत्थरो और एक जलते लक्कड—यो तीन चीजो पर पतीली रख दी गई थी। पतीली म पानी, गुड और चाय तीना ही वस्तुएँ एक रस होकर उबल रही थी।

घर के चूल्ह पर चढाई हुई हँडिया मे दाल डालकर भगतजी बाहर आये। अलाव की ओर दृष्टि डालकर ओलाती के नीचे खडे होकर आवाज दी—"अरे हीरा, कितनी देर है ?"

आ गया भगतजी !" कहता हुआ दूध का लोटा लिये हुए आ पहुँचा। बैठक म घुसते घुसते भगतजी न रतन का हाथ पकडे हुए कानजी को भी आते देखा। सामने से मनार भी विना बुलाये आ टपका। और चाय छानते छानते ता खेत को जाते हुए तीन जन और भी भगतजी के जरा सा कहने पर ही जम गए।

पीतल ही प्याले और तश्तरी के दो ही सैट थे। लेकिन प्याले और तश्तरी का सैट होने स ही चाय नही पी जाती। कानजी ता शहर का आदमी था इसलिए उसके लिए तो प्याले और तश्तरी मे दना हा था, पर दूसरा के लिए ता प्याले या तश्तरी मे से एक भी काफी था। तीन जनो को दने के बाद हीरा का लगा कि अगर वह खाली होने की प्रतीक्षा म बैठा रहा तो घर मालकिन या पकान वाली के हिस्से मे ता धुआँ ही

"मुझे भी तो चलना है न ?" कहकर भगतजी हुक्का पीने झुके ।

हीरा ने पतीली और कप आदि मनारे की ओर खिसकाते हुए कहा— 'अरे देख तो सही, यह सब भगत काका के सिर मढे जा रहे हैं ।" और यह कहकर उनको मनारे के सिर मढ दिया । भगतजी के हाथ से हुक्का लेते हुए, "लाओ न भगतजी, जरा दो घूट तो लेने दो।" कहकर दो बडे-बडे घूट लिये और खडा हो गया ।

कानजी ने हीरा की ओर देखते हुए कहा—"तुम सबको अपनी-अपनी पडी है, पर भगत काका की भी खबर सुध लेते रहते हो कि नही ?"

"अब तो भगतजी का ही खेत है । कल तो नही, पर परसो भगत जी के खेत की ओर जाना है ।" कहकर चल दिया ।

यह ठीक है कि भगतजी के पास दो बैल थे, पर अधिकतर उनकी खेती गाव ही निबेर देता था ।

कानजी को कुछ जल्दी थी पर उसे भगतजी से बातें करनी थी । कुछ कहने ही जा रहा था कि "मैं जरा दाल देख आऊँ ।" कहकर भगतजी को उठते देखा । कानजी 'अच्छा" कहकर चुप हो गया ।

कानजी दोनो पैर खाट के ऊपर रखकर घुटनो पर हाथ बाँधे बैठा था । उसकी नजर सामने के घर के ऊपर जमी थी । जीवी को उसने दो तीन बार देखा तो था पर अभी पूरा मुह नही देख पाया था । फिर आँख-से-आँख मिलने की तो बात ही क्या ?"

इससे पहले बहुत-से आदमियो ने कानजी को जीवी से सबधित वे सब नई-पुरानी बातें बता दी थी जो कि गाव मे होती थी । परन्तु उन बातो मे न तो भर्त्सना थी और न क्रोध भरी गालियाँ । इसके विपरीत यह भावना थी—' राँड करने को तो कर गई, पर अब उसका पाप उसके कलेजे को ही खाये जा रहा है । तुम देखना तो सही कि कितनी ज्यादा सुख गई है । न तो किसी से बोलती चालती है और न फुर्ती से काम ही करती है । अगर कभी हँसती भी है तो डाकिन की तरह डर लगे ऐसे ।"

इस सारे मामले पर गौर करने के बाद भी कानजी के दिमाग मे यह नही बैठ रहा था कि जीवी जहर दे सकती है।

भगतजी को अभी समय लगगा और हो सकता है कि बातें करते-करते देर भी हो जाय, यह सोचकर कानजी न पास ही खेलती रतन का बुलाकर कहा—"बेटी जा, अपनी मां से कहना कि काका की राह न देखे। वह सीधा खेत मे ही जायगा।' इस बात को अच्छी तरह रटाकर उसे घर की ओर रवाना किया। काका की लाई हुइ घाघरी फरिया को उठाकर ठीक से सँभालती हुई रतन ने भगतजी का आँगन तो पार कर लिया पर इतने मे ही उसकी नजर घर से बाहर आती हुई जीवी पर पडी। यह शुभ समाचार सुनाये बिना वह कैसे रह सकती थी। भगतजी से बातें करते काका की आर दृष्टि डालने क बाद उसने जीवी की ओर दो कदम बढाये और बोली—"काकी ओ काकी ! देख वे काका '

कानजी के कान म यह आवाज आई तो वह झिडकी देते हुए बोला—"जाती है कि आऊँ ?" रतन से कही ज्यादा डर जीवी का लगा। तिरछी नजर से कानजी को दखा, पर दोना नजरें एक न हो पाईं। कानजी अब भी रोषपूर्ण दृष्टि स रतन की पीठ को देख रहा था। काम मे लगी जीवी क मुह से एक भारी नि श्वास निकल गया।

कानजी भगतजी से कुछ पूछना चाहता था, पर न जाने क्या उसने ऐसा नही किया। इसके विपरीत दूसरी ही बात पूछी—"मुझे धूला के यहाँ शोक प्रकट करने जाना है भगतजी ! क्या उसका भाई मौजूद रहेगा ? न हो तो तुम "

उस लडके का कोई ठिकाना नही। ला, मैं ही चलू !" कहकर भगतजी उठे। जीवी तथा नानी बुढिया का खबर करके वे स्वय छप्पर मे आकर रोते हुए बैठ गए। सामने स कानजी भी आ गया।

शोक प्रकट करने के बाद दोनो जने धूला के ओसारे मे बैठे तो सही, पर बुढिया का विलाप सुनकर तो भगतजी जैसे का लगा कि यदि यहाँ न बैठे होते तो अच्छा था। "मैं जरा चूल्हा देखू" कहकर उठे

भी परंतु कानजी मैं उठूं या मानों काकी के चुप होने पर उससे मिल कर ही जाऊँ इस असमंजस में न उठ सका।

जब किसी जवान पट्ठे और घर चलाने वाले लड़के का यकायक चला जाना किसी भी माता के लिए असह्य होता है तब मौत के मुंह में बैठी बुढ़िया को यह कष्टप्रद लगे तो क्या आश्चर्य है। उसमें भी आज उसे अपना दुःख सुनने वाला वास्तविक पात्र मिला था। ऐसी दशा में उसकी जीभ या हृदय किस प्रकार वश में रह सकता था? विलाप करती हुई कह रही थी — 'मेरे बेटे! दुलभ मित्र ने हँसी खुशी औरत कराई बेटा? ! बेटा आधी रात के समय संकट झेलकर तुमको औरत दिलाई। बेटा, आज तुम्हारा साथी परदेस से घर आया है! बेटा! अब उससे 'आओ', यह कौन कहेगा!'

और इसके बाद बुढ़िया क्रोधाभिभूत होकर गालियाँ देने लगी— औरत करवाने वाले तुम्हारा भला हो! रांड अभागिन मिली और भरी जिंदगी ख्वार की।

जब कि जीवी धूला के मरने के बाद से आज पहली बार इतनी ज्यादा रो रही थी। इस रुदन में न तो कोई विलाप था और न एक सा सुर, छोटे बच्चे की तरह सिसक सिसककर रो रही थी।

इन दोनों के बीच कानजी की दशा बड़ी विषम थी। बुढ़िया के विलाप से जीवी पर आया हुआ गुस्सा उसकी सिसकियों में बह जाता था। बुढ़िया के दुःख और जीवी की सिसकियों का कारण वह स्वयं है, यह मानकर कानजी अपने-आप पर ही खीझ रहा था। उसे अधिक बैठना कठिन हो गया। व्यर्थ के विचार को एक ही निश्वास में अलग करके वह उठा और भगतजी के घर की ओर न जाकर सीधा अपने घर को चल दिया। मनारे के बाप ने तो कहा भी—'बुढ़िया के चुप होने तक तो बैठते भाई!'

कानजी के बदले गोबर थापती एक औरत ने जवाब दिया— 'बैठने का मन ही कैसे हो? जब दो घड़ी बात करने वाला ही उठ गया तब

किसके सहारे बैठे ?"

"ठीक है।" कहकर कानजी घर न जाकर सीधा खेत की ओर ही मुड़ा। न जाने क्यों उसे नौकरी से आने का बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने अनेक बार अपने से यही प्रश्न पूछा — लेकिन मैं यहाँ आया ही क्या ?"

जलने भुनने भी उसे बुढ़िया पर तरस ही आता रहता था — सचमुच बचारी की जिन्दगी ख्वार कर दी है।' एक बार जीवी से मिलकर उससे अच्छी तरह लड़ने का मन भी हुआ।

एक भारी निःश्वास के साथ मन ही मन कहा — अरी हत्यारी ! मेरे लाने की कुछ तो लाज रखनी। मैं क्या कहूगा यह जानकर मुझ पर क्या बीतेगी, यह विचार भी तुझे नहीं आया।'

लेकिन दूसरी ओर जब उसे जीवी का हृदय विदारक रुदन, उसका अस्थिपंजर जैसा शरीर आदि याद आते तो वह यही सोचता — तू चाहे जितना रो, जितना पछता पर अब उससे होगा क्या पगली ! मैं जानता हूँ कि तूने मजबूर होकर ही यह कदम उठाया होगा पर तेरे इस दुःख को मैं किससे कहूँ ? जो कुछ किया है सो भोग !'

कानजी का जी काम करने में भी नहीं लगता था। जैसे-तैसे करके दिन पूरा किया। साथ ही मन में निश्चय भी कर डाला — कल या परसों तो चले ही जाना है।

रात को हीरा के यहा खाना था। खा पीकर दोनों जने हुक्का पीने बैठे थे। हीरा नौकरी के हाल चाल पूछ रहा था — 'कैसी नौकरी है कुछ बता तो सही !'

"अब तो एक मिल में नौकरी मिल गई है, लेकिन यदि पहले की नौकरी की बात बताऊँ तो तू विश्वास नहीं करेगा।'

"तो भी कैसी थी बता तो सही !"

"कैसी क्या औरतों के लहँगे धोने की थी।' कहकर कानजी खिलखिलाकर हँस पड़ा।

'चल चल, मजाक मत कर ! और कोई भले ही धोवे, पर तू तो

कभी ''

''कभी तो क्या पूरे दा महीने धाये, और वह भी साबुन घिस घिस कर।'' कहकर कानजी फिर हँसन लगा।

दूर बैठकर लडके को खिलाती कक्कु से बोले बिना न रहा गया—''अच्छा, अब रहने दो! यो मत बनाओ कानजी भाई! शहर मे भले ही रह आए हो, पर तुम्हारी आदत ज्यो की त्यो है!''

''सच कहता हूँ भाभी! यदि झूठ बोलता होऊँ तो मुझे अपनी सौगध है।''

''अच्छा अब चुप रहो! बिना बात सौगध न खाओ! वहा तुम चाहे जो-कुछ करते हो, पर यहाँ ऐसी बात भी न करना!''

'नही तो?' और कक्कु को चुप देखकर बोला—''कोई औरत नही आयगी या और कोई बात है?''

'तुम्हारे लिए इतनी बडी तो किसके घर मे बठी होगी जो आयगी पर यदि कोई धरेजे म आने वाली होगी तो भी नही आयगी।''

कुठीले के पास बठी नाथी तो यह सब मानती ही न थी। हीरा ने बात बदलने के इरादे से कहा—''तो अब तू किस मिल मे है, क्या?'' यह पूछकर तनख्वाह और छुट्टियो के बारे मे भी पूछा और कहा—''अब आया है तो दिवाली तक तो रहगा न?'

नही रे यह तो मैंने कहा कि चलो जरा सबसे मिल आऊँ। यही सोचकर बिना छुट्टी लिये चला आया हूँ।''

तब तो पाँच सात दिन मे या '' और हीरा के बीच मे ही कानजी बोला—''मेरा तो खयाल है कि कल का दिन बिताकर चला जाऊँ।''

'तो तू या यकायक क्यो तो आया और क्या लौटा जा रहा है? नाहक किराया खच किया। ऐसे ही आना था तो दिवाली पर ही आता!''

'आ गया बस!'' कानजी बडबडाया और खडा होते हुए बोला—''अच्छा चल जरा भगतजी की ओर हो आयें। वहाँ से गरबा मे चलेंगे।''

लेकिन असल बात यह थी कि कानजी को हीरा से एकात मे बातें

सकते हैं ? अच्छा चल उठ, गीत गाने चलें ।'' कहकर हीरा खडा हुआ। उसे कानजी पर कुछ गुस्सा भी आया।

'तू जा इतने मे मैं जरा भगतजी के यहा हो आऊँ ?'' कहकर कानजी भगतजी के घर की ओर चला। वह चाहता था कि बुढ़िया की आवाज न सुने पर उसने कान म कोई ठेंठा थोडे ही लगा रखा था जो उसकी आवाज सुनाई न देती।'

'ह भगवान ! अब इस औरत से तो मैं बाज आई। रॉड यहाँ से कही और जगह जा मरे तो मेरे घर का क्लेस तो मिटे। इसकी माँ रॉड भी इसे नही बुलाती। जहाँ बैठी है, गाद की तरह चिपककर रह जाती है। यह सब कैसे दखा जा सकता है ? रॉड को खाना तो चाहिए तसला भरकर और काम करने के नाम मौत आती है।''

और जैसे यह काफी न हो, ऐसे जीवी के तेवर की आवाज आई—
ए उठा वह खाना रखा है। खा ले खाना हो तो नही तो, कही कुत्ता खा गया ता रह जायगी फल की तरह टापती। यह देखो यह। जम होकर बैठी है। रानी जी उठ भी नही सकती।''

भगतजी के घर तक न आ गया होता ता कानजी शायद वापस ही लौट जाता। लेकिन अत मे भगतजी का साथ लेकर उठने पर ही उसको मुक्ति मिली। कुछ दूर जाने पर उसने भगतजी से पूछा—'ऐं भगतजी ! नित्य प्रति ऐसा ही झगडा होता रहता है क्या इनका ?''

''अरे, यह तो कुछ कम है भाई नहीं ता कभी-कभी ता बेचारी का मारते भी हैं।'' कहकर भगतजी ने पूछा—''ऐसे म छुट्टी अच्छी मिल गई।''

''छुट्टी ता नही मिली, मैं ही चला आया हूँ भगतजी ! कहकर कानजी फिर किसी विचार म मग्न हा गया। कुछ देर बाद फिर बाला—'ऐं भगतजी ! इन सब नि श्वासा का जिम्मेदार ता मैं ही ठहराया जाऊगा न ?'

'किसके नि श्वास ?

तो गाओ, नही तो जाने दो भाड म ।"

'लेकिन इसमे बेचारे गरबा को क्यो भाड मे डालते हो ?" हँसकर भगतजी बोले और आँख के इशारे से इन युवको को दूर हटा दिया। वे मन मे सोच रहे थे— *उसका दिमाग तो खराब हो ही गया है साथ मे इसका भी होना दीखता है* ।' इसके बाद भगतजी ने उससे नौकरी के बारे मे और इधर उधर के दूसरे सवाल पूछकर उसे बातो मे लगाने का प्रयत्न किया। पूछा—"कितने दिन रहना है कानजी ! अभी तो दिवाली "

'नही, हो सकता है कल ही चल दूँ।" कानजी मन मे सोचता था कि शायद भगतजी को आश्चर्य होगा, शायद व मना करेंगे। पर भगतजी उलटे खुश होकर कह रहे थे —' छुट्टी न हो तो चले ही जाना चाहिए। ऐसी ही बात है ता दिवाली पर दो दिन छुट्टी लेकर आ जाना।"

कानजी बीच म ही बोला—"दिवाली पर ही क्या धरा है भगतजी ?"

'समझदार के लिए तो यही ठीक है। घडी-घडी किराया खर्च करना और ऊपर से तनखा खोना।" भगतजी ने समर्थन किया।

लेकिन कानजी को भगतजी के ऊपर उलटा गुस्सा आया। कौन कह सकता है कि वह कुछ ऊँच-नीच निकल जाने के डर से ही वहाँ से न उठा हो। 'मेरे सिर मे दर्द है भगतजी ! मैं घर जाकर सोऊँगा।" कहकर चल दिया।

घर जाकर ओसारे मे पडी खाट पर पड गया। पर कानजी को चैन न मिला। खाट को आँगन मे खीच लाया और तारा को देखने लगा। लेकिन उसके पुराने साथी तारे भी उसे आनन्द न दे सके। भगतजी पर उसका गुस्सा अब भी कम नहीं हो पा रहा था प्रत्युत बढता जा रहा था। भगतजी उसे व्यावहारिक ज्ञान से शून्य लग रहे थे। मन मे सोचता था— 'जो जन्म से ही सण्ड मुसण्ड हो उस क्या तो अपना और क्या पराया। कोई दुखी हो तो क्या, और कोइ सुखी हो तो क्या ? जब कोई मोह की बात ही न हो तो गीता का उपदेश मानकर मोह से अलग रहने मे आश्चय

ही क्या है" यही नही, उमकी कल जाने की बात का भगतजी ने जो समथन किया उसमे तो उमे भगतजी का कुछ स्वाथ भी दिखाई दिया— "ठीक है ! यदि कानजी के पास दो पैसे होगे तो किसी दिन उन्ही के काम आयेंगे न ?"

बीच मे आए मकानो के उस ओर जैसे आनन्द की तरगें उछालता महासागर उमड रहा था और इस ओर कानजी आहे भरता पडा था। जैसे यकायक निश्चय कर रहा हो, ऐसे बैठा होता हुआ बडबडाया— 'कल चल ही देना चाहिए।' जबकि दूसरी ओर उसका मन पूछ रहा था—'तू आया क्यो था और जा क्या रहा है ?

क्षण भर के लिए तो उसने यह भी सोचा—'ला, इसे लेकर भाग चलू।' पर दूसरे ही क्षण उसे हँसी आ गई—'यदि तुझमे इतनी ही हिम्मत होती तो फिर और चाहिए क्या था ? जो कुछ करना था सीधा सादा था। उस समय तो कुछ नही किया। अब क्या होता है ? बेचारी की क्या दशा हो गई है, यह तो देख !" उसकी नजर के आगे वह रहट वाली जीवी आकर खडी हो गई। नुकीली आखो मे काजल, पुतलियो मे सपोले की चचलता, कानो मे झूलता सोने का कणफूल और रह रहकर इशारा करती उसकी जजीर, ठुमकेदार चाल, गेंद जैसे गाल और चुटकी लेते ही लोहू टपक पडे ऐसा बदन। और उस समय का उसका उभरा हुआ वक्ष ! मानो कसकर बाँधी हुई गजी की चोली मे भी न समा पा रहा हो।

और इसी के साथ सामने आई आज की जीवी। अस्थि-पजर-जैसी सूरत, बैठे हुए गाल निस्तेज आँखें रेगिस्तान से उठती लू जैसी नजर और किसी की दौडाई दौडती हो, ऐसी चाल। वह कह उठा—'उसमे अब रहा ही क्या है ?'

और इसके बाद 'यह सब करने कराने वाला तो मैं ही हूँ न ?' इस विचार के आने पर तो यदि उसका वश चलता तो वह इसी समय गाँव छोडकर चल देता।

अन्त मे कब सवेरा हो और कब इस यझट से छूटू इस उधेड-बुन म

साने का प्रयत्न भी किया, पर नींद आने के बदले फिर प्रश्न उठा—'क्या एक बार मिलूं भी नहीं ?' फिर सोचा—'क्या मुह लेकर मिलने जाऊँ ? और यदि मिल भी तो उससे क्या पूछूगा और क्या कहूँगा ? उँहुँ न मिलना ही ठीक है।' और इस प्रकार अन्त मे बिना मिले जाने का ही निश्चय कर लिया। वास्तव मे यदि पूछा जाय तो वह जीवी की ओर देख भी नही सकता था। फिर बात करना कैसे सम्भव था।

दूसरे दिन उसने भाई भौजाई से आँखें फेरकर ही छुट्टी ली। हीरा को भी मिलने बुलाया था। बुलाना तो भगतजी को भी चाहता था, पर यह सोचकर कि लाओ मैं ही दो कदम चलू, वह स्वय भगतजी से मिलने चल दिया। बडी देर तक भगतजी से बातें करने के बाद जब वह उनके साथ बाहर आया तो उसने जीवी को घर से निकलते देखा। या यो कहे कि जीवी को निकलते देखकर ही वह बाहर आया। दोनो की नजरें मिलते ही अलग हो गई।

पिछली बार की तरह कुछ सुनने के लिए जीवी कान भी लगाती, पर उसे क्या खबर थी कि कानजी दो दिन मे ही वापस चला जायगा। फिर कानजी भी इस बार चुप था।

इस बार अलग होने मे कानजी को देर न लगी।

पिछली बार की अश्रुपूर्ण मुद्रा के स्थान पर इस बार की मुद्रा भी कुछ और थी। उदास कही जा सकती थी। इस बार उसे भाई भौजाई के प्रति यदि कोई विशेष प्रेम न था तो भगतजी और हीरा से अलग होने मे भी दु ख जैसा लगता था। वास्तव मे देखा जाय तो उसे इन सबसे एक प्रकार की विरक्ति सी हो गई थी सब सुखी थे, उनके लिए उनकी जाति थी, नाते रिश्तेदार थे, घर था, जमीन-जायदाद थी परन्तु कानजी को लगता था कि जैसे उसके लिए इनमे से कुछ नहीं है—अपना कहा जा सके ऐसा उसका कोई भी नही है। और-तो और भगतजी जैसा आदमी भी उसे छोडकर उन लोगो की जमात मे जा मिला था। सारी दुनिया ही उसे स्वार्थी लगती थी। वह इस स्वार्थमय वातावरण से जैसे हो वसे जल्दी

छूटना चाहता था। लेकिन इसके साथ ही उसके दिमाग म दूसरा विचार घुमड रहा था—'मैं तो इस प्रकार इससे छूट जाऊँगा, पर वह बेचारी कहा जायगी ? उसे गुस्सा भी आता था—'इससे तो भगवान ने इसे मार डाला होता तो ही अच्छा था।'

कानजी भाई भौजाई और भगतजी से तो अलग हुआ, पर हीरा अभी साथ था। कुछ दूर पीछे पीछे चलने पर कानजी ने उससे कहा भी "तू क्या आ रहा है हीरा, जा वापिस लौट जा!"

'लेकिन मुझे तो यही चिन्ता है कि तू बिलकुल ऐसा क्यो हो गया है ? दुतकारे कुत्ते की तरह अभी नौकरी पर जाता है तो अभी घर लौट आता है। आखिर तू ऐसा क्यो करता रहता है ?"

कानजी की आँखें सजल हो आई। कठिनाई से वह सका— तू इस समय मुझसे कुछ मत पूछ हीरा!' और आखो से बहती आसू की धारा के साथ बोला—'जब तुम सब कुछ जानते हो तो फिर क्यो मुझसे आठो पहर पूछते रहते हो। सच पूछो तो तुम्ही मेरे उस जन्म के वैरी हो। वह क्या कह रहा है उसे इसका भी होश न था।

हीरा स्तब्ध रह गया— यह तू क्या कह रहा है कानजी! हमने तेरे साथ क्या किया है, जो तू ऐसा कह रहा है ?" कहकर कानजी की ओर आँखें फाडकर देखने लगा।

कानजी जैसे होश मे न हो ऐसे कहने लगे— नही नही, मैं तुम्हे क्यो दोष दू। दोष तो मेरा अपना है। और कुछ होगा तो विधाता का होगा। तुमसे मैं क्या कुछ कहूँ!"

हीरा का सन्देह तो था ही, पर निश्चय करने की दृष्टि से पूछा— "लेकिन विधाता ने तेरा क्या बिगाडा है!

कुछ नही। जो बिगाडना था सो तो बिगाड दिया। अब कहने से क्या और न कहने से क्या ? कहकर कानजी ने एक गहरी सांस ली। रुदन भी कम हो गया था।

'तो फिर यो कह! विलाप कर-करके खून का पानी क्या किये दे

रहा है। ला, जरा तमाखू भरें।" कहकर हीरा खडा हो गया। नीचे बैठकर चिलम साफ करते हुए बोला—'होना था सो हो गया, अब उसके लिए पछताने से क्या होता है?'

कानजी ने कह ही डाला— 'अब भी कुछ नही बिगडा हीरा! लेकिन तुम लोग ऐसे हो ही कहाँ, जो मानो। तेरी तो कोई बात नही, पर जब भगतजी जैसा आदमी भी व्यावहारिक ज्ञान मे शून्य निकल जाय तब क्या कहा जाय?" और होठ चबाता हुआ खडा रहा।

"न जाने तू क्या पहेली बुझाता है? कुछ साफ बात करे तब न।"

'मरने दे, चल! ला, दो दम लगा लू" और चिलम मे दो दम लगाने के बाद उसे हीरा को देता हुआ बोला—'अच्छा, आ अब भेंट लू!"

भेंटने के बाद हीरा ने आँखें पोछते हुए कहा—"इन सब बेकार की बातो को याद कर करके व्यर्थ विलाप मत किया करना। चिटठी लिखना। देख, भूल मत जाना!"

लम्बी साँस लेते हुए कानजी ने कहा—'मनुष्य का क्या ठिकाना है हीरा! एक दिन सब कुछ भूल जाना है। लेकिन क्या तुझे वे दोहे याद है।" कहकर बोला—

"भूलेंगे हम एक दिन निज पीहर की गल।
भूलेंगे याके संगहि, ननसारउ की गल॥
भूलेंगे माँ धरनि के, ये अर्नागन उपकार।
भूलेंगे करिवो स्वय, अपनो सार सँभार॥
भूलेंगे काउ दुखी अरु, भागहीन की याद।
भूलेंगे मादक मधुर प्रेम नेम सवाद॥
पर पलभर को हम न यह भूलेंगे हे मीत।
तन मन द हमने करी कबहु कहू ते प्रीत॥

"एसा है हीरा!' कहकर इस डर से कि कही फिर आँसू न टपक पडें, आगे बढ़ता हुआ बोला— तो ठीक है। कभी याद करना, और क्या? और भगतजी से भी कहना कहना कि उन्हे याद करते-करते ही

गया है।" कहकर कुछ पीछे मुड़कर देखा। कहना नहीं चाहता था पर कहे बिना न रहा गया—"हीरा, जरा उस अभागिनी की खबर लेते रहना।" लेकिन इससे अधिक कुछ न कह पाने के कारण पीठ फेरकर चल दिया।

नदी पर इधर उधर दृष्टि डालता और होंठ चबाता हुआ आगे बढ़ा। किनारे पर चढ़ते हुए उस 'वणाजी'[1] पर एक नजर डालकर देखा। जैसे ही पीठ फेरी कि भगतजी को ढाल से उतरते देखा। कन्धे पर कपड़े देखकर सोचा—'धोने आये होंगे।' और खड़े होने की इच्छा करने वाले मन को धकेलते हुए कहा—'चल, अभी तो मिले हैं। बार बार क्या मिलना ? परन्तु इतने में ही भगतजी की आवाज कान मे पड़ी—'कानजी, जरा ठहरना।'

कानजी ठहर गया।

पास आते ही भगतजी ने कहना आरम्भ किया—"अच्छा हुआ जो तू मिल गया। नहीं तो तुझसे अलग होकर घर तो गया, पर मेरे जी ने मुझे चैन न लेने दिया।" कहकर कानजी की ओर देखा और नरम आवाज मे कहा—"कानजी, मैं तेरे मन की बात, तेरा दुःख सब-कुछ जानता हूँ लेकिन यह मन ऐसा विचित्र है ! खैर, जाने दे इस बात को। लेकिन मुझे तुझसे एक ही बात कहनी है और वह यह कि धूलिया के जहर से मरने की बात तो सच है पर बेचारी उस छोरी ने वह रोटी अपने लिए बनाई थी परन्तु ..."

कानजी बीच मे ही बोला—"यह तो मैं जानता था भगतजी, कि इसने गुस्से मे आकर ही धूलिया को जहर दिया होगा। बाकी ..."

"लेकिन उसने तो गुस्से मे आकर भी नहीं दिया।" कहकर भगतजी ने संक्षेप में सारा किस्सा कह सुनाया। कहा—"लेकिन भाई, उसके दिन पूरे हो चुके थे इसलिए उसका अन्त इस प्रकार हुआ।" और कानजी की फटी हुई आँखो मे भावो का तूफान सा देखते हुए बोले—"इसमे किसी

1 वृक्ष विशेष।

ना नोप नहीं कानजी ! बेचारी उस छोरी को व्यर्थ दाग लगाया जाता है, लेकिन इसका उपाय भी क्या है ? एक आदमी को समझाया जा सकता है पर सारे गाँव का मुह कौन बन्द कर सकता है।" कहकर कुछ रुके और कानजी को "ठीक है" कहकर चुप होना देखकर बोले— 'बस मुझे तुमसे यही कहना था।" और बुत बने बैठे कानजी की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—"अच्छा अब जा देर न कर !" और कहकर उसे रास्ते पर डाल दिया।

'बहुत अच्छा किया भगतजी ! आखिरकार तुमने मुझसे इतनी सच्ची बात कही तो ! ' और भगतजी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि डालता हुआ बोला— 'लेकिन भगतजी !"

"अच्छा अब यदि तू फिर बातो मे लगा तो व्यर्थ देर हो जायगी। मैं भी बैलो को खेत की मेड पर बाँधकर आया हूँ। किसी दूसरे के खेत मे घुस गए तो "

कानजी ने भगतजी की ओर फिर दयनीय दृष्टि से देखा। भगतजी ने दूर खेतो की ओर मुह फेरा। एक भारी साँस लेकर पीठ फेरता हुआ कानजी यही कह सका—

"अच्छा भगतजी ! चलता हूँ।" और सिर झुकाकर चल दिया।

भगतजी बडी देर तक उसकी पीठ को देखते रहे। इसके बाद एक भारी साँस ली और बडबडाये— पता नही बुद्धि और हृदय को एकत्र करके भगवान् ने आदमी का भला किया है या बुरा ?

जब कि रास्ता चलने के आदी पैरो के सहारे बढते हुए कानजी के मन की दशा विलक्षण थी। उसके मन मे एक ही विचार था—'क्या वह जहर खाकर मर जाती ? इस प्रकार अपने जीवन का अन्त कर लेती ? वह भी अपने आप ? कानजी का मुह फक हो गया। वह विवश सा हो गया। एक भारी सास लेकर बडबडाया— यदि ऐसा हो जाता तो मैं दुनिया को क्या मुह दिखाता ! तब तो मेरे मुह देखने वाले को ही पाप लगता।

कानजी की वापस लौटने, जीवी स मिलकर माफी मागने और उसके बाद उसे अपने साथ ले चलने की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो उठी। परन्तु सम्मान के साथ विदा होकर आने वाला कानजी वापस न लौट सका। और इसके बाद तो उसने इस डर से कि वही लौट ही न पड़े, अपनी चाल भी तेज कर दी। भगतजी पर उसे गुस्सा भी आया— "भले आदमी, मुझे पहले ही बताना था न ?"

खून निकल आवे, इतने जोर से होठ चबाते हुए कानजी ने स्वगत कहा—'अरी पगली! मेरा तो कोई बात नही पर तू तो मुझसे मिलती।' लेकिन अन्त में उसे अपने ऊपर ही हँसी आई—'लेकिन तू अपनी ही बात कह न! इतना किराया खर्च करके तू यहा आया ही क्यो था ?'

इक्कीसवाँ प्रकरण

•

मिला भी नही

परन्तु दूसरी ओर जीवी की आत्मा—उसकी अँतडियाँ क्या कह रही थी, यह तो यदि जीवी कहने बैठती ता भी न कह पाती। जब उसने कानजी का भगतजी के यहाँ से निकलता देखा था तब उसे क्या खबर थी कि वह परदेस जा रहा है। यह वह मान ही कैसे सकती थी कि वह उसस मिले बिना—उसके कान मे बात डाले बिना जा सकता है। यह ता जब नाथी न पानी भरकर लौटत हुए पूछा— 'क्या काना भाइ, तुमसे मिले जीवी भाभी ?' और जीवी ने नही कहकर जवाब दिया, तब उसे आश्चय हुआ। उसने फिर कहा—' क्या तुमसे मिले बिना ही चले गए ? नही-नही भ्ठ क्या बोलती हा ?''

जीवी एकदम रुक गई। फटी हुई आँखा से पूछा—''क्या गए ?'' और नाथी क ''तो क्या मैं झूठ बालती हूँ ?'' कहत कहत तो उसके मुह पर अनेक भाव आ गए। सिर पर रखी जेहर जैस ऊपर उड गई हो। जैसे हृदय का हूके तालु की राह निकलने के लिए विकल हो, ऐसे उसका दिमा ा उड उड् हा रहा था। उसकी व्याकुल दृष्टि का देखकर तो नाथी को कुछ डर सा भी लगा, कहा— 'चला न, या पागलो की तरह क्या करती हा?' जीवी ने पैर तो उठाया, पर बेहाशी मे ही। उसने क्या व सच मुच गए ?' का प्रश्न कितनी बार पूछा, इसकी गिनती तो नाथी ने भी नही की थी पर उससे पीछा छुडाना तो उसे (नाथी का) भी कठिन हो गया।

जीवी को लगा, जैसे आकाश मण्डल के नीचे इस समय वह अकेली पड गई है। आज तक वह एक ही कारण से जीती थी। कानजी से अपने हृदय की बात—"मैंने ज़हर नही दिया, समझे!"—कहने भर को। कानजी को आया हुआ देखकर तो वह कुछ खुश भी हुई थी। हिम्मत भी आ गई थी। लेकिन जब यह खबर सुनी, तब तो उसे यह भी न सूझ पडा कि वह कहाँ जाय और क्या करे।

जीवी ने जेहर उतारी और बाहर आई। कपडे सुखाकर बैठने को उद्यत भगतजी पर उसकी नज़र पडी। जीवी सीधी भगतजी के पास गई। खम्भे की आड मे खडे होकर पूछा—'ऐ भगत काका! तुम्हारे साथी गये क्या!"

इस आवाज़ मे ही कुछ ऐसा था कि वह भगतजी तो क्या, अच्छे-अच्छे ऋषि मुनियो तक से न सुनी जाती। एक बार तो उनका खिलाने का मन हुआ। लेकिन तत्क्षण एक भारी सास ली और जीभ को रोक लिया। शान्ति से ही बोले—"हा, गया।" भगतजी को डर था कि या तो यह छोरी रो उठेगी या बेहोश हो जायगी, पर उनका यह डर झूठा निकला।

वापिस लौटती हुई जीवी की आह सुनाई दी और साथ ही बडबडाहट भी—"मुझसे मिले तक नही।" घर पहुँचते-पहुँचते तो जीवी के सातो करम हो गए। उसका जोर स धडकता कलेजा एक ही बात पूछ रहा था—' मुझसे मिले तक नही!" जैसे पैरो के नीचे से जमीन खिसक रही हो, आकाश का घेरा चक्करघिन्नी खा रहा हो। कान सुन हो गए। क्षण भर तो जीवी को यह भान रहा कि मैं कहाँ हूँ? लेकिन दूसरे ही क्षण वह स्वय कहाँ है? कौन है? आदि मे से कुछ भी शेष न रहा था।

अब यदि पृथ्वी खिसके तो क्या, और न खिसके तो क्या? अब चाहे आकाश भी हज़ार गुना घमे। और अब तो यदि कानजी भी उसे ज म भर न मिले तो भी कुछ नही। अब तो वह निरानन्द दशा मे पहुँच चुकी थी।

ससार मे सूरज जैसे उगता है वैसे ही उगता है। और रोज की तरह

छिप जाता है। य ही पद, वहा ग्गो और य ही आराम मण्डल के तारे। लागा का काम भी ज्या-का त्या है। वही बातें और वही उमगें। कुछ भी नया नहा। जब कि जीवी का ग्गा यह है कि अभी यदि उगता सूरज छिपता जान पड़ता है ता अभी एस देखने लगती है, जैस ठीक दोपहरी म तार देख रही हो। बोलन लगती है तो ब्रह्मज्ञानी की भाँति अटपटी बातें करन लगती है। कभी ऐस मौन होकर बैठी रहती है जैस क्षितिज क किसी रहस्य का उद्घाटन कर रही हो। लोग कहते हैं— अरे भाई! यह ता धूलिया ही भूत होकर लगा है। ता कोई जैस रहमा स पता लगाकर लाया हो, एस कहता है 'अरे, सब झूठ है। धूलिया न ता अपन जीत जी ही इस मूठ करवाई थी। विश्वास न हो तो पूछ आओ रहमा स। एक बार उसक पास मूठ करवान गया था।'

लोग सोच म पड़ जात हैं— 'तब ता यह ठीक है। इस मूठ की धुन म ही जीवी न यदि उस जहर द दिया हो ता भी कोई आश्चय नहीं। कहकर सब अपन-अपन काम म लग जात हैं।

भटकती हुई जीवी कभी कभी खेता म पहुँच जाती है। लोग उससे पूछते भी हैं—'री री, तूने अपने मालिक को जहर क्यो दिया?"

कभी-कभी जीवी मालिक शब्द को ही पकड़ लेती है। बोलने लगती है— मेरा मालिक? वह ता परदश कमान गया है?' फिर सलज्ज हँसी के साथ छोटे बच्चे की तरह कहती है—'मेरे लिए नये कपड़े लायेगा। सच्ची चूड़ी लाने का भी कहा है।" ता कभी गालियाँ भी देने लगती है—'छोड़ो न उस कलमुहे की बात। नाशपीटा मुझसे मिला तक नहीं। मुझसे मिले, तभी उसकी बात है न?" और जब ऐसी धुन में होती है तब किसी राहगीर से विनती भी करने लगती है—"उनसे कहना कि जीवी तुम्हें बहुत-बहुत याद करती है। तुम नौकरी पर जा रहे हो न? मुझे भी ले चलो। मुझे उनसे मिलना है।" और वह राहगीर "हट, पगली!' कहकर अक्सर मारने भी लगता है। यदि मारता नहीं तो धकेलनी ता पड़ती ही है।

रात को कभी यदि बुढिया के ओसार में ही गुड-मुड हो जाती है तो कभी किसी दयालु के यहा थोडी-सी रोटी खाकर उसी के ओसारे के कोने म सो रहती है। कपडे फट गये है। सिर के बिखरे हुए और धूल धूसरित बाल बिलकुल सफेद हो गए हैं। नहाई तो न जाने कब की होगी ? अनेक बार तो गाँव के लडके पीछे पडकर सताते हैं— अरे, पगली आई! अरे, पगली आई!"

यह सब देखकर भगतजी के होठो पर एकाध आह आती है। कहते है— 'हे भगवान् एक दिन जिसकी नजर पडने पर अच्छे-अच्छे युवक अपने को धन्य समझते थे और जिससे बातें करने मे आनन्द का अनुभव करते थे उसी की आज यह दशा! कहा जन्मी, कहाँ दिन लगाया कहाँ जाकर ब्याही और आज कहा जाकर पछाडी है। और जैसे अपनी धारणा बदल रहे हो ऐसे मन मे कहने लगे— नही नही भगवान्! यह ठीक है कि तूने आदमी बनाया, पर आखिरी हाथ तूने औरत का दिल बनाकर ही धोये है।

दिवाली के पाचेक दिन है। कानजी की ओर से कोई जवाब न मिलने पर बडे भाई भगतजी से फिर चिटठी लिखवाने आए है— 'भगतजी! कानजी की कोई चिट्ठी नही आई है और हमने उसकी सगाई के लिए धन-तेरस का दिन तय कर दिया है। तुम साफ साफ लिख दो कि भूरा पटेल की लडकी रूपी के साथ तेरी सगाई हो रही है इसलिए फौरन चला आ! छिपाकर क्या रखा जाय ?

यही नहीं, हीरा भी भगतजी के कान मे कुछ कहकर अपनी सम्मति देता है—"और साथ-साथ यह भी लिख दो कि जीवी पागल हो गई है, जिससे यदि उसके मन मे कुछ हो तो वह भी निकल जाय।"

बेचारे भगतजी को इस समय कुछ सूझ ही न पडता था। कभी इन दोनो का कहना अच्छा लगता तो कभी बुरा। इसीलिए तो उन्होने पहले की तरह सब गोल-मोल रखकर कानजी को सिर्फ यही लिखा था— तुमसे काम है इसलिए जल्दी आ जा!" लेकिन अपनी इस तरकीब

कारगर होता न देखकर इस बार उन्होने "तो जो-कुछ होना हो सो हो" कहकर इन लोगो के कहने के अनुसार ही लिख डाला।

धनतेरस बीती और दिवाली भी आ गई। लेकिन न तो कानजी आया और न उसकी चिट्ठी। उलटा नाना कटारा यह खबर लाया था कानजी दिवाली पर घर नही आयगा। बड़े भाई, भगतजी और हीरा ने उससे अनेकानेक प्रश्न पूछे, पर वह सबको सक्षिप्त और एक से ही जवाब देता रहा। कई बार तो कानजी के बारे मे बात चलते ही उठकर चल देता।

दिवाली के दिन हीरा के यहाँ खाना खाने के बाद भगतजी अपने ओसारे मे आकर बैठे थे कि उनके कान मे 'पगली है! पगली है!' चिल्लाते बच्चो और पटाखो की आवाजें आईं। भगतजी तुरत उठे और लम्बे लम्बे डग भरते हुए उन बच्चो के टोल मे जा पहुँचे। बच्चो को धमकाकर दूर हटाया और जीवी को लेकर हीरा के यहाँ आये। रकु से कहकर उसे खाने बिठाया। बाहर आते हुए कहा—"रकु, जरा इस पगली की खबर लेती रहना। और कुछ नही, बस किसी दिन अगर रोटी जल्दी हो जायँ और यह दिखाई दे जाय तो बुलाकर एक टुकड़ा रोटी दे देना। इसके लिए यही बहुत है।" कहकर बाहर निकलते हुए जीवी पर फिर एक नजर डाली। उसकी दशा देखकर भगतजी ने एक भारी नि श्वास छोडा।

बाईसवाँ प्रकरण

•

एक प्राण, दो शरीर

कार्तिकी पूर्णिमा दिन दिन निकट आती जा रही थी। बारह बारह महीने के बाद जागने वाले बावजी देव[1] के नगाड़ों की गड़गड़ाहट सुनकर ही जैसे आस पास रहने वाले लोग काम से निबटने के लिए जल्दी कर रहे थे। दो दिन पहले तो यह भी तय हो गया था कि गाँव में कौन कौन जायगा और क्या-क्या पहन ओढ़कर जायगा। पाप का विचार करने वाले पाप धोने जा रहे थे, तो पाप का विचार न करने वाले उन्हें बढ़ाने भी जा रहे थे। लेकिन अन्त में होता यह कि पाप धोने जाने वाला के पाप तो बढ़ जाते और बढ़ाने आने वाला के अनायास कम हो जाते। कुछ ऐसे थे जो नागधारा में नहा खेलकर बलाय-बलाय से मुक्त होने जाते थे। अर्थ-लाभ के लिए जाने वाले भी कम न थे।

पृथ्वी पर जितने धाम हैं वे सब अपने ही अन्दर हैं की मान्यता वाले भगतजी भी इस पूर्णिमा के मेले में बिला नागा जाते। गाँव के लोग तो दो तीन दिन में ही लौट आते पर वे आठ दस दिन के लिए डेरा जमाते। इस वर्ष भी उनकी मण्डली बहुत बड़ी थी। हीरा और मनारे तो थे ही, और भी दस पन्द्रह आदमी—अधेड़ और युवक—जाने को तैयार हो गए थे।

नाना ने भी कार्तिक का मेला करके सीधे जाने का निश्चय किया था। लोग उससे पूछते भी थे—"इस साल तो तू कई बार आया है नाना!

1 देवता का नाम।

उसम भी य बीस दिन की छुट्टिया ता तू एक ही फेरे में बिता दी।"

नाना हँसकर जवाब देता—चाह जा कुछ हा। भाइया क साथ जितने दिन बिताने को मिले उतना अच्छा। फिर यदि छुट्टियाँ मिलती हो तो क्या न ली जायें।

"अच्छा भाई, अच्छा!" कहकर लोग नाना की होशियारी की तारीफ करते और आपस मे कहते—'सच है भाई! परदेस का मामला है। न जाने कौन जिया कौन मरा। यह ता है ही।"

दिन छिपने से पहले पहुँचने का विचार करके गाँव की मण्डली तेरस को बडे सवेरे ही रवाना हो चुकी थी। लेकिन उस मण्डली मे से नाना ने "अरे, बूढा के साथ रेगत हुए हमसे कैसे चला जायगा? कल मुर्गा बोलत ही उठेंगे और दापहर हाते-होते ठेठ बावजी जा पहुँचेंगे। साथ ही एक दिन घर का काम भा कर लेंगे।' ऐसा कहकर कई का अपने साथ ले लिया।

जैस एकदम सूझा हो ऐसे नाना ने एक दो जगह कहा—बेचारी इस जीवी को कोई बावजी ले ही नही गया? नागधारा मे नहाने का महातम ता इतना ज्यादा है कि यह पागल बनाने वाला देव भी दुम दबाकर भाग जाय।"

तभी सामने वाला आदमी कह उठता—'अरे, हाँ भाई, बेचारी को ले गए होत तो बडा पुन्न होता।" और मुखिया ने तो उसे नाना के ही गले बाँध दिया—'अभी तू तो जायगा ही नाना? दो-चार जने तुम बराबर के ही हो ता ले जाओ न बेचारी को। कहा तो इसके खाने के लिए सामान-सट्टा मैं अपनी तरफ से कर दूँ! मुझे ता विश्वास है कि ठीक हो जाएगी। समझे नाना! मरी बूआ ऐसी ही हो गई थी। नाग धारा मे नहाई कि रुपय म आठ आना फरक पड गया। इसलिए इतना ता करना ही चाहिए? फरक पडे ता इसकी तकदीर और न पडे तो गाँव वाला के साथ वापस भेज देना।"

नाना ने स्वीकार कर लिया—"अच्छा मुखिया काका! पर रात को इसे अपने यहा सुला लेना। नही तो मुर्गा बोलने पर कहाँ ढूढन

जाऊँगा ! एक बार गाँव से बाहर निकल जाय फिर तो हम इसे समझा बुझाकर ले जायगे।"

"अरे, यह काम हमारा !" कहकर मुहल्ले के लोगो ने भी पुण्य के काम मे हाथ बटाया।

सुना बोलते ही चार युवक जीवी को आगे करके मेले को रवाना हो गए।

नाना रास्ता चलती हुई जीवी को बातो मे लगाने का प्रयत्न करता रहा। कभी वह टेढे चलने की हठ पकड बैठती तो कभी लडती भी—"नाशपीटे मुझे शहर ले जा रहे हं। ऐसा करके मुझे धोखा दे रहे हैं। क्यो ?' कहकर पत्थर उठाने को होती, पर नाना उसे फिर समझाता—अरे नही जीवा भाभी, हम तो तुझे तेरे पीहर ले जा रहे हैं।' इस पर जीवी या तो खुश हो उठती या और ज्यादा गुस्सा हो जाती। परन्तु इसी बीच खाने को देने पर चुप हो जाती। रोटी का कौर चबाते चबाते कहती—'अरे, तुम मुझे ले तो जा रहे हो, पर क्या तुम उन्हे पहचानते हो? तुम्हें देखेंगे तो मार डालेंगे, समझे ! सच कहती हूँ, भाग जाओ !'

नाना के अलावा बाकी सब हँसने लगते। पूछते भी—तुम्हारे 'व' कहाँ है ? बेचारे को जहर देकर मार तो डाला !"

और जहर का नाम सुनते ही एक बार जीवी का पारा चढ गया—"जहर तो तेरी माँ ने दिया था। तो बाद मे रोने भी लगा—"हाय, हाय उन्हें जहर दिया।' और इस प्रकार कभी रास्ते चलने वालो को रुलाती और कभी पेट पकडकर हँसती जीवी दिन छिपते छिपते बावजी के निकट आ पहुँची।

केवल पहाड की तराई मे स्थित भगवान् के मन्दिर का आँगन ही नही वरन् समस्त सीमा ही आदमियो से भरपूर थी। पच्चीस-तीस तो बाजार थे। इन बाजारो मे खाली माल ही हो ऐसी बात नही थी। माल बेचने वाले बडे-बडे शहरो के नये व्यापारी भी थे। हजारो आदमी जापानी खिलौनो की भाँति इन दुकानदारो और इनके माल को देख

रहे थे। फिर पैसे पैसे मे 'जमन का राजा देखा' के बदले पर्दे पर तूफानी समुद्र से लेकर चिनम का धुआ निकाने वाले सिनेमा गृह पर ता दिन दहाडे लूट मची हुई थी। रामलीला और भवाई के बदले 'वीणावेली'[1] का खेल होने वाला था रात को आठ बजे, जबकि आदमी घुस बैठे थे शाम का चार बजे से ही। सबसे महगा दो रुपये वाला टिकट भी बन्द था।

सवेरे से चक्कर खाते हुए पन्द्रह रहट रात होने पर भी चल रहे थे। उनमे भी उस आसमान से बातें करते बडे रहट के पास ता लोगों की भारी भीड जमा थी। इसके अलावा उस शेर स बकरी बना देने वाले (इतम से ही होगा) सरकस के ऊपर तन हुए तम्बू के द्वार तो आदमियो के बीच मे घुसकर ही देखे जा सक्त थे।

फिर 'बातें करता धड' और 'चलता हुआ सिर' आदि की चमत्कारी रावटियाँ भी आदमिया से उमड रही थी। मिठाई की दूकान पर चिवडा और होटल आदि स्थाना पर माल तो भाग्य से ही मिल पाता था। नही तो धक्के खाकर पीछे ही लौटना पडता था। और बावजी के विशाल दरवाजे का ता कहना ही क्या ? यदि पानी की दुहरी बाढ देखी हो तो वहाँ की भीड का अनुमान लगाया जा सकता है।

लेकिन यह ता मुख्य बाजार की बात हुई। वहाँ से चौगुने आदमी घूम रहे थे बाहरी हिस्से मे। हर पहाड पर कुछ न कुछ तो था ही। और कुछ नहीं ता कम-से कम किसी साधु की समाधि तो थी ही। यदि वहाँ चक्कर न लगाया जाय तो बावजी के दशन करना ही व्यथ हो जाय। लख चौरासी के चक्कर से बचना हा ता वहाँ जाने पर ही मुक्ति थी। साधारण दिना म जिन पहाडा पर गाद निकालत भीला क अलावा और कोई आदमी शायद ही दिखाइ देता था, आज उनके पत्थर-पत्थर पर आदमी थे। इसके अतिरिक्त उस ओर की तराइ मे तो रावटी, गाडी घोडे, गधे आदि के ऐसे पडाव पडे थे जैसे कोइ गाँव ही बस गया हो। दूसरी ओर बेचने को लाये गए हजारो बैल समुद्र के उफनने हुए झाग की भाँति मस्त

१ प्राचीन शृंगारी नाटक।

दिखाई देते थे ।

सध्या होने पर भी मोटरे आदमिया को उतारती हा जाती थी ।

यहाँ तक तो नाना जीवी को ले आया था पर वास्तविक सावधानी ता अभी रखनी थी । बडी मिहनत से गाँव की मण्डली को खोज निकाला गया । खिलखिलाकर हँसती हुई जीवी पर नजर पडते ही भगतजी बोल उठे—"अरे इस पगली को यहाँ कौन लाया ?"

जैसे गाव के लोगो को गिनकर देख रहा हो ऐसे सब पर नजर डालकर ऊब के साथ कहा — 'अरे क्या करें भगत काका ! बहुत मना किया, पर मुखिया ने कहा कि ले जाओ, नागधाग म नहायगी तो बावजी ठीक कर देंगे ।"

'अरे, करा बावजी ने ठीक ! बावजी को ठीक करनी होती तो पागल ही क्यो करते ?" भगतजी ने खीझकर कहा ।

नाना ने फिर इधर-उधर दृष्टि डाली तो भगतजी की आवाज सुनाई दी— 'अरे, तुम्हारे खाने का क्या होगा ?"

नाना ने साथिया से पूछे बिना ही कह दिया—"हमारे पास तो रोटिया थी । अभी अभी दिन छिपने के वक्त ही खाई हैं । कुछ खाने की जरूरत नही ।" और फिर दूर से आने वाली एक मोटर की ओर दखने लगा ।

एक तो सर्दी और ऊपर से आस पास पानी भरे झरने, इसलिए ठण्ड की अच्छी रमक थी । लेकिन यहाँ ओढने को कहाँ से आवे ? सबको अपने एक एक जोडी फालतू कपडो मे ही ओढने बिछाने का समावेश करना था । परन्तु जीवी के पास तो यह भी न था । अन्त मे भगतजी ने ही दु खी होकर उसे अपनी धोती उढाई और अलाव के पास सुला दिया । दो चार उलटी-सीधी सुनाकर बक बक करने से भी रोक दिया । नाना को भी कुछ सुनना पडा लेकिन बदले मे जीवी का भार कम हुआ, यही उसके लिए बहुत था ।

चारो ओर चाँदनी रात हँस रही थी । सिनेमा और नाटको को भी

एक ओर रख देने वाली मृदग की मडलियाँ जोरा पर थी तो आकाश के गुम्बद के नीचे पालथी मारे बैठे भक्त मा कठ धरती पर बैठे लोगो का तन्मय बनाकर अदृश्य लोक की झाँकी करा रहा था।

"मेरी धरती से कहना सलाम
हम तो पछी ऊँचे आकाश के"

भगतजी न सारी रात जीवी की सँभाल और चिन्ता मे बिताई। सवेरा होत ही गाव क दो तीन रोगियो के साथ जीवी को भी नागधारा पर ले जाया गया। इन सब ढकोसलो को न मानने वाले भगतजी भी चुपचाप आगे हो लिये थे। लेकिन नाना सबके पीछे ही था। उसकी आँखा म लगता था कि उसने भी रात्रि जागरण किया है। उसके कान तो अब भी मादरा की आवाजो मे लगे हुए थे। मुड मुडकर पीछे भी देखता था।

नागधारा मे हजारो आदमी पडे थे। कोई खेल रहा था तो कोई पानी छिडकर दूसरो को खिला रहा था। एक तो कडाके की ठण्ड, और दूसरे तनाव की भाँति इकटठा हुआ नदी का शीतल पानी। ऊपर से इधर उधर से शङ्ख बेधती छीटें पडती। तब भला आदमी को भूत न चढेगा तो और क्या होगा। लेकिन जीवी ने तो नदी म उतरने से ही इन्कार कर दिया। किनारे की कीचड मे ही बैठ गई। परतु लोग कोई ऐसे ही थोडे छोडने वाले थे। एक ने तो पास वाल एक जने की देखादेखी जीवी को एक लात भी लगा दी। किनारे पर खडे भगतजी कुछ कहने ही वाले थे कि पीछे से आवाज आई— 'अरे आ मूरख!" देखा तो लाल-लाल आँखें निकालता कानजी आ रहा था।

'अच्छा कर रह हो भगतजी!' कहता हुआ जीवी की ओर चला। वे युवक ऐसे अलग हट गए जैसे कानजी से कभी काटते हा। कानजी न जीवी को बाँह पकडकर उठाया। क्षण भर उसके मुह की ओर देखता रहा। जीवी की निश्चल आँखें देखकर उसका एक भारी नि श्वास निकल गया। उसे किनारे पर ले आया। गाल पर से मिट्टी हटात हुए 'तो दूसरा भी मन्न लूंगा' कहकर सामने खडी काली से बोला— काली! अपन

कपड़े इसे बदलवा दे जरा !' कहकर उसने जीवी को काली के हवाले किया। भगतजी को छोड़कर बाकी के पच्चीसेक आदमी कानजी का जीवी के प्रति अपनी प्यारी पत्नी-जैसा व्यवहार देखकर दंग रह गए। लेकिन कानजी का व्यवहार नितांत स्वाभाविक था। भगतजी की ओर घूमते हुए पूछा— कब के आये हो भगतजी ! ओहो, हीरा भी आया है !"

'इन सबमें अपना तो जैसे कोई मूल्य ही न हो' सोचता हुआ नाना बोल उठा— 'अरे वाह कानो भाई ! मैं तो कल रात से तुम्हारी राह देख रहा हूँ।"

'क्या करूँ भाई ? मोटर में जगह मिले तब न ?" कहकर कानजी नाना की ओर देखते हुए बेबसी की हँसी हँसा। और सामने आती मोटर पर नजर पड़ते ही काली से कहा—"काली तू जरा जल्दी कर !"

हीरा बोला— लेकिन तू अचानक आया कहाँ से ? न चिट्ठी का जवाब देता है और न बुलाने से आता है।" कहकर हीरा ने छोटे बच्चे को फुसलाने के ढंग से आगे कहा— 'तू बिलकुल ऐसा क्यों हो गया है कानजी !"

"लेकिन मैं आया तो हूँ। हम सब मिल लिये। इससे ज्यादा और क्या चाहिए ?" कहकर कानजी ने बगल में कपड़ा पहनाती काली की ओर फिर देखा। नाना की ओर देखते हुए पूछा—'क्यों नाना, अभी चलना है कि कल ?"

भगतजी को सन्देह तो तभी हो गया था जब कि कल जीवी को नाना के साथ देखा था। कानजी की ओर देखते हुए पूछा—"क्या तू आज ही वापस जा रहा है ?"

"हाँ भगतजी ! वापस तो मुझे कल रात ही चला जाना था, पर साली मोटर ने ही दगा दे दी। जगह ही न मिले तो फिर आया कैसे जाय ?"

"लेकिन तू यों अचानक क्यों आया और क्यों जा रहा है ? तेरी बात कुछ समझ में नहीं आती कानजी !" कहकर भगतजी उदास मुद्रा

से देखने लगे। लेकिन अब यह सब देखने सुनने की कानजी को ज्यादा फुरसत न थी। हँसकर बोला—"तुम तो ऐसे हो भगतजी! जो सब जानते हो। संक्षेप मे मेरे भाई" कहकर जीवी की ओर देखते हुए बोला—"इसकी दशा तो देखो भगतजी!" और नाना को लक्ष्य करके 'इसे जरा उस महादेव तक ले चल न काली! नाना जरा मदद कर दोस्त!" कहता हुआ चला।

असमजस मे पडे नाना ने कहा—"लेकिन कानाभाई! तुम तो इसे नागधारा मे नहलाने के लिए कह रहे थे। एक बार नहला तो लो, फिर महादेव के दर्शन"

निश्वास छोडते हुए कानजी बीच मे ही बोला—"क्या पागल हुआ है? जब बेचारी जिन्दगी से ही नहा चुकी है तब इसमे नहाने से क्या होगा?" और नाना की ओर फीकी हँसी हँसते हुए कहने लगा—"इसकी ओर से और साथ ही मेरी ओर से भी एक डुबकी तू ही लगा लेना!" कानजी ने चलते चलते ही कहा।

"लेकिन ये किसी की डुबकी से"

कानजी फिर बीच मे ही बोला—"तो ठीक है भाई, या नहाने से किसी के पाप थोडे ही चले जायँगे? ले जरा जल्दी चल काली!"

अकेले भगतजी को छोडकर किसी की समझ मे यह नही आया कि कानजी क्या कहना चाहता है। कानजी के पीछे भगतजी और उनकी मण्डली दोनो बेहोश से चले जा रहे थे।

जल्दी मे कुछ आगे बढ़े हुए कानजी ने ही मुडकर देखा और भगतजी से कहा—'तुम समझ तो गए होगे भगतजी! मैं इसे ले जाने को आया हूँ।"

भगतजी ने एक भारी साँस ली और विचारपूर्ण मुखमुद्रा से कहा—'मैं जानता हूँ कानजी! लेकिन अब तू इसे इस दशा मे ले जाकर ही कौन-सा सुख'

कानजी धीमा पडा। बोला—"सुख की तो अब बात ही जाने दो!

लेकिन फिर भी इतना तो है ही भगतजी, कि ऐसे यो जहा-तहाँ टुकडे बीनकर खाती देखने की अपेक्षा इसे अपने पास रखने मे मुझे कही अधिक शाति मिलेगी। जिस दिन तुम्हारी चिट्ठी मिली थी उसी दिन आने का इरादा था, पर मैंने सोचा कि पीछे तुम सब गडबड करोगे इसलिए मुझे नाना से भी कुछ दुराव करना पडा।"

पीछे घिसटते हीरा ने नीद से जागने हुए की भाति पूछा--"तो क्या तू इसे ले जाने के लिए ही आया है कानजी ?"

कानजी ने उसी दृढता से परन्तु विवश आवाज मे कहा-- हाँ हीरा!" और पीछे रही हुई काली से बोला--"काली जरा जल्दी कर!" अचानक कुछ याद आते ही जेब से तीन रुपये निकालें और भगतजी को देते हुए कहा-- 'इन पैसो से काली को एक जोडे कपडे ले देना!" और काली के कुछ कहने से पहले ही उसकी नजर जाने वाली मोटर पर पडी। "ठहरना!" कहकर आवाज लगाई। मोटर को खडी हुई देखकर तुरन्त पीछे मुडा। बडबडाती चलने वाली जीवी को हाथ पकडकर आगे किया। मोटर के पास पहुँचते ही उसे दोनो हाथो मे उठाकर मोटर मे चढा दिया। भगतजी की ओर देखते हुए कहा--"भगतजी! हीरा दोस्त! जिन्दगी मे मिलें चाहे न मिलें पर कभी याद जरूर करना। मेरे बडे भाई से " गला साफ करके--"मेरी ओर से माफी माँगना और कहना कि " इससे ज्यादा न बोल सका। एक बार फिर सबकी ओर देखा। भौचक्का-सा हीरा बोल उठा--' लेकिन अरे कानजी न जात न पाँत क्या तुझे ऐसा करना चाहिए ?"

मोटर वाले ने कहा--"चल बैठ जा पैट्रोल जलता है।" कानजी ने मोटर पर पैर रखते हुए इतना ही कहा--"क्यो, मुझे क्या करना चाहिए हीरा ? उस दिन अँधेरी रात मे यह जो पीछे-पीछे आई थी सो किसका मुँह देखकर ?"

सारे का-सारा टोल धूल उडाती जाने वाली मोटर की ओर फटी हुई आँखो से देखता हुआ ऐसे खडा था जैसे मानो बिजली प। [illegible]

बाद यह क्या हो गया ?' के विचार मे मग्न हो।

सबसे पहले एक भारी साँस लेते हुए भगतजी ने ही यह कहा—"और हो ही क्या सकता है ?"

हीरा नाना को ओर कतराती नजरो से ऐसे देख रहा था जैसे यह सब कारस्तानी उसी की हो। जबकि भगतजी कुँवर कन्हैया जैसे कानजी, उसके आशामय जीवन और उस सबके ऊपर फिर जाने वाली दुःख लहरो के बारे मे सोचते हुए अब भी खड़े थे। और काली को अपनी ही चिन्ता थी—'हाय हाय! राँड मेरे कपड़े भी ले गई!'

जब सब वापस लौटे तब सामने से गरजते हुए समुद्र की भाँति मानव मेदिनी की आवाज आ रही थी। पीछे से पहाड़ियो की ढाल पर चढ़ती मोटर की 'घर्र-घर्र' सुनाई दे रही थी। और अन्त मे तो वह भी जैसे वतमान महाकाल के प्रवाह मे लीन होती जा रही हो ऐसे गहरी से गहरी

पहाड़ो के बीच सिर उठाये गुम्बद की ओर देखकर एक भारी साँस के साथ भगतजी बोले, "वाह रे, मनुष्य तेरा हृदय! एक ओर लोहू के कुल्ले तो दूसरी ओर प्रीति के घूट।" और आकाश की ओर अँगुली उठाये कलश को देखकर रहस्यमयी हँसी हँसन लगे।